छोटी सी कथाएं

मुनिश्री चन्द्रशेखरविजयजी

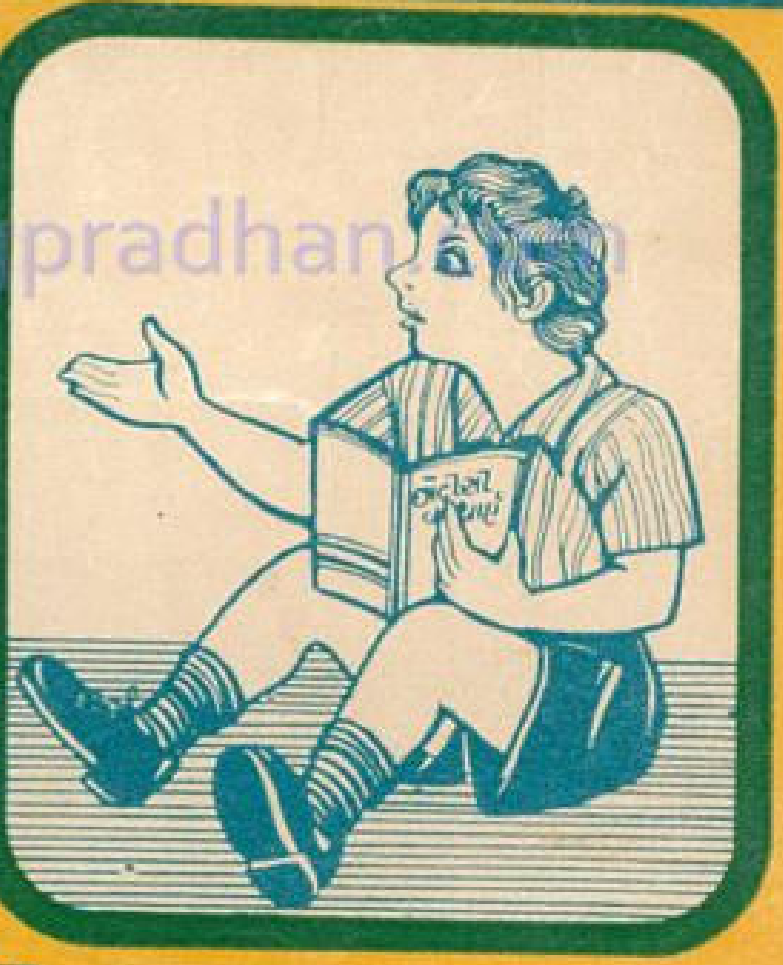

www.yugpradhan.com

१४८

अमल प्रकाशन ट्रस्ट

તપોગચ્છ ત્રિદશીય (જ્ઞાન ભંડાર)
તપોગચ્છ ગણધર ધામ (મહાવીર ટ્રસ્ટ)
મુ. મારાસિરિ, પો. ઇડીલપોર
નવસારી - ૩૯૬ ૪૨૪
ફોન: ૦૨૬૩૭-૨૩૬૯૬૦, ૨૩૬૪૬૮
D 3532

शेठ-मा कथाए

www.jainpradhan.com

१४८

मुनिश्री चन्द्रशेखरविजयजी

'मुक्तिदूत' के प्रत्येक अंक में प्रकाशित कथाओंका संग्रह

प्रकाशक :

कमल प्रकाशन ट्रस्ट
५०८२/३, दूसरा मझला,
याज्ञिक इन्स्टिटयुट के सामने,
रतनपोल नाका,
गांधीरोड, अहमदाबाद–३८० ००१

फोन : ३८५७२३

लेखक–परिचय :

सिद्धान्तमहोदधि सच्चारित्रचूडामणि
स्व. पूज्यपाद् आ. भगवंत श्रीमद्विजय
प्रेमसुरीश्वरजी महाराजा साहब के विनीत
मुनिश्री चन्द्रशेखरविजयजी

www.yugpradhan.com

प्रथम संस्करण : प्रति : ३०००

वि. सं. २०३६ दि. १५–८–'८०

मुद्रक :

बयंतिलाल मणिलाल शाह
नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस,
घीकांटा रोड,
अहमदाबाद ३८० ००१

मूल्य
रू. १५–००

❋ प्र का श की य

पूज्यपाद मुनिराजश्री चन्द्रशेखरविजयजी की ओजस्वी लेखिनी द्वारा 'मुक्तिदूत' के लिये तैयार की गयी लघुकथाओंका संग्रह, हमने "छोटी-सी कथाएँ" के रूप में तैयार किया है। जिसकी हिन्दी आवृत्ति आप के सामने पेश कर रहे हैं।

'मुक्तिदूत' के प्रत्येक अंक में, पू० मुनिजीकी तीन लघुकथाएँ निश्चितरूप से प्रकाशित होती रही हैं। पाठकों को उन कथाओं का अदम्य आकर्षण बना रहा है; क्योंकि वे कथाएँ बिलकुल नयी–अपठित होती हैं या पुरानी हो तो भी उनका गठन, एकदम अनुठा और तरोताजा होता है।

खूब नपेतुले शब्दोंमें, हृदयस्पर्शी भावोंका आलेखन ठोस तौर पर किया जाता है।

www.yogpradhan.com

छोटे मोटे बच्चों के चरित्रगठन में तो ये कथाएँ, निश्चितरूपमें अपना योगदान देती हैं।

ऐसे सुंदर लघुकथासंग्रह के प्रकाशन से, हमें आनंद और गौरव की अनुभूति होती है।

— भवदीय,

'ट्रस्टी–मंडल'

कमल प्रकाशन ट्रस्ट

छोटी-सी कथाएँ

मुनिश्री चन्द्रशेखरविजयजी

www.yugpradhan.com

१४८

विषयानुक्रम

क्रम		पृष्ठ
१	शुभचिंतक पिता	१
२	यतो धर्मस्ततो जयः	२
३	सेठजी, आप जिन्दा है ?	२
४	पुण्य इसे कहा जाता है ।	३
५	मानव कहाँ है ?	४
६	मस्तीभरी जिंदगी	५
७	दुवा की दवाई	६
८	एक द्रम्म के बदले में ऊँट	७
९	रहस्यमय घडी	८
१०	सर्वत्र संतजनों का वास हो	९
११	बहुमत का तमाशा	१०
१२	जिंदादिली ही ऐसा कह सकती है ।	११
१३	आपका स्थान, हमारे पाँवोंमें...	१२
१४	कैसी संस्कृति ?	१२
१५	शास्त्रीय दमन; आवश्यक	१३
१६	पुण्यबल से असंभव भी संभवित	१४
१७	चोर था; मगर नमकहलाल !	१५
१८	था धनकुबेर, मरा अपमृत्यु से ।	१६
१९	माँ, लेकिन...मैं आपकी ही संतान हूँ	१७
२०	मिलावट का खतरनाक शस्त्र	१८
२१	धर्मभ्रष्ट प्रजा की बेहाली	१९
२२	बेचारा,' मैं' कुचला गया !	२०
२३	कितनी बदकर है व्यसनों की गुलामी !	२१
२४	उस वँशको सिसोदिया क्यों कहते हैं ?	२२
२५	जीवन के भवस्थान	२२
२६	पश्चिमप्रेमी भारतीयजन	२३
२७	कीमती क्या ? भाषण या धन ?	२४

www.yugpradhan.com

२८	धर्मयुद्ध	२५
२९	वंदन हैं, उस मर्यादा को	२६
३०	धन, धर्म–विनाशक है।	२७
३१	सारी दुनिया, पैसों से नपीतुली हैं।	२८
३२	बेचारा ! आखिर हार बैठा !	२९
३३	जैसे के साथ वैसा।	३०
३४	पतन किसका ? जिसका उत्थान हो...!	३०
३५	स्याद्वादी तक किसी की पहुँच नहीं !	३१
३६	युधिष्ठिर क्यों पराजित हुए ?	३२
३७	बीमार क्यों होना चाहिए ?	३३
३८	राम जिसकी रखवाली करे...!	३४
३९	लक्ष्मी अंधापा देती है।	३५
४०	धर्मनिमित्त द्रव्य का अपव्यय न हो।	३५
४१	श्रेष्ठ नैतिकता	३६
४२	मुनिजीवन की मस्ती	३७
४३	दानवीर जगडूसाह	३८
४४	यथासंभव दवाई न खाए।	३९
४५	भोलीभाली भक्त स्त्री	४०
४६	प्रभाव से चेतनसभर आर्यावर्त	४१
४७	नारी–गौरव और हिटलर	४२
४८	शील का उपासक औरंगझेब	४३
४९	कैसी जल्लाद ईर्ष्या ?	४४
५०	योग्य पात्र को ही दिया जाय	४५
५१	बीज बचाएँ !	४६
५२	तश्तरी की क्या जरूरत है ?	४७
५३	देवी अनुपमा	४७
५४	कर्मस्थान, धर्मस्थान बन गया !	४८
५५	ऐसे गुरु दुर्लभ है !	४९
५६	यादवास्थली ! हमारा अभिशाप	५०
५७	साधर्मिक भक्ति	५१
५८	नकल का ज्यादा मोह	५२

www.jugpradhan.com

५९	आर्यबाल की अनोखी जिंदादिली	५३
६०	करुणा की सजीव धडकनें !	५४
६१	अब कोई दर्शन के लिये न आएँ	५५
६२	जो धन दिया जाय वह सोना, पड़ा रहे वह मिट्टी	५५
६३	आखिर...अरविंद भी डूब गये !	५६
६४	परकल्याण कितना मुश्किल होगा ?	५७
६५	सर्वविनाशक अहंकार	५८
६६	चमत्कार तो यह रहा; लेकिन देखना किसे है ?	५९
६७	भारतने ही विश्व को संतों का प्रदान किया है ।	६०
६८	दो किलो राई का मालिक !	६१
६९	इसे कहते हैं, जिंदादिली !	६२
७०	धून और जपमंत्र का प्रभाव	६३
७१	अनपढ़ ही पढ़ाई के योग्य	६४
७२	हरि का मार्ग शूरवीरों का है !	६४
७३	नीति का धन	६५
७४	हाय पापी राग ! तुम्हीं ने बरबाद किया !	६६
७५	धर्म की ध्वजा	६७
७६	पचरंगी कीडा	७०
७७	चाँपराजवाला डाकू	७२
७८	दो चौकीदार !	७४
७९	दीवार साफ करें	७६
८०	द्रव्यदर्शन में राग : पर्यायदर्शन में विराग !	७८
८१	खुशामतखोरी	८१
८२	'चलणा है, रेणा नहीं ।'	८३
८३	छाडा सेठजी !	८५
८४	पापीजन या धर्मीजन ?	८८
८५	एक ही बड़ी कमजोरी	९०
८६	देह : हमारा दुश्मन !	९२
८७	धर्म ही सर्वोपरि है !	९४
८८	अतृप्ति की गर्ता	९७
८९	जहाँ सत्त्वबल, वहाँ सर्वस्व !	९९

www.yugpradhan.com

९०	आर्य : यानी साधुत्व का प्रेमी !	१०१
९१	आत्मसाक्षात्कार कैसे हो ?	१०३
९२	अपात्र, धर्मदर्शन नहीं कर पाता !	१०६
९३	संत नामदेव !	१०८
९४	उजमशी लम्बा और वीरजी काना ।	११०
९५	मानव यदि देव को भी झुका सकता है...	११३
९६	आधुनिक मम्मण	११६
९७	इस देश की मिट्टी के कण कण में अजीब जिंदादिली	११८
९८	मृत्तिके, हर मे पापम् ।	१२०
९९	खूब सोच–विचार कर बोले ।	१२३
१००	चोर साहुकार बनते चले...	१२५
१०१	एकाकी वीर बनो ।	१२८
१०२	चाँपा : संपूर्णतया आर्यजन !	१३१
१०३	गुरु का अपमान कभी न करें ।	१३३
१०४	प्रखर राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण	१३६
१०५	कैसी अनोखी है, कर्मों की पीडा	१३८
१०६	शील के लिये तीन बलिदान	१४१
१०७	जमीन पर बिना पाँव, कोरा गगनविहार !	१४४
१०८	अद्‌भुत परीक्षा (कसौटी)	१४६
१०९	गाँव–गाँव खडे हैं, ऐसे वीर स्मारक !	१४९
११०	सावधान, कहीं कच्चा रह न पाये ।	१५२
१११	नारी का तेजोमय सतीत्व	१५५
११२	एक छोटी–सी भूल	१५८
११३	मुझे दौलत नहीं, पुण्य चाहिए ।	१६१
११४	गुणानुरागी बनें !	१६४
११५	पुण्य का आकांक्षी राजा ।	१६६
११६	आज करे सो अब	१६९
११७	जैनाचार्य अभयदेवसूरिजी	१७२
११८	वे हाथी को मार सकते है, चींटी जिला नहीं सकते	१७४
११९	जोगीदास	१७५
१२०	श्रेष्ठीपुत्र इलाती	१७८

www.yugpradhan.com

१२१	बाल अतिमुक्तक	१८०
१२२	कटीप्रिय साधु	१८२
१२३	गटागट, गटागट...गटागट...!	१८४
१२४	पपीताभीरु फूलचंद सेठ	१८६
१२५	धिक हो ऐसे धन को, जिससे पापाचरण हो	१८८
१२६	आहार–शुद्धि	१९०
१२७	मोक्ष कैसे प्राप्त हो ?	१९२
१२८	लोकैषणा का लालच	१९४
१२९	आदर्श राजा योगराज	१९६
१३०	हाय अभिमान ! तुम्हारे ये पराक्रम ?	१९८
१३१	सहनशील बनें !	२०१
१३२	परार्थरसिक गुरुजी	२०२
१३३	भूख : पेट की या वासना की ?	२०३
१३४	भले बने रहो	२०५
१३५	समाधान से काम लो	२०६
१३६	सही माँ	२०७
१३७	अनीति का पाप	२०८
१३८	बाप के कुएँ में डूबा नहीं जाता	२०९
१३९	दया धरम का मूल है ।	२१०
१४०	कल की चिंता करनेवाला मैं नहीं !	२१२
१४१	गंगा माँ	२१३
१४२	हाय रे जमाना !	२१४
१४३	अतृप्ति का भिक्षापात्र	२१५
१४४	आनंददायक मृत्यु	२१६
१४५	भगवद्भक्त महाराजा	२१७
१४६	परदुःखभंजक महाराजा	२१८
१४७	सुखी, पागल हो चुका ।	२१९
१४८	पाप कौन करते हैं ?	२२०
१४९	इन्द्रियदमन	२२१
१५०	क्योंकि मैं उसकी जननी हूँ !	२२२
१५१	अज्ञान ही अपराध	२२४

www.yugpradhan.com

१५२	व्यर्थ का झगडा	२२५
१५३	कौन खराब, दुःख या पाप ?	२२३
१५४	पुण्य के बल पर प्रतीक्षा न करें !	२२७
१५५	कोई कभी क्रोध न करें।	२२८
१५६	दीन कभी न बनें !	२२९
१५७	माँ हो तो ऐसी हो !	२३०
१५८	बहुमत या शिष्टमत ?	२३१
१५९	किसी न किसी को तो तैयारी करनी ही होगी।	२३३
१६०	धन्यवाद है नारी ! तुम्हारी चारित्र्य-दीप्ति को !	२३४
१६१	इसे न्याय कहते हैं।	२३५
१६२	स्त्री के चरित्र !	१३७
१६३	प्रथम झाडू या जेवर ?	२३८
१६४	मेरे ललाट की ओर देखो !	२३९
१६५	मेरे भक्तों से सावधान बने रहें।	२४१
१६६	अतृप्ति का भिक्षापात्र	२४२
१६७	अनुपम गुरुभक्ति	२४४
१६८	पापी दस बूंदों के निमित्त...!	२४५
१६९	हथौडी के प्रकार का मूल्य केवल एक रुपया	२४६
१७०	त्यागी और संसारी की कथा	२४७
१७१	मनुष्य बरबाद हो गया	२४८
१७२	पाखानों के संगठन ! न चाहिए...	२४९
१७३	घर की फूट बुरी !	२५०
१७४	नौकरने सेठ को निकाला	२५१
१७५	सही भी गँवा दिया !	२५२
१७६	हिंसा में अहिंसा	२५३
१७७	कौन बलवान ? भाग्य या पुरुषार्थ ?	२५४
१७८	"चाहिअ, धरमसील नरनाहु..."	२५५
१७९	बलिदान	२५६
१८०	अतिरागी राजा	२५७
१८१	मानवता झूम उठी !	२५८
१८२	कैसा अदम्य आत्मविश्वास !	२५९

www.yugpradhan.com

१८३	महाजन की तेजस्विता !	२६०
१८४	मुफ्त का न चाहिए !	२६०
१८५	बड़े लोग, अपना ध्येय नहीं भूलते !	२६१
१८६	हम सब चोर हैं !	२६२
१८७	इसी को कहते हैं, तेजस्विता	२६२
१८८	पुण्य समाप्त हो जाय, तब...	२६३
१८९	अनादि का बिगड़ा हुआ हिसाब	२६४
१९०	अमीर और गरीब	२६५
१९१	अनपढ़ शिक्षित	२६६
१९२	त्याग किसीको करना नहीं है...!	२६७
१९३	कोसमें तो छेद हुए हैं !	२६८
१९४	जिसे हरि पर विश्वास नहीं !	२६९
१९५	मनोबल टूट गया !	२६९
१९६	मित्र ऐसे हो...!	२७०
१९७	मातृभक्ति	२७२
१९८	इसे दान कहते है !	२७२
१९९	आहारशौच !	२७३
२००	मैं लूँ या दूँ ?	२७४
२०१	ऐसे श्रोता बनें !	२७५
२०२	बिगड़ी बना लो	२७६
२०३	मणि, आठ आनों के बदले में गँवाया	२७७
२०४	गोशालक की गुरुद्रोहिता के भूतपूर्व संस्कार	२७८
२०५	परमात्मा बने गोशालक की देशना	२८०
२०६	जीवनसमृद्ध चंदनबालाजी	२८३
२०७	मैं का निरंतर स्मरण, यही उपाय एकमात्र	२८५
२०८	बड़ों की अवहेलना कदापि न करें	२८६
२०९	नजरकैद में सुख कैसा ?	२८८
२१०	तपस्वी; फिर भी कैसा मोक्षार्थी !	२८८
२११	कैसी अनोखी विरक्ति !	२८९
२१२	मैं सही मानव बनूँ !	२९०
२१३	आदर्श मैत्री ! अनोखा बलिदान !	२९१

www.yugpradhan.com

२१४	जिसकी राम रखवाली करें...!	२९२
२१५	दुश्मन के दिल में भी कैसी जिंदादिली !	२९३
२१६	क्षमा और सहिष्णुता की मूर्ति	२९४
२१७	जीव में शिव के दर्शन	२९४
२१८	परकल्याण कितना कठिन होगा !	२९६
२१९	टिटनीक कभी डूब ही नहीं सकती	२९७
२२०	वे मेरे पिताजी हैं।	२९८
२२१	खुशामत कभी न करें।	२९८
२२२	सही आत्मश्लाघा भी अनुचित होगी।	२९९
२२३	कैसी गौरवशील माता !	३००
२२४	युवा यानी कामवासना का गुलाम !	३०१
२२५	नयी परंपरा के अनिष्ट	३०२
२२६	मृत्यु के अन्तिम क्षण	३०३
२२७	ईर्ष्या का पातक	३०४
२२८	गुरु का रक्षक शिष्य	३०५
२२९	विचार भी विघातक	३०६
२३०	कसौटी के क्षण	३०७
२३१	निमित्त के अव्यक्त प्रभाव !	३०८
२३२	अनुचित स्थल में मानवता का मोती	३०९
२३३	गृहस्थ का चारित्र्य	३१०
२३४	पुण्य के विश्वास पर बैठे न रहें !	३११
२३५	मरना तो विरले ही जानते हैं !	३१२
२३६	वातावरण का प्रभाव	३१५
२३७	सत्य की रक्षा के लिये अकेले भी योद्धा बने रहे !	३१७
२३८	ईर्ष्या एक खतरनाक अवगुण	३२०
२३९	पशुओं में भी गौरव, मानव में नहीं !	३२३
२४०	कैसी अजीब माँ ! कैसा अजीब पुत्र !	३२६
२४१	ब्रह्मचर्य–रक्षा के लिए आत्महत्या	३२८
२४२	महासती मदालसा	३३१
२४३	पात्रता की कसौटी	३३४
२४४	धर्मगुरु की कभी निंदा न करें।	३३७

www.yugpradhan.com

२४५	अमर्याद आत्मविश्वास	३३९
२४६	जब नया इतिहास लिखा जा रहा है।	३४३
२४७	अभय बनो : लोकापवाद की परवाह न करें	३४५
२४८	अंग्रेज गोरों की घातकता !	३४८
२४९	नकल में भी गौरवशालिता और असल में बरबादी !	३५०
२५०	धर्म में भी अधर्म	३५३
२५१	दर्शन हमारे भीतर, आप के बाहर	३५४
२५२	मन में लदा जहर है।	३४५
२५३	लोचनदास	३५६
२५४	इसी को जड़ता कहते हैं।	३५७
२५५	किस के बोध से प्रभावित हो...?	३५८
२५६	धर्महीन परिवार की कैसी बेहाली !	३५९
२५७	सुखेषु किं बहुना ? चक्रवर्ती सनत्कुमार !	३६१
२५८	जीवदया का कितना भारी गौरव !	३६५
२५९	सूक्ष्म की शक्ति	३६६
२६०	शील की झांकी	३६७
२६१	साधना चाहती है हृदय को, न दिमाग को।	३६८
२६२	पापों का तिरस्कार यही सम्यग्दर्शन	३६९
२६२	तथाकथित धर्मीजन कब तक धर्माचरण कर पायेंगे ?	३६०
२६४	खोयी हुई आत्मा, मिल पाये तो...?	३७१
२६५	कैसा अनासक्त निर्मोही भरत !	३७२
२६६	महासती वेदवती	३७२
२६७	शत्रुता को खत्म करने द्वारा शत्रु को मारो	३७४
२६८	निश्चित निर्माण	२७४
२६९	धिक्कार है ऐसी कृतघ्नता को !	३७५
२७०	धिक् है द्रव्य को...	३७६
२७१	बेटे, अब पानी बाद में	३७७
२७२	कहाँ है, ऐसी जिंदादिली ?	३७८
२७३	कैसी अनोखी गुरुदक्षिणा !	३७९
२७४	हाजिरबुद्धि बनिया	३८०
२७५	धिक्कार है, ऐसी शिक्षा को	३८१

www.yugpradhan.com

२७६	व्यावसायिक ढंग पर विद्याओं का विक्रय	३८२
२७७	आचारहीन वक्तव्य का प्रभाव कितना ?	३८३
२७८	समझाने का कैसा अनूठा ढंग !	३८४
२७९	अभी भी हमें जाग्रत नहीं होना है !	३८५
२८०	गर्भपात ! कैसा कनिष्ठ पाप ?	३८६
२८१	राजनीति का खोखला चोंचला !	३८७
२८२	भावना ही सही है !	३८८
२८३	क्या अब बच्चे बड़ों को सुधारेंगे ?	३८९
२८४	प्रतिज्ञापालन का प्रभाव	३९०
२८५	खुशामत कैसी ?	३९१
२८६	" नग्न कौन है ?"	३९१
२८७	दीक्षा की योग्यता उम्र नहीं, बल्कि विवेकज्ञान	३९२
२८८	शायद आगामी कल खतरनाक हो ?	३९३
२८९	कैसी राजाशाही !	३९४
२९०	दुःख को मामूली तौर से महसूस करें ।	३९५
२९१	अच्छे काम में, दूसरे को लाभ कैसे दें ?	३९६
२९२	आज की पवित्रता हास्यास्पद है ।	३९७
२९३	धर्म में आडंबर का ज्यादा प्रभाव	३९८
२९४	बलिदान से क्या सिद्ध नहीं होता ?	३९९
२९५	विदेशों में पारिवारिक सुख की छिन्न-विच्छिन्नता	३९९

www.yugpradhan.com

ये कथाएँ पढ़ने के बाद
आप के दिलोंदिमाग में
जो विचार या संवेदना
जगे उसे लिखने का
आप को हमारा
निमन्त्रण
है

www.yugpradhan.com

एक हाथ से दूसरे हाथ तक ये किताब को घुमाते रखना। इसे कहीं रोकना मत। अलमारी या कबाट में बंद नहि करोगे तो ये पुस्तक अनेक आत्माओं के जीवन के रूप-रंग पलट देगा और आप को सिर्फ निमित्त बनकर अनन्य पुण्यबन्ध का रसल्हाण मिलेगा।

— पता —

कमल प्रकाशन ट्रस्ट

५०८२/३, दूसरा मजला, याज्ञिक इन्स्टिटयूट के सामने
रतनपोल नाका, गांधी रोड, अहमदाबाद-१
Phone : 385723

आर्यावर्त की मोक्षप्रधान संस्कृति की ज्योत
घर घरमें प्रगटाने के लिये प्रयत्नशील मासिक...

मुक्तिदूत

वार्षिक लवाजम : रू. २०-००

आजीवन सभ्य : रू. १००-००

www.yugpradhan.com

: चिंतक :

मुनिश्री चन्द्रशेखरविजयजी

: संपादक :

हसमुख सी. शाह

: सहसंपादक :

योगेश म. शाह

टचुकडी कथाएँ

(१) शुभचिंतक पिता

चाणक्य के जन्म के बाद, थोडा समय ही गुजरा था। धनाढ्य पिताका वह इकलौता लाडला पुत्र था। एक दिन अष्टांग निमित्तों का ज्ञाता कोई नैमित्तिक गाँव–गाँव पर्यटन करता हुआ, चाणक्य के पिता के घर आ पहुँचा। उनका महेमान बन कर रहा।

भोजनादि के बाद, नैमित्तिक आराम कर रहा था। उसी समय बाल चाणक्यको, उसने यकायक देखा। उसके मुँहमें विलक्षण रूपमें अतिसुन्दर एवं लंबे दाँतको देखते ही वह बोल उठा– "भव्य लक्षण है!"

चाणक्य के पिताने यह सुन लिया, तो उसे सविस्तर समझाने के लिये उन्होंने नैमित्तिक से नम्र प्रार्थना की।

नैमित्तिक ने कहा–'आपके पुत्रका यह लंबा दाँत यह सूचित करता है कि, यह बालक, भविष्यमें बड़ा होकर, विशाल पृथ्वीका सम्राट् होगा।' दीर्घ निश्वास के साथ चाणक्य के पिताने कहा–राजेश्वर प्रत्येक नरकभोगी...मेरा यह लाड़ला, राजा बनकर नरकगामी होगा? हाय राम!"

खड़े होकर वे कानस ले आये और उसी समय उस लंबे दाँत को घिस डाला। तब नैमित्तिकने फिर भविष्यवाणी की कि, 'अब यह बालक किसी महान् सम्राट् का राजगुरु बनेगा।"

और अन्तमें हितचिंतक पिताके मुख पर संतोष की भावनाएँ लहर उठीं!

(२) यतो धर्मस्ततो जयः

(बोधप्रद प्रसंग)

महाभारत के ऐतिहासिक महायुद्ध के प्रारंभसूचक रणभेरियाँ बज ऊठीं। शस्त्रसज्ज होकर, दुर्योधन, माता गांधारी के पास आशीर्वाद लेने गये। माता को प्रणाम कर आशीर्वचन की नम्र प्रार्थना की।

माता गाँधारीने कहा—'यतो धर्मस्ततो जयः!' वत्स, जहाँ धर्मपालन है, वहीं विजय स्थित है। (जिस पक्ष में धर्माचरण हो, वहाँ निश्चित विजय है।) माता गाँधारी के वचनोंमें स्थित संकेतको दुर्योधनने महसूस किया। वह मन ही मन सोचने लगा—'धर्म तो पाण्डव पक्ष में रहा है। खैर, माताजी, जो भी कह रही है, वह अक्षरशः सही है।"

www.yugpradhan.com

कहा जाता है कि महाभारत का वह भीषण युद्ध अठारह दिनों तक चलता रहा। अठारहों दिन दुर्योधन माता के पास आशीर्वाद लेने जाते रहे और प्रत्येक दिन माताने दुर्योधनसे आशीर्वचन देते हुए यही कहा कि " यतो धर्मस्ततो जयः।"

(धन्य है माता गांधारी की उस सत्यपरायणताको ! पाश्चात्य शैली की शिक्षा प्राप्त करनेवाली पचपन करोड भारतीय प्रजामें ऐसी पुण्यश्लोका गान्धारियाँ आज कितनी होगीं !)

(३) शेठजी ! आप जिन्दा है ?

व्याख्यान में ही लंबी नींद का कार्यक्रम पूरा करनेवाले शेठजी को बारबार झपकियाँ लेते देख, व्याख्याता मुनिजी को यह जरा अखरा। उन्होंने शेठजी से जरा ऊंची आवाजमें कहा—'शेठजी ! नींद ले रहे हैं

क्या ? हडबड़ाकर जागकर सेठजीने अपनी इज्जत बचाने के लिये कहा ना, ना...कोन कहता है कि मैं नींद ले रहा हूँ ?"

अभी थोडा ही समय हुआ....यही झपकियाँ....मुनिराज का फिर से एक ही प्रश्न....शेठ का फिर से एक की जूठा उत्तर.... !

तीसरी बार भी ऐसा ही हुआ । युवक भी व्याकुल हुए, मुनिराज को गलत साबित करने के लिए...!

लेकिन मुनिराज भी पक्के थे....हार मानने वाले नहीं थे ।

मुनिवरने चौथी बार शेठ से जोर से पूछा " शेठ ! जिन्दा हो ?"

झपककर शेठ ने फिर से यही उत्तर दिया, " ना....ना....कौन कहता है ?"

www.yugpradhan.com

और...सारा श्रोतावर्ग ठहाके मारकर हंस पड़ा ।

कोई गलती अनजान में हुई हैं ऐसा खयाल आते ही तुरंत स्वस्थ होकर, पुनः व्याख्यान श्रवण करने में मग्न हुए ।

(शेठजी व्याख्यान सुनते नहीं है, लेकिन सुनने का आडंबर करते हैं । जिसके हृदयमें धर्म नहीं वैसे धर्मीजन धर्माचरण का ढोंग करते हैं, जिसके अन्तःकरण में शान्ति नहीं वैसे धनिक लोग 'सुखी होनेका' दिखावा ही करते हैं न ?)

(४) पुण्य इसे कहा जाता है

मांडवगढ़ के मन्त्रीश्वरका स्वप्न आज पूर्णरूप में सफल–चरितार्थ बन पाया था । देवगिरि नगरी में करोडों सोनामुहरों का खर्च कर उत्तुंग जिनालय का निर्माण हुआ । आज उसमें परमस्वरूपों की यथा-

विधि स्थापना हुई। अन्तमें मन्त्रीश्वर पेथड, मंदिर के शिखर पर ध्वजा-रोपण करने के लिये तत्पर हुए।

ध्वजारोपण किया और आसमान में लहराती ध्वजा को देख, पेथड़ फूले न समाये। यहाँ तक कि वे खुद मचल ऊठे।

बाँसों के रचे मंचपर दिल खोल, सूधबूध भूलकर मचलते-नाचते पेथडको, गुरुदेवने नीचे से देखा। उन्होंने सोचा-"अरे इस आनन्दा-तिरेक में कहीं पेथड फिसले और जमीन पर आ गिरे तो?"

तुरंत ही दो धर्मीजनों को उन्होंने ऊपर भेजे। और मंत्रीश्वरको इस पुण्यशाली भावातिरेक में से मुक्त होने की सूचना दिलायी।

दो धर्मीजन ऊपर चढे। आनंदविभोर बने मंत्री पेथड के दोनों हाथ पकड़ लिये और उन्हें संभवित खतरेका इशारा किया।

www.yugpradhan.com

स्वस्थ बने मन्त्रीश्वरने कहा-'गुरु की आज्ञा प्रमाण है। अन्यथा, नीचे गिरने पर भी मुझे तो ऊपर ही ऊठना था। वाह, त्रिलोकनाथ की आसमान में लहराती ध्वजा के दर्शन कर, मेरे आनंद की कोई सीमा नहीं।"

(पुण्यकार्य कर पश्चात्ताप करनेवालों के लिये यह घटना विचारणीय है।)

(५) मानव कहाँ है?

दोपहर के बारह बजे एथेन्स शहर में सुकरातने (सोक्रेटिसने) जहर का प्याला प्रेम से होठों लगा लिया।

उसका एक वफादार शिष्य, इस प्रसंग से किंकर्तव्यविमूढ बन गया था। उसी समय हाथ में लालटेन लेकर, एथेन्स की गली-गली घूमा और जो भी उसके सामने आया, उसके सामने लालटेन धर कर

प्रत्येकका मुँह देखा और हर एक से पूछा—'आप कौन हैं ?' सभी ने कहा – 'मैं डाक्टर हूँ। मैं वकील हूँ। मैं विद्यार्थी हूँ। मैं सिपाही हूँ।' आदि ।

दोपहरी के तेज धूप में हाथ में लालटेन लेकर निकले इस मनुष्यने, लोगों में भारी कुतूहल पैदा किया। सभी उसके पीछे हो लिये। हजारों लोगों के साथ, एथेन्स से बाहर निकल कर एक ऊँची पहाडी पर वह चढा ।

उसने सभी से पूछा—आप मुझे पागल समझ रहे हैं। लेकिन मेरी बातें सुने। मेरे गुरु जीवनभर आदर्श मानव की बातें बताते रहे, फिर भी जिस हालत में उन्हें मौत के घाट उतारे गये, उससे मेरे दिल में शंका फूट पड़ी है कि एथेन्स में एक भी मनुष्य जिंदा होगा क्या ?

www.yugpradhan.com

और....सचमुच....मेरे प्रश्न के उत्तर में किसीने मुझे यह न बताया "मैं मनुष्य हूँ।"

(हाय ! देश डाक्टरों, वकीलों, मंत्रीओं, सेठीओं, प्राध्यापकों आदि से बना रहेगा या मनुष्यों से ?)

(६) मस्तीभरी जिंदादिली

अपने ही पुत्र कुणिकने, मगधराज श्रेणिक को वृद्धावस्थामें कारा-वास में डाले थे और हररोज चाबूक के सौ फटके लगवाता था।

देवाधिदेव परमात्मा महावीरदेव का वह परमभक्त था मगधनाथ श्रेणिक। उसकी भक्ति और उसके द्वारा समर्थित कर्मगणित का चिंतन ही इस कसौटी में आश्वासनरूप बने रहे थे।

एक दिन की बात है। नमक के पानीमें रसे गये हंटर के फटाके

मार मार कर पहरेगीर थक कर चूर हो गया। अपने हाथ खुद ही मसलने लगा।

पहरेगीर की यह परेशानी देखकर, मार खाते हुए मगधनाथ श्रेणिक ठहाके मारकर हंसने लगे। कारावास की पत्थर की दीवारों ने उसका प्रतिघोष दिया।

मगधराज फटाखे खा रहे थे, फिर भी मस्तमौला थे। उन्होंने कहा–' अरे पहरेगीर ! तुम्हारे हाथ थक गये हैं न ?

क्यों न थके, क्यों न दुःखे ! कहाँ तुम्हारी ताकत और कहाँ मेरी ताकत !

क्योंकि... आखिर तो तू छोटे से मगध के नाथ अजातशत्रु का एक सेवक ही है न !

www.yogpradhan.com

तू मार कर भी चूर हो जाता है।

मैं मार खाकर भी न हारूं।

इसमें चकित होने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

कैसी मस्तमौला जिंदादिली !

(७) दुवा की दवाई

एक धनिक माता–पिता का इकलौता और लाडला युवान पुत्र मृत्युशय्या पर आखिरी दम तोड रहा था ! दो साल पहले ही उसकी शादी हुई थी। पत्नी पर तो मानों वज्राघात हो रहा। उपचार कराने में संपन्न लोग तो कोई कमीना रखते ही नहीं। लेकिन जहाँ भाग्य ही विपरीत हो बैठा वहाँ सत्ता, संपत्ति और शक्ति सभी की क्षणभंगुरता और निरर्थकता स्पष्ट नजर आ पाती है।

सेठजी के पुत्र की बिमारी के बारे में पूछताछ करने के लिये दिनभर सैकडों स्वजन, संबंधी लोग आते–जाते रहते। एक दिन कोई संन्यासी वहाँ आ पाये। मोटरों की लंबीचौडी लाइन देखकर, उन्हें जिज्ञासा हुई। सारी जानकारी कर ली और बादमें वे सेठजी के पास पहूँचे। पुत्र की माता तो संन्यासी को देखते ही फूट फूट कर रोने लगा–"स्वामिजी! किसी भी तरह मेरे लाडले को बचाइए।"

संन्यासीने दुआ–आशिष की महिमा समझायी! साथ ही, हर-रोज गुड और बाजरे का गरीबों को दान देते रहने को समझाया।

प्रतिदिन ४० मन तक बाजरे का और ५–७ गुड के रवोंका दान शुरू हो गया।

www.yugpradhan.com

थोडे दिनों के बाद बेहोश ददीने आँख खोली। दान का कार्य और तेजी से बढाया गया। पाँचवे दिन लडके ने 'माँ' कहकर माँ को बुलायी। माता विह्वल हो, बेटे से लिपट गयी।

दान और दुआ के बीच जोरों की स्पर्धा चली। सातवें दिन बीमार पुत्र शय्या छोड खड़ा हो गया। दवाई ने पराजय का स्वीकार किया। दुआने अपनी विजयपताका फहराई।

(८) एक द्रम्म के बदले में ऊँट।

अपने राज्य में, द्रम्म का व्यवहार बिलकुल स्थगित हो जाय, उसके लिये राजा लोगों के पाससे द्रम्मों को चारों ओर से अनेक प्रकार की युक्ति–प्रयुक्तियाँ द्वारा एकत्र करने लगा। आखिर में हीरा–मोती से सुशोभित ऊंट को, राज्यभर में घुमाया गया और जाहिरात की गयी कि–'एक द्रम्म के बदले में इस ऊंट को बेचना है।'

लेकिन द्रम्म तो सारे राज्य में से कोने कोने से एकत्र कर लिये गये थे। लोग फिर कैसे ऊंट खरीद सकते ?

लेकिन इस ऊँट को देखकर, एक मुस्लिम बच्चे ने उसकी माँ के पास जाकर, ऊँट खरीदने के लिये भारी हठ ली और जोरदार रो-धूप कर बैठा। आखिर तंग आकर माताने कहा-' तुम्हारे बाप को कब्र-नशीन किये हैं। उनकी कब्र खोलो तो, उनके मुँहमें रखा हुआ द्रम्म मिल पायेगा।'

लड़के ने वैसा किया और द्रम्म देकर ऊँट खरीदा। राजा को इस बात का पता चला तो तुरंत ही सारी कब्रें खुदवाकर सारे द्रम्म हाथ कर लिये। बादमें सारे राज्य में द्रम्म का नाम निशान न रहा।

www.yugpradhan.com

(पश्चिम के लोग भी, अनेक युक्ति-प्रयुक्ति द्वारा, भारतीय प्रजा की सारी सांस्कृतिक संपत्ति को हस्तगत कर रहे हैं। रूपयाँ-पैसों की भारी लालच देकर बहुमूल्य ग्रंथो, मूर्तियाँ आदि अपने कब्जे में ले रहे हैं। कौन सावधान होकर, इस प्रपंच का भंडा फोडेगा !)

(९) रहस्यमय घड़ी

हिटलर और चैम्बरलेन। दोनों शत्रुपक्ष के अगुए।

फिर भी, हिटलर तो सभी प्रकार के दावपेचों का उस्ताद था।

एक दिवस, परस्पर की मैत्री के बारे में सोच-विचार के लिये हिटलर ने, चैम्बरलेन को आमंत्रण दिया। भोज-समारंभ भी आयोजित था। मैत्री के प्रतीक के रूपमें हिटलरने चैम्बरलेनको अद्भुत, जर्मनी में बनी हाथघडी की भेंट दी। चैम्बरलेन को वह बहुत पसंद आयी।

लेकिन यह क्या। उसके बाद, अपने साथियों और फोजी

अफसरों के साथ की गयी सारी मंत्रणाए जगजाहिर होने लगी। जिससे भारी खलबली मच गयी। उसकी जाँच–पडताल शुरू हो गयी।

उस घड़ी की भी जाँच की गयी और सारा भेद खुल गया। घड़ी का उसी समय फैसला कर दिया गया।

(अरे प्रिय धर्मीजन। सावधान हों! धर्मराज के साथ की गयी आपकी सारी आत्मलाभ करनेवाली मंत्रणाएँ भी जाहिर तो नहीं हो पातीं! धर्माचरण करने पर भी क्रोधादि कषायों से यदि आप पीडित हैं तो निश्चित रूप से समझ लें की तुम्हारे पास भोगविभास के राग की मोहिनी घड़ी कहीं पड़ी है, जो आपकी सारी धर्मक्रियाँओ का खात्मा कर देती है।)

www.yugpradhan.com

(१०) सर्वत्र संतजनों का वास हो।

गुरु–शिष्य की वह अनोखी जोड थी। जो गाँवगाँव घुमकर धर्मोपदेश किया करती थी। एक गाँव कमनसीबी से ऐसा मिला, जहाँ के निवासियोंने इस जोडी पर भारी पथराव किया। मौन रहकर पत्थरों की मार सहकर गुरुजीने ग्रामजनों को आशीर्वचन देते हुए कहा– "आपका गाँव खूब सुखी और समृद्ध बनो ता कि व्यवसायादि के लिये किसी को कहीं बाहर यात्रा न करनी पडे।"

एक दिन दूसरे गाँव में उससे विपरीत अनुभव हुआ। उस गाँवके निवासियों ने इन संतों का भारी स्वागत किया। वहाँ थोडे दिनों के निवास के बाद, विदाय के समय उपस्थित ग्रामजनों से गुरुजीने कहा– "आपका गाँव बरबाद हो, जिससे आप लोगों को व्यवसाय निमित्त चारों ओर निवास के लिये निकलना पडे!"

इन दोनों बातों को सुनकर, शिष्य तो चकित रह गया। उसने गुरुजी से इन बातों का रहस्य समझाने प्रार्थना की। गुरुजीने बताया— 'सुनो वत्स ! दुष्ट लोग यदि दूसरे गाँवों में जाये, तो उन लोगों को भी दुष्ट बनाये। अतः मैंने उनके गाँवकी समृद्धि की शुभकामना व्यक्त की; लेकिन: सज्जन लोग चारों ओर बिखर जाये तो, उनके संसर्ग से कई गाँव सज्जनोसे उभर जायँ। अतः मैंने दूसरे गाँव की बरबादी की कामना प्रगट की।"

शिष्य को सारी बात अब समझमें आ गयी।

(११) बहुमत का तमाशा

www.yugpradhan.com

जंगलमें से गुजरते हुए चार ब्राह्मणों को जोरों की प्यास लगी। इधरउधर नजर डालने पर एक कूआँ दृष्टिगोचर हुआ। लेकिन पानी निकालना कैसे ? आखिर पाँवमें पहने जूतों को सर पर बाँधे कपडे से बाँध, कूएमें ऊतारने का तय किया गया !

लेकिन यह निर्णय सुनकर, एक ब्रह्मदेव हडबड़ा गये। "अरे, चमडे में पानी भर, उसे मुँहमें डाले....! ओह ! यह तो सत्यनाश होगा... !"

पानी पीकर स्वस्थ बने तीन ब्राह्मण तो फूर्ती के साथ गाँव में पहूँच गये। चौथा प्यासा ब्राह्मण विलंब से गावमें पहूंचा। उन पहले तीन ब्राह्मणों ने जाहिरात की कि "पीछे आये ब्राह्मणने, प्यास बुझाने के वास्ते जूते का पानी पिया है।"

गाँवके विप्रजन उस ब्राह्मण पर आगबबूले हो गये। आते ही सभी उस पर टूट पड़े। उसने सही बात बतायी कि—'सचमुच, ऐसा मैंने नहीं किया, बल्कि उन तीनों ने ही ऐसा कार्य किया है।

सभीने कहा–'क्या तुम बताओ यही सच हो, और ये तीनों कहे वह झूठ ! यह असंभव है। तुम्हारी बात सरासर झूठ है। शुद्ध बनो, और बातें बादमें। " सुन कर ब्राह्मण हतबुद्धि हो गया।

(१२) जिंदादिली ही, ऐसा कह सकती है।

महायुद्ध में विजेता बनकर, वाग्भट्ट मंत्रीजी वापस लौटे। तब गुर्जरेश्वर कुमारपालने उनका शाही स्वागत किया। भेंट स्वरूप तीन करोड सोनामुहरें आदि दिया।

लेकिन वाग्भट्ट तो रहे दानेश्वरी। राजमहल से घर पहूँचते पहूँचते तो सारी सोनामुहरों का दान कर दिया।

www.yugpradhan.com

ईर्ष्यापीडित अन्य साथियोंने, गुर्जरेश्वर के पास जाकर कानाफूंसी की कि, " आपके विरुद्ध अपना पक्ष मजबूत करने के लिये प्रजा का साथ प्राप्त करने के लिये वाग्भट्ट यथेच्छ दान कर रहे हैं।"

गुर्जरेश्वर भी हैरान हो गये। दूसरे दिन राजसभा में आते ही कुमारपालने वाग्भट्ट से पूछ ही मारा–' क्यों वाग्भट्टजी ! आजकल मुझसे भी बढ़ चढ़कर आप दान देते जा रहे हैं ? "

हँसते हुए मंत्रीने बताया–' राजन् ! क्यों न दान दूँ ? आप कौन होते हैं ? तीन गाँव के अधिपति के केवल पुत्र ही न ? और मैं कौन ? जानते हैं ? अठारह देशों के मालिक सर्वेसर्वा कुमारपाल का सेवक। मुझ–सा दान आप न कर पाये, उसमें आश्चर्य किस बातका है ?

यह जवाब सुनते ही राजा फूले न समाये।

(१३) आपका स्थान, हमारे पाँवोंमे !

स्वामी विवेकानंद विदेशो में धर्मप्रचारार्थ गये तब एक जगह अंग्रेजों की जीवनपद्धति आदि की सख्त आलोचना की और भारतीय संस्कृति की गौरव–परंपरा की भूरि भूरि प्रशंसा की। स्वाभाविक ही है कि इससे अंग्रेज प्रजा नाराज हो। उसी समय एक अंग्रेज युवती खड़ी हुई। उसने पूछा:–' स्वामीजी ! अगर हमारी जीवन पद्धतिकी कटु आलोचना करते है तो, आपने हमारे देशमें बने जूतों को अपने पाँवों में क्यों लगा रखे हैं ? वाणी और आचरण के बीच का यह विरोध, आप जैसे के लिये शोभास्पद है क्या ?

अब स्वामीजी क्या स्पष्टता करते हैं, यह सुनने के लिये सभी श्रोताजन चौकन्ने हो गये ! उस आंग्ल युवतीने बड़ा मार्मिक प्रश्न पूछा था !

www.yugpradhan.com

पूरी स्वस्थता के साथ शान्तिपूर्वक, गंभीर मुखमुद्रा बनाकर विवेकानंदने तुरंत जवाब दिया कि–' भारतीय प्रजा के बीच आपलोगों का स्थान कहाँ है, यह बताने के लिये ही मैंने यहाँ के बने बूट लगाये हैं ! "

यह खतरनाक जवाब सुनकर श्रोताजन तो मुँह बाये खड़े रह गये। कुछ सूझ न पड़ा।

(१४) कैसी संस्कृति ?

राजस्थान का एक शहर है, ' शिरोही। '

शासनप्रभावक आचार्यभगवंत श्रीमद् हीरसूरीश्वरजी महाराज की कृपावर्षा होती रहे, वहाँ के निवासी धर्मिजन हो, उसमें कोई आश्चर्य नहीं। बारहों मास प्रातःकाल भी सैकडों युवक, प्रतिक्रमण की क्रिया करते रहते।

एक दिन की घटना है। जाडे का समय था। धर्माचरण करते मुनिवरों के निकट ही एक युवक कश्मीरी शाल ओढकर प्रतिक्रमण कर रहा था। थोडे समयके बाद एक युवती आ पहुँची। मुनिवरोंको वंदना की। साथ साथ उस युवक को भी मुनि समझकर उसे भी वंदना की। बाद में सुखशाता की पृच्छा करने पर युवकने मुँह ऊपर उठाया। दोनोंने एकदूसरे पर नजर डाली।

और...घटस्फोट हुआ। जिनका आज शाम ही पाणिग्रहण होनेवाला था, वे भावि दंपती ये थे।

अरे, वंदन तो गुरुजी को किये जाते है। पतिको—वंदन! युवती के मनने सोचा कि कोई चिन्ता नहीं—अब भी समय है सम्हल जाऊंगा। मनसे तो मैंने उसे पतिस्वरूपमें स्वीकृत कर ही लिया है। अतः इसके सिवा और के साथ मेरा संबंध जुड ही नहीं सकता, लेकिन उसे वंदन किये इस निमित्त वे मेरे गुरु स्थान के अधिकारी बन गये....।

भले ही वे दूसरी कन्याके साथ पाणिग्रहण करे। मैं तो अब साध्वी बनकर, मेरे आत्मकल्याण की साधनामें मग्न बनी रहुंगी। धन्य है उस नारी को....! उस नारायणी को....!

(१५) शास्त्रीय दमन; आवश्यक

एक राजाने अपने राज्यका आधा भाग दानमें देनेकी घोषणा की "केवल एक शर्त पर कि जो बकरेको भरपेट चरा लाये।"

राजा जानता था कि, बकरेको चाहे उतना भरपेट खिलाए तो भी वह हरी घासमें मुह डालेगा ही।

परिणामस्वरूप आधा राज्य कोई भी पा न सका। आखिर एक उस्तादने दिमाग लडाया। पंद्रह दिन तक लगातार हरी घास खिलानेके लिये उसके मुँहके सामने धरने लगा, लेकिन खानेके लिये जैसे ही बकरा मुँह डालता त्यों ही तुरंत एक जोर का डंडा उसके मुँह पर मारता। ऐसा होनेपर, उस मालिककी हाजिरी में बकरेने घास में मुँह डालना ही छोड दिया।

पूरा अंदाज लगाने के बाद बकरे को, उसके मालिकने राजा के सामने जाकर धर दिया। राजाने हरी हरी घास उसके सामने खाने रखी। बकरा सामने देखता लेकिन घासमें मुँह न डालता। राजा की सारी कोशिशें व्यर्थ गयीं। घोषणाके अनुसार उसके मालिक को आधा राज्य सुपूर्द किया।

www.yogpradhan.com

(पाँच इन्द्रियाँ हैं: वे भी इधरउधर के भोगविलासों में भटकती रहती हों तो उन्हें भी तप, त्याग आदि के डंडेसे फटकारनी जरूरी हैं। दमन का यह उपाय, प्राथमिक स्तर पर अमोघ सिद्ध हो पाया है।)

(१६) पुण्यबलसे असंभव भी संभवित

पुराने समय की बात है। वह अनपढ़ था फिर भी धनिक था। लाखों की हार–जीत उसके लिये बाये हाथ का खेल था। लेकिन ऐसा पक्का आदमी कि सरकार का 'इन्कमटेक्स' कभी जमा न कराये।

चेकबुक में हस्ताक्षर करना भी बडी मुश्किलसे सीख लिया था।

एक दिन सेक्रेटरी एक साथ ४०–५० हस्ताक्षर कराने आया। जल्दबाजी में हस्ताक्षर करनेसे एक चेक में हस्ताक्षर बेढंगे हो पाये। चेक मान्य किया जायेगा या नहीं, उसकी शंका सेक्रेटरी को परेशान

करने लगी। सेठजी से इसकी स्पष्टता भी कैसे की जाय कि, 'आपने हस्ताक्षर सही ढंग से किये नहीं।'

अतः सेक्रेटरी तो चेकबुक के उस पन्ने को इकटक देखता ही रहा। सेठजी सारी बात समझ गये। तुरंत सेक्रेटरी की ठुड्डी उठाकर उससे कहने लगे—'अरे मूर्ख! इस ओर मेरे ललाट के सामने देख। लाखों रूपयों के चैकों का स्वीकार, इस ललाट के सहारे हो रहा है। हस्ताक्षर करने की कुशलता से नहीं। उठो, खडे हो। ऐसे ही हस्ताक्षर वाला चैक ले जाओ।'

लज्जित हो सेक्रेटरी उस चैक को ले गये। और सचमुच ही उसका स्वीकार किया गया!

(पुण्य की बात ही अनोखी—निराली है। उसके बल पर जंगल में भी मंगल हो सकता है।)

www.yogpradhan.com

(१७) चोर था; लेकिन नमकहलाल

पुरानी बात है।

एक गाँव के किसी एक घर की दीवार को छेद कर एक चोर घर में घुसा। रात के दो बजे थे। घना अँधेरा छाया हुआ था। गलती से वह रसोडे के कमरे में घुसा। उसे कडाके की भूख भी लगी थी। उसने एक डिब्बे में हाथ डाला, इस आशा से कि शायद सुखडी या लड्डु हाथ लग जाय।

लेकिन उस डिब्बे में चूर्ण जैसा हाथ लगा। उस की पहचान के लिये उसने थोडा सा उठाकर मुँहमें डाला। तुरंत पता चला कि वह तो नमक है। बस! मामला पूरा हो गया। तुरंत उलटे पाँव वह घर से बाहर निकलने लगा। जल्दबाजी में किसी चीज से टकराने पर

आवाज हुई। उससे घरका मालिक बनिया जाग ऊठा। उसने आवाज कसी—'अरे, कौन घर में घुसा है?'

चोरने कहा—'अजी, चोर हूँ।'

हँसकर बनियेने कहा—'अरे, चोर कभी क्या ऐसी लापरवाही से चोर हूँ—ऐसा कहेगा क्या? सच बताओ कि तुम कौन हो?'

'सेठजी, मैं सचमूच चोर हूँ। चोरी करने के हेतुसे ही घर में घुसा था, लेकिन मैंने आप का नमक भूल से खा लिया है। अब मैं इस घरमें चोरी नहीं कर सकता। क्योंकि नमकहरामी तो सबसे बड़ा महापाप है।'

(हमारे चोर भी नमकहलाल थे। आज के तथाकथित साहुकार शायद कैसे हों!)

www.yugpradhan.com

(१८) था धनकुबेर, मरा अपमृत्यु से

वह था अमरिका का धनकुबेर।

एक दिन की बात है। अपनी संपत्ति का अंदाजा निकालने के लिये, वह फौलादी दीवारों से जडी तिजोरी में घुसा। उसके द्वार स्वयं-संचालित होनेसे आप ही आप बंद हो गये। गलती से चाभी बाहर छूट गयी। दो—तीन घंटों तक कामकाज पूरा कर लेने के बाद, जैसे ही वह बाहर निकलने लगा, त्यों ही पता चला कि दरवाजा बंद है, और चाभी बाहर रह गयी है।

द्वार खोलने के लिये अंदर से जोर की पुकारें लगायीं, लेकिन बाहर कोई न थी। और तीन घंटे गुजर गये। वह धनिक हताश हो

गया। उसे जोरों की प्यास लगी। उसकी आँखों के सामने मौत नाचने लगी।

प्यास के मारे तडपते उसने एक कागज और कलम उठाकर उसने लिखा—अगर इस समय मुझे कोई पानी का एक ग्लास दे तो, मैं अपनी सारी संपत्ति उसे भेंट कर दूँ।'

और.....थोडी ही देर में उस धनकुबेर की देह वहीं तडपती निर्जीव हो गिर पडी।

(पुण्यबल है तो सबकुछ सलामत है। लेकिन संपत्ति के भरोसे जिंदा नही रह पाते। वह पुनर्विवाह करनेवाली नारी जैसी बात होगी।)

www.yugpradhan.com

(१९) माँ ! लेकिन....मैं आप ही की संतान हूँ।

यौवन के उन्माद में मचलती एक नवयौवना, एक भारतीय युवान संत के पास आयी। एकान्त, अंधकार एवं आशा के बल पर वह आयी थी। मनोरथ पूर्ण होने का पूरा आत्मा विश्वास था।

धीरे से कहा उसने—'मुझे आप जैसी ही संतान चाहिए। आप ही उसका दान करें।'

ब्रह्मचर्य के ओज और तेज से प्रभावित उस संतने उस नवयौवना पर एक मार्मिक दृष्टि डाली, जिससे पाँव नीचे की जमीन धँसने लगी।

क्षणमात्र में ही वे संत भावावेश पूर्ण हो बोल ऊठे—ओ माँ ! मैं ही तुम्हारी संतान हूँ। मुझे ही अपनी संतान समझ ले। मुझ जैसी दूसरी संतान प्राप्त करने के लिये प्रसूति की पारावार वेदना का अनुभव करना क्यों चाहती हो ! मेरी प्यारी माँ।

और...भारी आश्चर्य। उस 'माँ' शब्द से ही उस नवयौवना की कामवृत्ति शान्त हो गयी। उसके अन्तःकरण में उमड़ा वात्सल्य, आँखों से अश्रु रूप में बहने लगा।

(ऐसी थी हमारी प्राचीन संस्कृति! आज तो वे 'माँ, बहन, बिटिया' शब्द शक्तिहीन–प्रभावहीन हो पाये हैं। ऊपर से खतरनाक हो गये हैं।)

(२०) मिलावट का खतरनाक शस्त्र

हिटलर उस प्रदेश को हस्तगत नहीं कर पाता था। कई व्यूह आजमाये। फिर भी हिटलर–सा हिटलर विवश बना रहा। आखिर उसने एक दाँव आजमाया। शत्रुप्रदेश की अर्थव्यवस्था को तितरबितर कर देने की चालबाजी आजमायी। शत्रुप्रदेश के असली चलन में नकली चलन शामिल कर दिया। विमानों द्वारा लाखों की तादाद में बनावटी करैंसी नोटों के बंडल, ढेर के ढेर बरसाये।

प्रजा लोभ में लपटायी। नोटों के बंडलों की छिना–झपट शुरू हुई। असली नोटों में नकली नोट मिल जाने से उसकी अर्थव्यवस्था में भारी खलबली मच गयी। परिणाम स्वरूप, सरकार ने व्यवहार में से असलीनकली सभी नोटों को रद कर दिये। उसकी खरीदी की ताकात खत्म हो गयी।

हिटलर मौका पाकर हमला कर बैठा और उसने भव्यतम विजय पायी।

(धर्मों के विनाश के लिये गेरुए कपडे, 'हरे राम हरे कृष्ण!' की धून आदि बनावटी–मिलावटी शस्त्रों का प्रयोग कभी का आजमाया

www.yugpradhan.com

गया है। सावधान संतजनो ! हमारे अस्तित्व के लिये चुनौती रूप इस धर्मसंग्राम के मोर्चे पर सभी आकर खडे हो जायँ ! प्राणों की न्योछावरी के लिये कटिबद्ध हों !)

(२१) धर्मभ्रष्ट प्रजा की बेहाली

भारत के एक समय के दिल्ही के मंत्री गुलजारी लाल नंदाजी ! भारतीय प्रजा में व्याप्त भ्रष्टाचार को केवल दो वर्षों में खत्म करने के लिये कटिबद्ध हुए वे मंत्रीजी। भ्रष्टाचार से संबंधित बातें जानने के लिये प्रतिदिन दस आदमियों से भेंट करते। उसके लिये कमरे में दस कुर्सियाँ रखी थीं। जो दस आदमी पहले आकर बैठ जाते, उसकी बातें–शिकायतें वे सुनते।

www.yugpradhan.com

एक दिन दसों कुर्सियों पर आदमी बैठ गये थे। उस समय एक आदमी आया। भ्रष्टाचार संबंधी किसी मुकदमे के बारे में आज ही वह नंदाजी से मिलकर चर्चा कर लेना चाहता था। लेकिन अब क्या हो सकता था ? दसों कुर्सियों तो भरी पड़ी हैं। उसने दसवें आदमी की ओर देखा। बाद में तुरंत ही पाँच रूपये का नोट निकाल कर उसकी जेब में धीरे से रखते हुए कहा कि–मुझे आज ही प्लेन से बम्बई पहुँचना जरूरी है। तो आप कुर्सी खाली करें। ताकि मैं नंदाजी से शीघ्र बातचीत कर पाऊँ।"

पाँच के नोटने कमाल दिखाया ! उस आदमीने कुर्सी खाली कर दी। मुलाकातें शुरू हुई। दसवें आदमी की बारी आयी। उस आदमी ने नंदाजी से कहा–' आप के कमरे में ही मैंने भ्रष्टचार–नाबूदी की कुर्सी पर भ्रष्टाचार आजमाया है। उसे भी आप दूर नहीं कर पाये हैं।

तो सारे भारत में से भ्रष्टाचार—नाबूदी का संभव ही कहाँ ? अतः ऐसी व्यर्थ चिन्ताओं से परेशान होने के बजाय, दूसरे मंत्रियों की तरह...."

यह सुनते ही नंदाजी स्तब्ध हो गये ।

(२२) बेचारा, 'मैं' कुचला गया !

एक दिन, एक अंग्रेज इजनेर विनोबाजी के पास आये। अपने देश का जिक्र करते हुए उसने बताया कि—"मैंने अपने देशमें, अस्सी मजलों का मकान बनाया हैं। उसकी विशिष्टता यह है कि—जीवन के लिये आवश्यक ऐसी कोई भी चीज न होगी, जो मकान के स्टाल पर मिल न पाये। उपरान्त, खेलकूद का मैदान, स्नानागार, सिनेमाघर, आदि मन बहलाने की सारी सुविधाएँ उसमें मौजूद हैं। संक्षेप में कहा जाय कि, उस मकान के निवासी को कभी नीचे नहीं ऊतरना हो, ऐसा संपूर्ण आयोजन है।" मन ही मन में मुस्कराते विनोबा-जीने धीरे से कहा—

"भाई, लेकिन एक चीज तो उसमें नहीं ही होगी।" इन शब्दों को सुनकर अंग्रेज इजनेर का अहंभाव ऊत्तेजित हुआ। गर्विष्ठ आवाज में उसने कहा, "वह संभव ही नहीं। बताइए आप, कौनसी चीज इसमें नहीं ?"

गंभीर भाव से विनोबाजी ने कहा—'स्मशान !'

"भले आदमी ! यदि उसके निवासी आदमी को जिन्दा समय में नीचे ऊतरना न पडे तो, मरने पर भी क्यों नीचे ऊतरे ? स्मशान की भी सुविधा होती तो क्या हर्ज था ?" यह सुनकर अंग्रेज तो दंग रह गया।

www.yogpradhan.com

(भोगसामग्री के हिमालय के पत्थरों के नीचे 'अहं' कैसा बुरी तरह कुचला गया है !)

(२३) कितनी बदतर है, व्यसनों की गुलामी !

बम्बई के एक प्रसिद्ध डाक्टर के जीवन की यह सत्य घटना है।

एक दर्दी का भारी–खतरनाक आपरेशन उन्होंने किया। आपरेशन के बाद, लंबे अरसे तक दर्दी बेहोश रहा। आपरेशन भारी था, अतः डाक्टर को शंका हुई। दर्दी के स्वजन भी चिंताग्रस्त हुए।

डाक्टर ने कई कोशिशें कीं, लेकिन दर्दी किसी भी तरह होश में नहीं आ रहा था।

www.yugpradhan.com

अब क्या किया जाय ?

समय गुजरता था और गभराहट भी बढती जा रही थी।

यकायक डाक्टर को सूझा। उन्होंने दर्दी के सगे–संबंधियों को इकट्ठे किये।

'इस दर्दी को किसी भी प्रकार का व्यसन है क्या ?' डाक्टर ने पूछा।

'एक नहीं, अनेकों व्यसन हैं।' स्वजनों ने बताया।

'उनमें सब से अधिक तेज व्यसन किस बात का था ?' डाक्टर ने कहा।

'हाँ जी, सिगारेट पीने का।' स्वजनों में से, एक ने बताया। और....तुरंत डाक्टरने सिगारेट जलायी। जैसे ही उस सिगारेट का धूँआ दर्दी की नाक के सामने फैंका गया, कि तुरंत दर्दी जाग ऊठा और सहसा बोल ऊठा–'एक सिगारेट मुझे दें। मुझे भी जलाना है।'

(२४) उस वंश को सीसोदिया क्यों कहते हैं ?

एक राजा था। एक दिन उसकी आँखों में भारी पीडा फूट पड़ी। दिनरात शूल की वेदना जारी रही। कई उपचार किये लेकिन व्यर्थ।

एक रोज किसी वैद्यने औषधोपचार कराने की सलाह दी। राजा ने बात मान ली।

घर जाकर, वैद्यने एक जिन्दे कपोत को चीरकर, उसके खून में मिलाकर एक औषध तैयार किया। और स्वयं अपने हाथों राजा की आँखों में लगाया। आँजते ही उसकी सारी वेदना शान्त हो गयी।

" ऐसा औषध कई आँखों के दर्दियों के लिये उपयुक्त बन सकता है " ऐसा सोचकर राजाने उस औषध की रचना के बारे में वैद्यजी से पूछा। वैद्यने सही बात बतायी। सुनते ही राजा बेहोश हो गया। होश में आकर शास्त्रज्ञों से पूछा कि–'अपनी आँख की पीडा की खातिर कपोत के प्राण लेनेवाले के लिये शास्त्र में क्या प्रायश्चित्त है ?' शास्त्रज्ञों ने टालमटाल किया तो राजाने तुरंत तलवार खींची।

तब....'सीसे के गर्मागर्म रस का पान' का प्रायश्चित्त बताया।

और....उस प्रायश्चित्त का आचरण करते हुए राजा ने देह छोडी। तब से सीसे का रस पीनेवाले राजा का वंश 'सीसोदिया' कहलाया।

(२५) जीवनके भयस्थान

एक दिन कलकत्ता शहर के राजमार्ग–सा हावरापुल तैयार हो गया। उसके उद्घाटन की जोरदार तैयारियाँ हो रही थीं। पुल का मुख्य स्थपति इननेर भारतीय था।

आज अंग्रेज अफसर के हाथों पुल का 'उद्घाटन' होनेवाला

था। भारतीय स्थपति फूला नहीं समाता था; क्योंकि इस पुल की रचना को वह अपने जीवन की महासिद्धि समझता था। समय पर अंग्रेज अफसर आ पहुँचा। 'उद्घाटनविधि' पूरी होने के बाद पुल के ठीक बीचमें आकर, अंग्रेज अफसर, इजनेर के साथ बातें करने लगा। बातचीत के दौरान उसने इजनेर से पूछा कि–'पुल के दो भागों को जोडनेवाला संधिस्थान कहाँ हैं?'

मुख्य इजनेर के सिवा किसी को इस रहस्य का पता न था। किसी को भेद मालूम हो तो उस जगह पर एक ही बमके धमाके से पुल के दो टुकडे हो जाय।

इजनेरने अफसर को उस संधिस्थान को बताते हुए कहा कि–'यह रहा वह संधिभाग। और यकायक रिवाल्वर से गोलियाँ छूटीं। अफसरने इजनेर को वहीं खत्म कर दिया।

संधिस्थान का रहस्य जाननेवाला इजनेर ही भविष्य में किसी लालच–लपेट में आकर भेद बता दे तो? इसी वजह से उसे खत्म कर दिया।

(हमारे जीवन में भी ऐसी खतरनाक बातें, कमजोरियाँ कई भरी पडी होंगी, जो सारे जीवन को तहस–नहस कर दें।)

(२६) पश्चिमप्रेमी भारतीय जन!

एक भारतीयने अमरिका की भारी प्रशंसा की। भरपेट प्रशंसा करते हुए उसने एक बात ऐसी बतायी कि–'अमरिकी लोगों की सहृदता की किस हद सराहना करूं? वहाँ के एक मित्रने अपनी एर-कन्डिशन मोटर में बिठाकर मुझे दस हजार मीलों का प्रवास कराया। दर्शनीय कई मनोरम स्थल दिखलाये। कितना भला आदमी!"

उपरान्त, मैने भी यात्रा के सिलसिले में पचास हजार–रूपयों का खर्च किया। हमें भी अन्योन्य शुभेच्छा–व्यवहार तो निभाना चाहिए ही।' ये बातें सुनकर, स्वदेश के गौरवप्रेमी भारतीयने उसे खरीखरी सुनायी–" उस अमेरिकनने दस हजार मील की यात्रा करायी, इतने मात्रसे तुम अपनी जन्मभूमिका गौर मनाने के बजाय अमरिका की चापलूसी करो, यह स्वाभाविक हैं। अन्यथा उस देशकी सांस्कृतिक बरबादी को देखते हुए, उसके लिये एक भी शब्दप्रशंसा के लिये कहने तुम तत्पर न होते !"

'आपने पचास हजार रूपयों का खर्च किया' उसके लिये आप गौरव मनाते हैं ? भारत की गरीब प्रजाके लिये इतने रूपयों का खर्च किया होता तो ?'

www.yugpradhan.com

लेकिन खेद की बात है कि भारत के पश्चिमप्रेमी लोगों से यह अपेक्षा रखें भी कैसे ?

(२७) कीमती क्या ? भाषण या धन ?

एक जमाने की घटना है। ब्रिटन के महामात्य चर्चिल टक्सी में बैठकर जा रहे थे। बीच में विचार आते ही उन्होंने टैक्सी–ड्राइवर से कहा–' भाई, मुझे इस मकान में जरूरी काम के लिये जाना है। पंद्रह मिनट ठहरें।'

ड्राईवर ने चर्चिल की इस मांग को ठुकरा दी और कहा कि मेरे लिये यह संभव नहीं।

जब चर्चिल ने कारण पूछा तो ड्राइवर ने बताया कि–' यहाँ पास आये मैदानमें मि० चर्चिल भाषण देनेवाले हैं। मुझे उन्हें सुनना है अतः मैं आपकी माँग पूरी कर सकता नहीं।'

उस समय चर्चिलने एक डालर देते हुए कहा कि–'भाई, मेरी इतनी बात मान जाओ।'

हँसते हुए ड्राइवर ने कहा–'अच्छा, साहब ! आप अपना काम-काज निपटा आओं, मैं यहीं खड़ा हूँ।"

चर्चिल ने पूछा–'लेकिन तुम फिर उस चर्चिल के प्रवचन को सुन न पाओगे !'

'अरे साहब ! ऐसे तो कई चर्चिल यहाँ पर आये और चले गये। मुझे उसकी परवाह नहीं।' ड्राइवर ने तपाक से जवाब दिया।

चर्चिल सुनते ही रह गये।

(२८) धर्म–युद्ध

www.yugpradhan.com

जैन संघके वे अधिपति थे। लालभाई शेठ उनका नाम था।

एकबार सरकारी अधिकारी आबू पर जैन देवालय देखने आये। उनके लिये यह दर्शन के बजाय प्रदर्शन की चीज थी।

चौकीदारों के प्रार्थना करने पर भी, उसे ठुकराकर, अधिकारी महोदय बूट पहनकर जिनदेवालयों में घुमे।

सेठ लालभाई को इस बात का पता चला तो तुरंत उन्होंने उस अधिकारी के विरुद्ध अदालत में मुकदमा पेश किया।

भाग्यवश मुकदमेका फैसला लालभाई सेठ के समर्थन में रहा। लेकिन फैसला दे देने के बाद, न्यायाधीश ने लालभाई से पूछा कि–'मान लें, आप इस मुकदमे को हार जाते तो ?'

सेठने बताया 'तो मैं सुप्रिम तक मुकदमा पेश करता।' 'वहाँ पर भी हार खाते तो ?' जजने कहा। "तो मैं प्रीवी० काउन्सील में पहुँचता।' तुरंत सेठजीने जवाब दिया।

'लेकिन वहाँ पर भी सेठजी ! आपकी दाल न गलती तो ?' गंभीर मुखमुद्रा के साथ जज बोले ।

पूरी गंभीरता के साथ सेठ ने जवाब देते हुए कहा–'तो साहब ! मैं दुनियाभर में घोषणा कराता कि, ब्रिटिश युगमें न्याय का दिवाला निकल पाया है । न्यायालयों में भी न्याय जैसी कोई बात नहीं रही । सेठजी की धर्मनिष्ठा देखकर और धर्मगौरव देखकर जज फूले न समाये ।

(२९) वंदन हैं, उस मर्यादा को !

(एक अजैन रामायण का प्रसंग)

हनुमानजी ! अब भी सीताजी का पता नहीं चला । अब जह जिम्मेवारी आप उठा लें ।

www.yugpradhan.com

सीता के अपहरण से पारावार व्यथित रामचंद्रजीने हनुमान से कहा ।

'भगवन् । आपकी आज्ञा शिरसावंद्य करता हूँ, लेकिन मुझे सीताजी की पहचान के लिये कोई निशानी दें ।

रामचंद्रजी ने सीताजी की आँखें, नाक, कान, और मुँह के आभूषणों का सविस्तर वर्णन किया और कहा कि–'जिसकी आँखें आदि इस प्रकार की हों उस दुखिया नारी को सीता समझ लेना ।'

'स्वामिन् !' हनुमानजी ने कहा । 'परायी स्त्री का मुँह देखना, मेरे लिये वर्ज्य हैं । अतः मेरे लिये किस काम की हैं ? '

तो हनुमन् ! दूसरी पहचान दूँ । जिस दुखिया नारी के इर्दगिर्द रहे वृक्षों, पर्णों, पुष्पों, फलों और कंकडों में से 'राम–राम–राम' ऐसी प्रतिध्वनि तुम्हें सुनायी दें, उस स्त्री को आप सीता के रूप में पहचानें ।' रामचंद्रजी ने कहा ।

वंदन कर, हनुमानजी सीता की खोज में निकले और 'राम–राम–राम' के प्रतिध्वनि के घेरे में बैठी सीता को पहचान लीं।

(परखी के साथ 'हाथ मिलाने' में, शिष्टाचार समझनेवाले इस असभ्य युग में ऐसी बातें किन्हें पसंद हैं?)

(३०) धन, धर्म विनाशक है।

पेथाभाई भगवान के अचल भक्तजन! प्रतिदिन सुबह पाँच से लेकर दिन के ग्यारह बजे तक मंदिर में ही रहते और भगवान की बेहद भक्ति किया करते।

एक रोज मंदिर के जक्ष पेथापाई की भक्ति देख प्रसन्न हो उठे। प्रत्यक्ष हो सामने आकर पेथाभाई से कहा–'लो, ये दोसौ रूपये! मूँगफली का धंधा शुरू कर दो, देख मजा!'

पेथाभाई ने दोसौ रूपयों में भक्ति की बिक्री कर दी। धंधा तो बडे जोरों से चला। प्रतिदिन बढ़ता ही चला। अब तो पेथाभाई का घर टंकसाल बन गया था। तीन मजले का मकान बन गया....लेकिन भक्ति दिनोंदिन कम होती चली। ६ के बजाय क्रमशः ५, ४, ३, २ और अन्त में एक घंटे की हो गयी और आखिर में केवल नाममात्र की भक्ति रही।

पुनः एक बार जक्षराज प्रगट हुए। पूछा—

'ऐसा क्यों?'

पेथाभाई ने दिल खोलकार बातें बतायीं कि–'अब व्यवसाय में फूरसत कहाँ कि पूजासेवा कर पाऊँ?'

जक्षने कहा–'ठीक है, अब आप की पूजासेवा पुनः शुरू हो जायेगी। चिन्ता न करो।'

और दूसरे दिन से ही व्यापार में घाटा शुरू हो गया और थोडे दिनों में धंधे का नामोनिशान मिट गया और...फिर एक बार भक्ति का चक्कर जारी रहा १, २, ३, ४, ५ अरे बढ़ते बढ़ते पूरे ६ घंटे तक सेवा–पूजा का क्रम चलता रहा।

(३१) सारी दुनिया पैसों से नपीतुली है !

आज अदालत में तीन मुकद्दमे पेश हुए थे। जिनका संवाद निम्नानुसार था। तुरंत फैसला भी दिया गया था।

पहला मुकद्दमा :–

(१) फरियादी – साहब, मेरी पत्नी को यह चकमा कर ले गया है।

जज – उस हानि के बदले में तुम क्या चाहते हो।

फरियादी – साहब, दस हजार रूपये।

जज – ठीक हैं, नुकसान के बदले में दस हजार रूपये मंजूर किये जाते हैं।

मुकद्दमा दूसरा :–

(२) फरियादी – साहब, मिल की मशीन की खराबी के कारण मेरा हाथ कट गया है। मुझे नुकसानी भरपाई करायें।

जज – आप की क्या अपेक्षा है ?

फरियादी – साहब, बारह हजार रूपये।

जज:– भले, मंजूर किये जाते हैं।

मुकद्दमा तीसरा :–

(३) फरियादी– साहब, अमुक आदमीने सरे बाजार मुझे जूते से पीटकर बेआबरू किया हैं। उसकी हानि भरपायी हो। रूपये पांच हजार कमसे कम !

www.yogpradhan.com

जज :—अच्छा, तुम्हारी माँग अनुसार, सारी रकम मंजूर की जाती है ।

(अफसोस इस बात का है कि पत्नी, हाथ और इज्जत तीनों का मूल्यांकन पैसों के बल पर हो रहा है । कैसा जमाना ! कैसी बलिहारी !)

(३२) बेचारा ! आखिर हार बैठा !

था तो बड़ा धर्मिष्ठ ! सारा जीवन धर्मक्रिया में गुजारा ! कौन सी धर्मक्रिया न करता था वह ?

दिन गुजरे । बूढा हुआ । मृत्युशय्या पर पड़ा । स्वजनों का आना—जाना शुरू हुआ ।

एक दिन अपने बचपन का साथी मित्र मिलने आया । डाक्टर था । नये जमाने के रंग से भरापूरा था । उसने धीरे से 'काडलीवर आइल' (मछली का तेल) का उपयोग सुझाया ।

यह सुनते ही धर्मीजन हडबडाया । बोला—'यह कभी संभव नहीं । अभक्ष्य का सेवन कर, मैं अपनी पवित्र काया को भ्रष्ट नहीं करूँगा । उसकी अपेक्षा मौत उत्तम है ।'

लेकिन बारबार इस बात को दुहराते हुए डाक्टर एक दिन सफल रहा । पापाचरण करने के बाद, प्रायश्चित्त करने की बात उसके दिमाग में बैठ गयी । उसे दूसरे दिन मछली का थोडा तेल पिलाया गया ।

पाँच ही मिनट गुजरे । धर्मात्मा गुजर गये ।

यदि जीवनमें एक बार ही मरना है तो क्यों मौत से डरकर, सत्वहीन होकर जीते रहना ? ऊपर से धर्म को भूल जाना ?

www.yugbradhan.com

(३३) जैसे के साथ वैसा

महाभारत के युद्ध में एक दिन कर्ण ने पांडवों को 'त्राहि–त्राहि' कर दिये। कर्ण की बाणवर्षाने अर्जुन को भी हैरान कर दिया।

विजय का पलड़ा कौरवों के पक्ष में, भारी हो रहा था! उसी क्षण कर्ण के रथ का पहिया, मैदान की गीली जमीन में अंदर धँस गया!

कर्ण के सारथी बने थे राजा मद्र (शल्य)। पहिया तुरंत बाहर निकालने के लिये कर्ण ने मद्र से प्रार्थना की। लेकिन मद्र को कुलाभिमान की याद ताजा हुई। सारथीपुत्र कर्ण की आज्ञा मद्र उठाये!

आखिर शस्त्र रथ में छोड कर्ण स्वयं रथ से नीचे उत्तर, पहिया खींचने लगे। अर्जुन को ललकार कर, कर्णने अर्जुन से कहा–'थोडी देर बाणों को थाम लो। युद्ध के नियमानुसार निःशस्त्रों पर हथियार नहीं उठाना चाहिए।' सरल स्वभाव के अर्जुन ने तुरंत बाणवर्षा रोक दी।

www.yogpradhan.com

यह सुनकर अर्जुन के साथी बने श्रीकृष्णने अर्जुन से कहा– 'पार्थ! यह क्या? जिसने आज तक न्याय–नीति का ख्याल ही नहीं किया, उसके साथ न्याय–नीति की चर्चा ही क्यों? जैसे के साथ वैसा ही होना चाहिए! अर्जुन! सावधान। उठाओ धनुष्य और चढाओ बाण!"

श्रीकृष्ण के आदेश को अर्जुनने शिरोधार्य किया और मुसीबत में फँसा कर्ण, अर्जुन की तीव्र बाणवर्षा से मारा गया।

(३४) पतन किसका? जिसका उत्थान हो।

एक दिवस परमात्मा महावीरदेवने अपने शिष्य इन्द्रभूति गौतम गणधर से कहा–"हालिक किसान को प्रतिबोध करो और धर्मज्ञान कराओ।"

प्रभुकी आज्ञा पाकर, इन्द्रभूतिजी हालिक के गाँव पहुँचे। इन्द्रभूतिजीने संसारकी असारता का ऐसा परिचय कराया कि उसी समय किसानने सारी भोग–भावनाएँ छोडकर श्रमण का वेश धारण किया। उसके बाद इन्द्रभूति के साथ चला। राह चलते उसने परमात्मा महादेव के लोकोत्तर स्वरूप का वर्णन सुनते सुनते सम्यक्त्व प्राप्त किया।

लेकिन यह क्या ? जैसे ही उसने तीर्थंकर देव महावीरप्रभु को देखे वैसे ही गभराये घोडे की तरह वह बिगड़ा। उसी जगह श्रमणका भेष उतार फेंक भागा। यह देख इन्द्रभूतिजी आदि चकित रह गये। परमात्मा से इस रहस्यको समझाने की प्रार्थना की।

प्रभुजीने बताया कि, 'इन्द्रभूत, तुम्हारे निमित्त को पाकर, उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया। इसी लिये मैंने तुम्हें उसके पास भेजा था, लेकिन पूर्वजन्म के मेरे साथ हुए वैर के कारण, वह किसान मुझे देखते ही आगबबूला हो भाग छूटा।

" ठीक है, लेकिन एकबार जिसका उत्थान हुआ है, वह निष्फल नहीं रह पायेगा।"

www.yugpradhan.com

(३५) स्याद्वादी तक किसी की पहुँच नहीं !

" अरे भाई ! इस सभामें कोई जैन विद्वान तो नहीं है न ! यदि न हो तो ही मैं वक्तव्य दूँगा।" वक्ताने श्रोताओंसे कहा।

पूरी चौकसी के बाद, भाषण शुरू हुआ। उसमें एक कहानी जुडी रही।

" एक गाँव था। वहाँ नदी बहती थी। पासमें ही एक चमत्कारी बरगद का पेड था। उसके जमीन पर गिरते सारे पन्ने चाँदी के बन जाते थे।" वक्ता ने कहा। श्रोतावर्ग चकित हो सुन रहा था। बडे लोग भी " हाँजी हाँजी " कर रहे थे।

अब बात ऐसी हुई । भाषण शुरू होने के बाद थोडी ही देरमें, स्याद्वाद के ज्ञाता कोई जैन विद्वान सभा में आकर चुपचाप बैठे हुए थे । उन्होंने तुरंत प्रश्न किया—'लेकिन जो पन्ने धरती या नदी के पानी पर गिरते न होंगे, लेकिन किनारे पर ही गिरते होंगे, उनका स्वरूप कैसा बन पाता होगा ?

यह सुनते ही वक्ता चौकन्ने होकर बोले 'अरे, मेरी सभा में कोई स्याद्वादी आ घुसा मालूम होता है । बस अब मेरा वक्तव्य यहीं समाप्त होता है ।"

(३६) युधिष्ठिर क्यों पराजित हुए ?

www.yogpradhan.com

कहा जाता है कि भीम एक राक्षस को बेहद तंग किया करता था । जिससे भीमका नाम सुनते वह मीलों दूर भाग खड़ा होता । उसकी रगरग में भीम का भय व्याप्त हो गया था । स्वप्न में भी उसके दर्शन होते ही, राक्षस चीख ऊठता था ।

एक दिन राक्षस मर गया ! उसकी हड्डियों में से जुआ खेलने के पासे बनाये गये ।

जब युधिष्ठिर ने ऐतिहासिक वह जुआ खेला, तब इन्हीं पासों का उपयोग किया गया था ।

जुआ खेलते समय, भीम युधिष्ठिर के पास ही बैठा हुआ था ।

जैसे पास फैके जाते उसी समय, पाँव पर जोरों की थपकी मार कर भीम ऊँची आवाज से कहता—" अे....पासे रहे पोबार... !"

भीम की इस गर्जनासे ही, उन पासों में रहा राक्षस काँप ऊठता

और उसके कारण पासे उलट जाते। हर बारी में ऐसा हुआ और युधिष्ठिर, दौपदी तकको हार बैठे। इतिहास का यह अनोखा जुआ बन पडा।

(यह अजैन कथा है। उससे संबद्ध अनावश्यक विवाद से हम बचे। हम इतना समझ लें कि भयकाप्र भाव व्यापक और त्रासदायी रहता है।)

(३७) बीमार क्यों होना चाहिए ?

महान वैद्यराज लुकमानने, उपचार के कतिपय औजारों को दुरस्त कराने के लिये, अपने सेवक को, लुहार के पास भेजा।

लुहारने कहा—" ३५ दिनार मजदूरी के होंगे ! "

लुकमान का सेवक वापस लौटा। लुकमान से सारी बात कही। उन्होंने दुबारा अपने सेवकको लुहार के पास भेजा। साथ कहलवाया कि—' मेरे पास से मजदूरी न लो। कल तुम बीमार हो, तो मेरी जरूरत न होगी क्या ?"

लुहारने संदेश सुना और वह हँसा।

लुकमान के सेवक से उसने कहा कि—" पैंतीस दिनार तो मजदूरी के लूँगा ही। दुरस्ती करानी हो तो कराओ साथ ही मेरे ये तीन वाक्य भी लुकमानजी से अवश्य कहना: (१) सप्ताह में एक बार (२) पंद्रह दिन में एक बार (३) मास में एक दफा।"

लुकमानने ये वाक्य सुने। वे तुरंत बोल उठे—" जिन्हें आरोग्य की चाबी मिल गयी है, वह बीमार होगा कैसे ? फिर उसे मेरे पास आने की जरूरत ही कहाँ रही ? सप्ताह में एक बार जो लंघन करे, पंद्रह दिनमें एक बार उपवास करे और मास में एकबार जो अब्रह्म का आचरण करे।"

तुरंत सुलमानने ३५ दिनार भिजवा दिये। लुहारने दुरस्ती का काम पूरा किया।

(३८) राम जिसकी रखवाली करे.... !

विजेता मुगल बादशाह नादिरशाहने हाहाकार मचा दिया था। फिर भी, राजपूत राजाओंने उसके सैन्य का जिस हद खात्मा बुलाया था, उससे उसकी विजय पराजय–सी अखरने लगी।

अतः बदला लेने के लिये, उसने सैकडों हिन्दुओं को जिन्दा जलवा दिये। कई देवमंदिरों का ध्वंस करा दिया और हजारों मूर्तियाँ को टुकडा–टुकडा कर दीं।

www.yugpradhan.com

इतना करने पर भी, उसकी वैरागिन शान्त न होने पर, उसने हिन्दुओं के प्राणतुल्य धर्मशास्त्रों के ग्रंथागारों को जलाये। कुछ क्षणों में ही सारे भंडार राख हो गये।

सब कुछ तहस–नहस कर नादिर वापस लौटा।

लोगों ने आग बुझा दी। एक भंडार में प्रवेश किया। अमूल्य–बहुमूल्य ग्रन्थों की राख देखकर, प्रजाजन फूट फूट कर रो पडे।

भंडार के एक कोने में, आधे जले ग्रंथ को लोगों ने देखा। उसे जैसा–का–वैसा बाहर निकाल लिया।

यह था 'कुमारभृत्य' ग्रंथ। वैद्यशिरोमणि आचार्य जीवक द्वारा रचित बालरोगों के विज्ञान का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ।

सभी की आँखों में हर्षाश्रु उभर आये।

(३९) लक्ष्मी अंधापा देती है।

एक आदमी था। बड़ा भारी कंजूस, मानों दूसरे मंमण सेठ! हमेशां तैल और चावल ही खाया करता। जूतों को हानि न हो, अतः जूतों को सर पर धरकर ही घुमा करते।

एक दिन किसी संतपुरुष से भेंट हुई। थोडा धर्मोपदेश जानने की तीव्र इच्छा व्यक्त की। संतपुरुष परम कारुणिक थे। कृपण के जीवन से पूरे परिचित थे। उपदेश का ऐसा मौका क्यों जाने दें?

उन्होंने कहा—" उस खिडकी के पास जाकर खडे रहो। नीचे रास्ते पर कौन दीख पड़ता है?"

कृपणने खिडकी के पास जाकर देखकर कहा 'स्त्री—पुरुष—गरीब आदि सभी दीख पड़ते हैं।'

www.yugpradhan.com

बाद में संतने उसे बुलाकर अरीसे के सामने खडा रखकर पूछा—" अब इसमें कौन दिख पड़ता है?"

जवाब मिला—" कोई नहीं, सिवा कि मैं।"

संतने कहा—'इस भेद का कारण क्या है? उस काँच पर चाँदी चढाई नहीं थी। इस अरीसे के काँच पर चाँदी चढ़ाई हुई है। समझे? जहाँ धन—दौलत का गर्व, वहाँ दूसरों की हालत की ओर नजर बंद हो जाती है।'

(४०) धर्मनिमित्त द्रव्य का अपव्यय न हो।

गांधीजी की पत्नी कस्तूरबा के देहविलय के बाद, उनके स्मृति के रूप में 'कस्तुरबा स्मारक फंड' आयोजित किया गया। लाखों रूपये इकट्ठे किये गये।

उसके बाद थोडे समय में ही, भारत का एक प्रदेश अकालग्रस्त हो गया। भारी सूखा रहा। कुछ बुद्धिजीवियों का ध्यान, कस्तूरबा स्मारक फंड की ओर गया। उन्होंने कुछ समझदार आदमियों के बने प्रतिनिधि–मंडल को गांधीजी के पास भेजा।

सन्मान–विधि के पश्चात् उन्होंने गांधीजी से कहा–' जब देश के एक प्रदेश की प्रजा अकाल की भोग बनी है और एक एक करके मरती जा रही हैं, ऐसी दुर्दशा में ' कस्तूरबा स्मृति फंड ' का उपयोग, उसके बचाव के लिये किया जाय। ऐसी हमारी प्रार्थना है। '

गांधीजीने उसी क्षण बिना विलंब उत्तर दिया–" वह कभी हो न पायेगा ! कस्तूरबा फंड के निमित्त जिन लोगों के रूपये पैसे जिस कार्य के निमित्त दिये हैं, उन्हीं कामों के लिये, उन पैसों का उपयोग करना चाहिए। अन्यथा दाताओं के साथ विश्वासघात–धोखाबाजी करने की नोबत आ सकती है। अतः इस आग्रह को छोडें। अलबत्त मैं इस निमित्त अन्य उपायों द्वारा रूपये–पैसोंका इन्तजाम कर दूंगा....। " और थोडे ही समय में गांधीजीने दूसरी व्यवस्था निभाया।

(धर्मार्थ द्रव्य, सूखा, स्कूल, कालिज या अस्पताल आदि में व्यय करने का परामर्श देनेवाले बुद्धिजीवी इस प्रसंगमें से थोड़ा बोध ले तो ठीक है।)

(४१) श्रेष्ठ नैतिकता

मन्त्रीश्वर विमल आबू के पहाड़ पर, जिनमंदिर का निर्माण करना चाहता था। आबू पहाड़ पर सुयोग्य स्थल प्राप्त करने के प्रयत्न शुरू किये। वह चाहता तो शासन का उपयोग कर जमीन प्राप्त कर सकता था, लेकिन ऐसी आपखुदी उन्हें स्वीकार्य न थी।

उन्होंने ब्राह्मणों को एकत्र कर, उनकी मालिकी की जमीन उनसे माँगी। बहुत सोच-विचार के बाद ब्राह्मणों ने एक प्रस्ताव रखा कि "जिनमंदिर के लिये, जितनी जमीन चाहिए उतनी उस पर सोना-मुहरे बिछाकर ले सकते हैं।"

विमलमंत्रीने तुरंत उस प्रस्तावका स्वीकार कर लिया। सोनामुहरों से लदी बोरियाँ एक एक कर आने लगी। जमीन पर मुहरें बिछाई जाने लगीं। उसी समय मंत्री विमल को एक विचार आया कि-'मैं थोडी अनीति कर रहा हूँ। सोनामुहरें गोलाकार हैं जमीन पर बिछाने पर बीचबीच में थोडी-थोडी जगह छूटती जायेगी। ऐसी जगह बिना मुहरों की कैसे ली जाय?' तुरंत ही उसने सारी मुहरें राजकोष में वापस भिजवा दी और खास नयी चौकोनी मुहरें तैयार करवाकर, उन्हें बिछाकर, जरूरी जमीन प्राप्त की गयी।

www.yugpradhan.com

एक मुहर के पचीस रूपये के हिसाब से भी ४,५३, ६०,००० रूपये केवल जमीन की खरीदी में लगे।

(४२) मुनिजीवन की मस्ती

बादशाह जहाँगीर के जीवन का ऐक प्रसंग है। वह जैन साधुओं की संगति भी करता रहता। उनमें एक साधु थे पन्यास सिद्धिचन्द्रजी नामक।

यौवन और तपोमय जीवन की आभा और ओजस उनके सारे शरीर में उद्वेलित थे।

एक शाहजादी उनके प्रति आकृष्ट हुई। उन्हीं के साथ निकाह पढ़ने का, मातापिता के सामने उसने हठाग्रह किया। बादशाह जहाँगीर ने, सिद्धिचंद्रजी से एक दिन बात-ही-बातों में पूछा-'क्यों आप

ऐसी सुंदर काया को, कठोर मुनिजीवन के आचरण द्वारा बरबाद कर रहे हैं ?' कोई जीवन–सहचरी प्राप्त न होती हो तो, हम लोग उसकी व्यवस्था कर देंगे । आप चिंता न करें ।"

बेगम नूरजहाँ ने भी बादशाह की बात का समर्थन किया ।

मुनिजीने हँसकर उत्तर दिया–'मेरे अनन्य उपकारी गुरुदेव ने दिये मुनिजीवन की जो मस्ती मैं महसूस कर रहा हूँ, उसका वर्णन करना मेरे लिये असंभव है । कीचड में लोटने जैसी गंदी एवं मूर्खतापूर्ण बातें आप आयंदा कभी न करें ।'

ऐसे अकल्पित प्रत्युत्तर से बादशाह आग–बबूला हो ऊठा । मुनिजी को देशनिकाल की डाँट दी । दूसरे दिन सुबह ही, मुनिजी ने आप ही आग्रा से मालपुरा स्थान परिवर्तन कर लिया । शाहजादी मन मसोस कर बैठी रही ।

www.yugpradhan.com

मुनि प्यासा मौत पसंद करेगा, लेकिन अनाचार की प्याऊँ का पानी कभी न पीएगा ।

(४३) दानवीर जगडूसाह

जैनाचार्य श्री परमदेवसूरिजी के परम भक्त थे, दानवीर जगडूसाह ।

अपने ज्ञानबल से आचार्यश्री ने जगडूसाह से कहा था कि–'वि. सं १३१३, १३१४ और १३१५ के वर्षों में त्रिवर्षीय संयुक्त अकाल रहेगा, जो खतरनाक होगा । अतः एक सुखी–संपन्न जैन के रूप में आप को चाहिए कि ज्ञातिभेद छोड़कर सभी की रक्षा के लिये जो ठीक लगे, वैसा आयोजन अभी से कर लें ।"

परिणामस्वरूप, जगडूसाह ने पर्याप्त मात्रा में अनाज इकट्ठा कर लिया । सूखे का वह खतरनाक समय आ पहुँचा । जगडूसाहने अनाज

के गोदाम सभी के लिये खोल दिये, बिना किसी भेदभाव। कई राजा लोग भी, अपने प्रजाजनों के लिये अनाज लेने जगडूसाह के पास आ पहुँचे।

गरीब प्रजाजनों को खिलाने में ही, अनाज का उपयोग किया जाय, ऐसी शर्त के साथ जगडूसाहने राजाओं को भी पर्याप्त अनाज दिया।

उसके उपरान्त, ११२ दानशालाओं का उद्घाटन किया। कुल मिलाकर, आठ अरब, साढे छह करोड मन अनाज का बिना मूल्य दान दिया।

जगडूसाह का निधन हुआ तब उनके प्रति मानार्थ—दिल्ही के बादशाह ने मस्तक पर से मुकुट नीचे उतार दिया था। सिंधपति ने दो दिन उपवास किये थे और राजा अर्जुनदेव तो फूट फूट कर रोये थे।

www.yugpradhan.com

(४४) यथासंभव दवाई न खाएँ।

वैद्यक के ज्ञाता लुकमान, दुनियाभर में प्रसिद्ध भारतीय वैद्यों की कसौटी करना चाहते थे। उसने जीवक नामक वैद्य के पास अपने विद्यार्थी को भेजा। उससे इतना समझा दिया कि—' जिस दिन जीवक वैद्य से तुम्हारा मिलन निश्चित हो, उस को पूर्वरात्रि, इमली के पेड़ के नीचे रातभर सोये रहना।

शिष्यने वैसा ही किया। उससे उसके नितंबभाग में वायु की वेदना शुरू हुई।

सुबह वह जीवक के पास पहुँचा। औपचारिक विधि पूरी हो जाने के बाद, जीवक वैद्यने शिष्य से आने का हेतु पूछा। आगन्तुक शिष्यने सारी बात बताकर गुरु लुकमान की सूचनानुसार सारी रात इमली के पेड के नीचे सोकर आया हूं-यह भी बताया।

यह सुनकर सुज्ञ जीवक समझ गये कि इमली के नीचे सोकर, हेतुपूर्वक वायु की पीडा उपस्थिति करने का प्रयत्न किया है। इस बहाने शायद मेरी परीक्षा ली जा रही हो ! खैर, मैं भी वृक्ष से उत्पन्न रोग को वृक्ष से ही दूर करूँ। " छोटी-मोटी बात पर औषध देते रहना भी उचित नहीं है ! "

जीवक ने कहा-'ठीक है, आगन्तुक महोदय ! तुम अपने स्थल पर वापस लौटो, उस दरमियान जितनी रातें गुजारनी पडे, सारी की सारी नीम के पेड के नीचे सोकर गुजारना। "

आगंतुक ने वैसा किया। वायुदोष हट गया।

जब लुकमान को इस बात का पता चला तो, भारत के वैद्यों के बारे में गौरव बढ़ा और उनके प्रति आदरभाव बढ़ा !

www.yugpradhan.com

(४५) भोलीभाली भक्ता स्त्री

वह स्त्री थी बड़ी भोलीभाली, लेकिन धर्म में अटूट निष्ठावाली। किसी मुनिजी का प्रवचन सुनकर, उसने स्मरण के लिये मन्त्र की प्रार्थना की। स्वामिजी ने उसे मंत्र दिया " ॐ नमो भगवते वासुदेवाय। "

मंत्र की धारणा कर वह स्त्री अपने घर गयी। आज वह फूली न समाती थी। क्योंकि गुरुने उसे मंत्र दिया था।

घर का कामकाज पूरा कर, शुद्ध वस्त्र धारण कर वह मन्त्रजाप करने बैठी।

जहाँ मन्त्र का उच्चार करने तत्पर हुई, उसी समय यकायक वह सोचने लगी और थोड़ी देर के लिये बेचैन हो ऊठी।

बात ऐसी थी कि उसके पति का नाम भी वासुदेव था। मंत्र में

भी 'वासुदेव' शब्द जुड़ा हुआ था। उसने सोचा पति का नाम, पत्नी कैसे ले सकती है ?

अब किया क्या जाय ? थोडी ही देर में उस भोलीभाली स्त्रीने निर्णय किया और जपकार्य शुरू कर दिया। लेकिन अब जपमंत्र का उच्चार इस प्रकार किया जा रहा था "ॐ नमो भगवते बबलाना बापाय।"

(सावधान ! ऐसी बौद्धिक शून्यता की कोई आलोचना न करे, क्योंकि वास्तव में तो हृदय की वक्रता ही, धर्मसिद्धि में रूकावट पैदा करती है।)

(४६) प्रभाव से चेतनसभर आर्यक्षेत्र

www.yugpradhan.com

महिसूर के एक जंगल को पार करते हुए शंकराचार्य ने, तपी हुई मुलायम रेती में फिसलती हुई भयभीत मेढ़की को देखी।

शंकराचार्य ने उसे उठाकर उसे तालाब में छोड आने का सोचकर, जैसे ही उस दिशा की ओर कदम उठाया कि एक फूफकारता साँप धँस आया।

और मेढ़की पर अपनी फणा को फैलाकर, उसकी छाया गिराता संध्याकाल तक खड़ा रहा।

शंकराचार्य दंग रह गये। मेढ़की को एक ही कवल में स्वाहा कर देनेकी प्रकृतिवाले साँपने उसकी रक्षा क्यों की ? शंकराचार्य के दिमाग में यह घटना जम न रही थी।

थोडी देर बाद, वहाँ एक ऋषि पधारे। शंकराचार्य ने सारी घटना अथेति कह सुनायी। ऋषिने कहा—" इसमें आश्चर्यजनक कोई बात नहीं। यहाँ शृंगेरी ऋषिका आश्रम था। वर्षों तक इस तपोवन में धर्म—ध्यान,

होम–हवन चलते रहे हैं। उस से यह सारा प्रदेश अहिंसा के प्रभाव से परिमार्जित है। अत एव दुश्मन की दुश्मनी यहाँ खत्म हो जाती है।"

यह सुनकर शंकराचार्यने आगे चलकर उसी जगह पर शृंगेरी मठकी स्थापना की।

प्रकृति का आविर्भाव करने के लिये किसी से बिना प्रभावित हुए रहना असंभव है।

(४७) नारी–गौरव और हिटलर

शासनसूत्र हस्तगत करते ही हिटलर ने जो स्त्रियाँ नौकरी कर रही थीं, उन्हें नौकरी छोडकर घर सम्हालने का आदेश दिया। उस समय किसी नगर के उपनगरपति की स्थापनापन्न किसी शिक्षित नारीने, हिटलर के पास पहुँच कर निर्भीक आवाज में इस आदेश विरुद्ध अपना आक्रोश प्रगट किया।

नगरभर में उसने महिला सभाओं का आयोजन किया और निश्चित दिन पर उसने महिलाओं के विशाल जूलूस की अगुवाई कर, हिटलर के पास पहुँची और अपनी बातें नीडर बन कर पेश कीं।

हँसकर आत्मीयता के साथ हिटलरने उस खीसे कहा कि–"अरे बहनजी! आपका यह गुस्सा नामुमकिन है। बड़े बड़े मर्दों का पानी उतर जाय ऐसी भारी सैनिक–कार्यवाही सारे जर्मन नागरिकों को निभानी होगी। ऐसे समय आप जैसी महिलाएं ऐसी युद्ध की मैदानी कार्यवाही निभा नहीं सकतीं। अतः आप लोग घर पर ही रहें और आपके पतिदेवों को जो जिम्मेवारियाँ निभानी पड़े, उसके लिये अपने

प्रेम की उष्मा के द्वारा, उन्हें प्रोत्साहित करती रहें। इस रूप में भी आप लोग राष्ट्रसेवा में अपना हाथ बटा सकेंगी।

इसके अलावा, तुम्हें अपने बच्चों को आये दिन के सशक्त जर्मन युवक गढ़ने हैं और राष्ट्र के लिये बलिदान निमित्त कटिबद्ध बनाने हैं!

साथ ही बहनजी! एक और बात यह करनी होगी—'अपने पति की इच्छानुसार घर गृहस्थी सजाये रखना।'

जाओ बहन, ये तीनों काम करो। मैं तुम्हें राष्ट्र की महान सेविका के रूप में समझूँगा।"

(४८) शील का उपासक औरंगजेब

www.yogpradhan.com

एक दिन की बात है। बादशाह औरंगजेब विश्रामखंड में आराम कर रहे थे। साथ ही कुरान की अपनी मनपसंद आयातों का पठन कर रहे थे।

उसी समय शाहजादी जेबुन्निसा वहाँ आ पहुँची। उसने ढाका की मलमल पहनी हुई थी। अंगुठीमें से सारी की सारी मलमल पार कर दी जाय, ऐसी मुलायम और महीन थी।

मलमल का एक आवरण शरीर पर लपेटाया जाय तो मलमल नजर ही न आये। शाहजादीने एक—दो—चार बार नहीं, लेकिन सात सात बार उस मलमल को अंग पर लपेटा था।

फिर भी जेबुन्निसा के मुलायम अंग—उपांग दीख पड़ते थे। औरंगजेबने अपनी बेटी की ओर देखा—न देखा—और झटक कर नज़र हटा ली।

चम्मर झलनेवाले अंगरक्षकों से ऊँची आवाज में कहा—'इस लडकी

को इधर से जल्द दूर करो। वह कोई कुलटा–सी लगती है। उसे तुरंत जला दो।"

पिता के पुण्यप्रकोप को देखकर, शाहजादी सारी बातें समझ गयी। बाद में तुरंत कपडे बदल, पिता के पास आकर क्षमाप्रार्थना की।

(४९) कैसी जल्लाद ईर्ष्या ?

जीवनभर उस कापडिया ने, अपने प्रतिस्पर्धी कापडिया को हानि पहुँचाने के भरसक प्रयत्न किये। वह अपने प्रतिस्पर्धी की उन्नति सह नहीं पाता था।

अपने छोटे से मकान के पास ही, प्रतिस्पर्धी का विशाल बंगला था। उसे देख देख जलनेवाला यह बेहया आदमी, एक दिन मरणासन्न हुआ।

www.yugpradhan.com

लडकों को पास बुलाकर, उसने अपनी अन्तिम भावना व्यक्त की– 'मेरी मृत्यु के बाद, मेरे शरीर के टुकडे टुकडे कर अपने पासवाले बंगले के कंपाउन्ड में, आधी रात के समय गाड देना। बाद में पुलिस चौकी पर सूचना देना कि–' मेरे पिताजी लापता हुए हैं। उनके खून की संभावना है।

'मेरे प्यारे बेटे! बाद में तुम्हीं लोग मेरे शव के टुकडे पुलिस को बुलाकर प्रत्यक्ष रूप में बताये देना। उससे उस प्रतिस्पर्धी को फाँसी होगी। जीते जी तो मैं उसे परेशान न कर पाया, लेकिन मरकर तो मैं उसे खत्म कर ही पाऊँगा।

इतना कहना ही था कि उसके प्राण चल बसे। सज्जन बेटे, पिताजी की ईर्ष्या की पराकाष्टा देखकर अत्यन्त दुःखी हुए।

(५०) योग्य पात्र को ही दिया जाय

संसार से विरक्त हो, राजा भर्तृहरि अब संन्यस्त लेना चाहते थे। गुरु को पहचान लिये और दीक्षा देने की प्रार्थना गुरु से की।

भर्तृहरि की पात्रता की परीक्षा करने के हेतु से गुरु ने उससे कहा–'जाईए उस कूडेकर्कट के ढेर पर। उसमें से कपडों के चीथड़े इकट्ठे कर ले आओ।"

राजा भर्तृहरि ने आदेश शिरसावंद्य माना। कुछ चीथड़े ढूँढकर ले आये और गुरु को दिये।

दुसरी आज्ञा हुई कि अब उन चीथडों में से लंगोटी बनाकर पहन लो। और कपडे उतार लो।"

उस आदेश का भी सत्वर पालन किया गया।

www.yugpradhan.com

फिर गुरु का आज्ञावचन हुआ कि–'पिंगला के द्वार जाकर भिक्षुक के रूप में जाकर उससे भिक्षा माँगो कि–'मैया, भिक्षा दो।'

भर्तृहरि पिंगला के पास गये और 'मैया, भिक्षा दो' कहकर भिक्षा माँग गुरु के पास आये।

मान–अपमान एवं तृण–मणि आदि की सारी कसौटियाँ पार कर स्वस्थ बने भर्तृहरि पर प्रसन्नपूर्वक नजर डालते हुए गुरुने कहा कि–"अब तुम सही रूप में संन्यस्त के लिये पात्र हो। अब मैं शिष्य के रूप में तुम्हारा अंगीकार करूँगा।"

(आज तो केवल भावना देखी जाती है। पात्रता की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं जाता। इसी कारण तो मूल्यवान तत्वों का सर्वनाश तो नहीं हुआ होगा ?)

(५१) बीज बचाएँ !

दिल्ली के तख्त पर शाहजहान नशीन हुआ था। चारों ओर उस की धाक जमी हुई थी।

एक दिन एक घटना घटी। शाहजहान दरबार जमाकर बैठा हुआ था। उस समय नगर के एक लहिये ने शिकायत की कि, "उसकी लड़की का एक मुगल सैनिक ने अपहरण किया है।"

शाहजहान ने उस सैनिक को सभा में बुलाया। उसने कहा— "जहाँपनाह। वह लड़की तो मेरी ही है।"

"अब क्या किया जाय? वह लड़की किसकी पुत्री मानी जाय? लहिये की या सैनिक की? उसका फैसला कैसे किया जाय?"

www.yugpradhan.com

शाहजहानने उस लड़की को बुलायी। लिखने की रुशनाई (साही) बनाने से लेकर, देखभालकर साहीदानी में साही भरनेका काम तो लहियों का ही होता है।

घरके छोटे लड़के—लड़कियाँ भी सीख पाते हैं। शाहजहानने साही—साहीदानी आदि मंगवाया। उस लड़की से कहा गया कि— 'साही भरना शुरू करो।' लड़की ने खूबी के साथ तुरंत ही साही भरने का काम पूरा कर दिया। यह देखते ही शाहजहान ने फैसला दे दिया कि—"लड़की लहियेकी है।"

(आज तो बीजको ही भ्रष्ट किया जा रहा है। शिक्षा—दीक्षा से क्या पाया जायेगा? जो कौशल पांपरागत है, उसके खत्म होने के बाद, उसका घाटा केवल शिक्षा से पूरा न हो पायेगा।)

(५२) तश्तरी की क्या जरूरत है ?

एक बार चेम्बरलेन चाय ले रहे थे। कतिपय मित्र भी चाय लेनेमें शामिल थे। आपस में गपशप चल रही थी।

उस समय एक निकट के साथी ने सोचा—लाओ, मौका है तो सभीको चेम्बरलेन की बुद्धिमत्ता का परिचय कराऊँ। धीरेसे चालू चर्चा का दौर काटते हुए उसने चेम्बरलेन से पूछा—'आप कपसे ही चाय लिया करें तो हर्ज क्या है ? तश्तरी की जरूरत ही न रहे।'

प्रश्न की विचित्रताने सभीका ध्यान उस ओर खींचा। चेम्बरलेन का उत्तर सुनने के लिये सभी चौकन्ने बने थे।

चेम्बरलेनने कहा—'बिरादर, चाय गर्म ही गर्म बनी न रहे, उसे ठंडी बनाने के लिये तश्तरी की आवश्यकता बनी रहती है।"

'मतलब, आप क्या कहना चाहते हैं ?" मित्रने पूछा।

www.yogpradhan.com

चेम्बरलेनने कहा—"मैं यह कहना चाहता हूँ कि हमारे संसद के दो गृह हैं। आमसभा और लोर्डसभा। हमारे किसी प्रस्ताव का आमसभा में भारी विरोध हो तो, आमसभा की उस गर्मी को शान्त करने के लिये, लोर्डसभा का आयोजन किया गया है।

आमसभा यानी कप और लोर्डसभा यानी तश्तरी। सभी साथी इस तर्कयुक्त उत्तर सुनकर खुश हो उठे।

(५३) देवी अनुपमा

सभी को दिलभर दान देनेवाली अनुपमा देवी ! सेनानायक तेजपाल की धर्मपत्नी को, धोलका के प्रजाजन 'पद्मदर्शन माता' के रूप में पहचानते थे। श्वसुरगृह में उनका पदार्पण पुण्यशाली और

भाग्योदय सूचक माना गया। उनकी सलाह सभी के लिये स्वीकार्य बनती थी।

एक दिनका प्रसंग है। कोई संन्यासी उनके घर पर भिक्षा लेने पधारे। उदारता के साथ उन्होंने तो, मुनिजी के भिक्षापात्र को घी से भर दिया। सारा पात्र चिकना हो गया। मुनिजी पात्र उठाने गये, वही हाथ से छूट गया और सारा घी मिट्टी–पलित हो गया। अनुपमा देवी के कपडों पर भी वह गिरा।

पासमें ही खडे तेजपाल को, अनुपमा की इस भक्ति में विवेक-शून्यता एवं पागलपन दीख पड़ा। इस प्रकार मुनिजी को परेशान करने से गुस्सा भी चढ़ा। उन्होंने अनुपमा देवी से डाँटकर कहा–' सावधानी से नहीं बरतती हो ? क्या भिक्षा इस प्रकार दी जाती है ? '

अनुपमाने जवाब दिया–" मामूली–सी बात पर इतने आगबबूले क्यों होते हैं ? किसी तेली के घर पैदा होती तो मेरी क्या हालत होती ? यहाँ तो गुरुदेव का घी मेरे उपर छिटका है ! ऐसा धन्य अवसर सौभाग्य से प्राप्त होता है ! "

अनुपमा की बातें सुनकर, तेजपाल चुप हो गये।

(५४) कर्मस्थान, धर्मस्थान बन गया !

पाटन के राजा सिद्धराज जयसिंह के वे आदरणीय मन्त्री थे। नाम था उनका शान्तनु।

राजनीति की चालों के वे उस्ताद खिलाडी थे। फिर भी उनका जीवन सरल एवं सुंदर था। वे बड़े आस्तिक थे।

एक रोज उन्हों चौरासी हजार सोनामुहरों का व्यय कर अपना बड़ा निवासस्थान बनवाया।

एक दिन अपने उपकारी गुरुदेव श्री वादिदेवसूरिजी से, अपने नये निवास में पधारने की प्रार्थना की। ज्ञान बल से कोई विशिष्ट लाभ होगा, ऐसा जान कर गुरुदेव ने उनकी प्रार्थना का स्वीकार किया और वे वहाँ पधारे।"

लेकिन निवास में आने पर भी वे नितान्त मौन रहे। शान्तनु सोचने लगे। अन्तेवासी मुनिजो से गुरु के मौन का कारण पूछा। उन्होंने बताया कि,

"आपका यह निवास, वैसे देखा जाय तो पापों का घर ही है न ! गृहस्थी बिना पाप किये कहाँ गुजरती है ? ऐसे निवास की प्रशंसा गुरुदेव क्यों करते ! हाँ, एक उपाय है। आप इस कर्मस्थान को उपाश्रय में परिवर्तित कर दें तो आपके इस सद्कार्य की अनुमोदना गुरुजी अवश्य करेंगे।"

www.yugpradhan.com

और एक ही पल में शान्तनु मंत्री ने उस निवास को धर्मस्थान के रूप में घोषित कर दिया।

उसी समय गुरुदेव की मुखमुद्रा पर प्रसन्नता लहर उठी। अन्तर के आशीर्वचन स्मित रूप में बाहर ऊभर आये।

(५५) ऐसे गुरु दुर्लभ हैं !

एक रोज अपने प्राणप्रिय गुदुदेव के पास गुर्जरेश्वर कुमारपाल धर्मचर्चा कर रहे थे। गुर्जरेश्वर को कई समय से विक्रमादित्य की तरह अपना संवत वर्ष चालू कराने की उत्सुकता थी। आज इस भावना को चर्चा के समय व्यक्त कर दी।

गुरुदेव ने कहा 'राजन् ! सारे देश को जो मनुष्य ऋणमुक्त करे, उसे ही अपना निजी वर्ष चालू कराने का हक है।"

'गुरुदेव ! मैं आपके कथनानुसार करने तैयार हूँ।' कुमारने कहा।

गुरुदेव बोले—'लेकिन गुर्जरेश्वर ! क्या आप यह नहीं जानते कि धन सभी अनर्थों का मूल हैं। ऐसे धन के दान से प्रजा सुखी होगी या त्राहि त्राहि पुकारेगी ?

'तो मैं क्या करूँ ?' गुर्जरेश्वरने पूछा। गुरुजीने कहा—'कुमार ! प्रजा के नैतिक एवं आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा उठाये। सभी में मानव-प्रेम, प्राणी मात्र के प्रति मैत्रीभाव, अपराधी के प्रति क्षमावृत्ति, उदारता, त्याग आदि गुणों का बढ़ावा करें। यदि आप इतना कर पायेंगे तो, बिना संवत चलाये भी आप अमर बन पायेंगे। प्रजा के कल्याणकारी राजा को कौन भूलेगा ?'

www.yugpradhan.com

गुरुदेव की इन बातों को सुनकर कुमारपाल धन्य धन्य हो उठा।

(५६) यादवास्थली ! हमारा अभिशाप

(रूपक कथा)

कुल्हाडी की चमकती धार देख, वृक्ष की सारी टहनियाँ काँपने लगी। "हाय, यह तो साक्षात् यमराज ! अब हम एक साथ कट मरेंगे।"

डालियों की मौत की करुण पुकारें सुनकर, वृक्ष बोला—"आप लोग क्यों चिंता करती हैं ? वे धारें चाहे उतनी तीक्ष्ण क्यों न हों, लेकिन वे सारी हमारा विनाश नहीं कर सकतीं। अलबत्त, हम में अगर फूट हुई तो सारी बनी बनायी बात बिगड़ जायेगी। सिवा इसके, किसी भी समय कुल्हाडी की धार हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकती।"

यह बात सुनकर, सारी डालियाँ एवं थनों को आश्वासन मिला।

लेकिन यह क्या ? कुल्हाडी कि कई धारों में से एक रोने लगी। यह देख एक डाली गद्‌गद् हो उठी और उसने स्वयं अपने को उसे सुपुर्द किया।

और दूसरे ही दिन, धड़ाधड़ कुल्हाडी टहनियों पर टूट पड़ी। सारा वृक्ष नामशेष बन गया।

(हमारी बरबादी अपने हाथों ही संभव है। घर में अमीचंद उपस्थित हुए हैं। सिवा स्वार्थ और कोई बात नहीं ! अत एव कहा जा सकता है कि यादवास्थली का पुनरावर्तन दूर नहीं।)

(५७) साधर्मिक भक्ति

www.yugpradhan.com

शाकंभरी के गरीब आदमी धनाशाहने अपनी धर्मपत्नी के पास खद्दर की कताई के द्वारा कपड़ा तैयार करवाया। अपने उपकारी गुरुदेवश्री हेमचन्द्रसूरिजी को समर्पित किया।

पाटन में नगरप्रवेश के समय उस मोटे खद्दर को गुरुदेव ने पहना। गुर्जरेश्वर कुमारपाल, उनके शरीर पर ऐसे खुरदरे कपडे को देख त्रस्त हो उठा। उसे शरीर पर से दूर करने की प्रार्थना की।

गुरुदेव ने कहा—"गुर्जरेश्वर ! तुम्हारे राज्य में ऐसे भी निर्धन आदमी बस रहे होंगे; तभी तो मुझे ऐसे वस्त्र का उपहार मिला होगा न ? शर्म तो तुम्हें इस बात की होनी चाहिए कि तुम्हारी प्रजा के सुख-दुःख की तुम्हें लेशमात्र परवाह नहीं।"

ये शब्द सुनकर गुर्जरेश्वर का मुँह लज्जित हो उठा। उसी समय उन्होंने प्रतिज्ञा ली कि—'प्रतिवर्ष एक करोड़ सोनामुहरें साधर्मिक भक्ति के लिये व्यय की जायँ।

इसकी जिम्मेवारी आभट सेठ को सौंपी गयी। वर्ष पूरा होने पर, कुमारपाल ने सेठजी को बुलाकर, पूछा–"मेरे खजाने में से एक करोड़ सोनामुहरें ले लें।"

सेठ ने कहा–"इस कार्य का पुण्य मुझे ही लेने दें।"

गुर्जरेश्वर बोलें–"अब कभी ऐसा न कहें; तो गुर्जरेश्वर में कृपणता आ घुसेगी।"

अन्त में वह सारी रकम सेठजी को दी गयी।

(५८) नकल का ज्यादा मोह

www.yugpradhan.com

किसी महात्माजी के आश्रम के पास, एक नटखट आदमीने गधे की तरह भौंकना शुरू किया। रोज प्रातः निश्चित समय पर, वह भौंकता! इससे सैंकडों आदमी वहाँ इकट्ठा हो जाते। लोग उसकी इस चातुरी से प्रसन्न हो, दान भी देने लगे।

आश्रम के बाबाजीने सोचा कि–'मेरे शिष्यों को बोधवचन कहने के लिये, यह एक अच्छा मौका हाथ लगा है।'

दूसरे दिन बाबाजी सही गधेको ले आये। आश्रम के द्वार पर बाँध उसे फटकारने लगे। जिससे वह जोरों से भौंकने लगा। लोग दौडे आये। जब उन्हें पता चला कि यह तो असली गधा भौंकता है, तब उसमें कोई खास खूबी न दीखने पर सब वापस लौट गये। दूसरे दिन कोई न आने पाया।

शिष्यों को इकट्ठे कर बाबाजीने कहा–देखें जरा दुनिया के मिजाजको। उसे नकल के प्रति भारी आकर्षण है। असल के प्रति कोई

मोह नहीं ! इस बात से यह समझ लें कि जहाँ नकल होगी, वहीं लोग ऊमड़ पड़ेंगे ।

लेकिन उससे 'असल' का मूल्य कम न समझें ।

(५९) आर्यबाल की अनोखी जिंदादिली

घरमें एक बच्चा पैदा हुआ ।

बच्चे के भविष्य की जिज्ञासा के कारण, नगर के श्रेष्ठ ज्योतिषी को घर बुलाये। बच्चे की हस्तरेखा देखकर बारबार दीर्घ निःश्वास छोडने लगा ।

बच्चे के बापने जोषी से पूछा–"क्यों निःश्वास छोडते हैं ?"

ज्योतिषीने बताया–'लड़का 'ढ' रहेगा । पढ़ाई का कोई सुयोग नहीं हैं ।

www.yogpradhan.com

तीन–चार साल गुजरे । लड़का भी समझदार हुआ । एक दिन पिताने उसकी पढ़ाई के अभाव की चर्चा की । लड़का क्रुद्ध हुआ । ज्योतिषी को घर बुलाकर, सभी के सामने तेज आवाज से गरजते हुआ कहा–"आज मेरे हाथों की रेखाएँ देखकर मुझे सही बात बता दें ।"

ज्योतिषीने उसकी हस्तरेखाएँ देखीं । एक खास रेखा की ओर निर्देश करते हुए कहा कि–"यह रेखा छोटी होने के कारण, तुम अनपढ़ ही रहोगे ।"

उसी समय छुरी लाकर उस लडके ने रेखा लम्बी करने के लिये हाथमें छुरी लगायी । हाथमें से खून की धारा छूटी । सब देखते ही रह गये ।

यह लड़का और कोई नहीं था, वह था महान व्याकरणशास्त्र का रचयिता पाणिनि ।

(६०) करुणा की सजीव धडकनें !

नाम था उनका पौहरीबाबा । वृद्धावस्था में कहीं स्थायी निवास के लिये एक छोटा–सा आश्रम बनाया था । इस आश्रम में संध्या के समय, फूरसत के समय कई बुजुर्ग लोग आते और उनके साथ बाबा ज्ञानगोष्ठि किया करते ।

एक रात की बात है । ज्ञानगोष्ठि के बाद, भाविक सज्जन घर की ओर लौट पड़े । बाबा भी भीतरी खंड में जा बैठे और ध्यानस्थ हो गये । रात के साड़े बारह बजे बाबाजी ध्यानमुक्त हुए तो पास वाले खंड में कुछ खनखनाहट सुनाई पड़ी । बाबाने तुरंत पूछा–" अरे भाई ! कौन है वहाँ ? "

www.yugpradhan.com

बात यह थी कि बाबा के घर आज कुछ चोर चोरी करने आये थे । बाबा तो अकिंचन थे । उनके पास से तो क्या पा सकते थे ! लेकिन जो दरी सादड आदि फूटकल था, उसकी एक गठरी बनायी और जहाँ उस गठरी को उठा भागने की कोशिश में चोर थे उसी समय बाबा की आवाज सुनायी ।

गठरी फैंक चोर नौ दो ग्यारह हो गये ।

बाबा को सही बातका पता चला । क्षणका भी बिना विलंब किये बाबा भी गठरी उठाकर चोरों के पीछे दौडने लगे । और पुकारने लगे– " आपका सामान आपको लेकर ही जाना होगा । मुझे क्षमा करें । "

चोर सुनकर सहम गये । प्रत्येक की आँखोंमें से अश्रुकी धारा बह चकी थी । बाबाकी करुणाने उनके जीवन का परिवर्तन कर दिया ।

(६१) अब कोई दर्शन के लिये न आएँ

सोलह सालकी किशोरावस्थामें आबू के पहाडों की गुफामें पद्मासन लगाये बैठे साधक-संतों के जीवन में जिसे निष्क्रियता दीख पड़ी। जो यह सोचने लगा कि ऐसे ध्यान और योगसे कभी विश्व-कल्याण की संभावना नहीं है ऐसे दिमागवाले एक बुजुर्ग स्वामीजी की यह कहानी है।

यद्यपि कई जीवों का उद्धार, उनके कारण हुआ होगा। फिर भी उन्हें संतोष की अनुभूति न होने के कारण वे हताश हो गये।

उनका एक धर्मपुस्तक पढ़कर, एक भावुक आत्मा का जीवन-परिवर्तन हो गया था। उसने एकान्तवास करते हुए उनका पता एवं फोन नंबर बड़ी कठिनाई से प्राप्त किये। फोन द्वारा दस मिनट के सत्संग के लिये समय चाहा।

स्वामीजीने अनिच्छा बताते हुए कहा कि-" आज तक मेरा सारा जीवन मैं ने धर दिया। फिर भी किसीका कल्याण हुआ ऐसा महसूस नहीं कर पाया। ऊपर से मैं अपने आत्मकल्याण से भी हाथ धो बैठा हूँ।"

आप मुझे क्षमा करें। मैं आपके साथ धर्मगोष्ठि के लिये तत्पर नहीं हूँ, साथ ही न दर्शन देनेकी भी इच्छा है।"

स्वामीजीने तुरंत ही रिसीवर रख दिया।

(६२) जो धन दिया जाय वह सोना, पड़ा रहे वह मिट्टी

एक रोज एक मनुष्यने स्वप्न देखा। वह मंदिर में दर्शन करने गया। मंदिर में प्रभुके सामने खड़ा था। वहाँ यकायक भगवान की

मूर्तिमें से प्रकाश की एक तेजकिरण निकली। उसका एक वर्तुल बना और उसमें से भगवान खुद भक्त के सामने आते दिखाई दिये।

भक्त भगवान के पास कुछ माँगने आया था। साक्षात् भगवान को देखते ही, जहाँ वह कुछ माँगना चाहता है, वहाँ मौन होकर खुद भगवानने ही माँगने के लिये हाथ फैलाया।

भगवान को माँगते हुए देखकर भक्त दंग रह गया। उसके पास जूठन के लिये चावल की टूटेफूटे कपडे की गठरी थी। ये चावल उसका सर्वस्व था। जिसे बिना दिये अब कोई चारा नहीं। अतः दुःखित अंतःकरण से चावल का एक दाना भगवान के हाथ में निकाल कर दे दिया।

www.yugpradhan.com

लेकिन यह क्या ! अब उसके पास से माँगने की तैयारी में है, वहीं भगवान अंतर्धान हो गये। भक्त देखता ही रह गया।

स्वप्न में ही सुबह हो ऊठी। उस प्यारी गठरी को खोल देखता है तो, सड़े हुए चावल के बीच एक सुवर्णकण चमक रहा था। पल बार में सारी बातें समझते ही वह फूट फूट कर रोने लगा कि "एक साथ सारे चावल दे दिये होते तो, बडा लाभ हो पाता।"

जो दिया जाय वही सोना....!

जो संग्रह के रूप में रहा वह मिट्टी....!

(६३) आखिर....अरविंद भी ऊब गये !

पाण्डीचेरी के श्री अरविंद घोष की यह बात है। उनकी मृत्यु से एक वर्ष पहले, एक ख्यातनाम ज्योतिषी उनके पास आये। उन्होंने केवल एक साल के आयुष्य की भविष्यवाणी की। उसे सुन अरविंदने,

उस वाणी की उपेक्षा करते हुए कहा कि—'भाईसाब, मुझे बहुत—सा जरूरी काम करना बाकी हैं। मैं इतना जल्द दुनिया पर से उठ जाऊँगा नहीं।"

खैर, एक साल का लम्बा समय कट गया।

एक रोज अरविंदने अपने निकट के अंतेवासी से कहा—'मेरी अपेक्षा से ज्यादा दुनिया दुष्ट दिखाई पड़ी है। मुझे विश्वास न था कि दुनिया इतनी हद तक गिरी हुई है। वर्त्तमान जीवन की मेरी मानवीय शक्तियाँ से, इस दुष्टता पर काबू पाना मुश्किल है।

अलबत्त, विश्व का शुद्धीकरण तो मुझे करना ही है। लेकिन, सावधान! मेरी मानवीय शक्तियों से यह काम मैं पूरा नहीं कर पाऊँगा। उसके लिये मेरा अतिमानव (देव?) होना जरूरी है।

www.yugpradhan.com

तो अब मैं अपने जीवन की लीला समेट लूँ, ऐसी अभिलाषा।"

और थोडे ही दिनों में अरविंद का निधन हुआ।

(६४) परकल्याण कितना मुश्किल होगा?

कैन्सर से परेशान रामकृष्ण के अंतिम दर्शन के लिये, हजारों की तादाद में लोग दूर—सुदूर प्रदेशों में से उमट रहे थे। मंदिर में दर्शनार्थियों की भारी भीड जमी रही थी। दर्शनार्थियों को दर्शन देने के लिये, रामकृष्ण को मंदिर के बड़े खंडमें ज्यादा समय तक बैठे रहना पड़ता था।

एक रोज वे ऐसी स्थिति से तंग आ गये। सैकडों भक्तों को छोड़ खड़े होकर वे मा—काली के पास गये। वहाँ पहुंचते ही उनकी आँखों में से अश्रु की धारा लगातार बही। रोते हुए उन्होंने कहा—"ओ माँ!

जगदम्बा तो तुम्हारा नाम है। दुनिया की तुम्हारी संतानों का कल्याण-कार्य करना, यह मेरा कर्तव्य नहीं; माँ ! आखिर यह काम तुम्हारा है, तुम्हारा है !

उपरान्त मैं इन लोगों का कल्याण, चाहने पर कैसे कर पाता ? माँ, इन लोगों को तो आप अच्छी तरह जानती ही है !

तुम यह जानती ही हो कि, गृहस्थी तो एक सेर दूध में पाँच सेर पानी के मिश्रण जैसी है ! पाँच सेर पानी जल जाय तो, सेर शुद्ध दूध अलग निकल पाये।"

संसारी जनकी मोहमाया रूपी पाँच सेर पानी को जला देने की शक्ति, मुझ–से कमजोर आदमी में नहीं; और तू जो है कि मेरे पास लोगों को भेजा ही करती है !

www.yugpradhan.com

"माँ, अब उन्हें मेरे पास न भेजे, ऐसी मेरी नम्र प्रार्थना है।"

(६५) सर्वविनाशक अंहकार

कर्ण ने दुर्योधन से कहा कि–'अगर मेरे रथ के सारथी के रूप में मद्रके राजा शल्य आ बैठे, तो चौबीस घंटों में ही अर्जुन की खाल उतार फेंकूँ !"

भारी कोशिश के बाद, गोत्राभिमानी शल्य को कर्ण के सारथी के रूप में समझाया।

घमासान युद्ध शुरू हुआ।

कर्ण का रथ एक बार कीचड़ में धँस गया। कर्ण ने मद्रराज शल्य से कहा कि–"तुम नीचे उतरकर, रथ के पहिये को कीचड में से बाहर खींच निकालें।"

यह सुनते ही शल्यराज आगबबूले हो उठे। उन्होंने गरजते हुए कर्ण से कहा—"ऐसा निम्न कक्षा का काम मुझ—सा क्षत्रिय कभी नहीं करता। तुम दासीपुत्र हो, तुम्हीं करो!"

आखिर में चाक्ष युद्ध के समय, कर्ण निःशस्त्र हो, पहिया खींचने नीचे उतरा।

कर्ण ने अर्जुन से चीखकर कहा—"थोडी देर के लिये तुम लड़ाई थाम लो—रोक दो। फिलहाल मैं बिना हथियार लिये हूँ।"

लेकिन निःशस्त्र पर शस्त्र न चलाने के युद्ध—नियम का पालन पहले कर्ण ने ही नहीं किया था। अतः उस पुरानी बात की याद दिलाते हुए कृष्णने अर्जुन से लगातार बाणवर्षा करते रहने की ही सलाह दी।

www.yugpradhan.com

फलस्वरूप कर्ण घायल होकर मारा गया। शल्य के अहंकार ने, कर्ण जैसे महावीर का बलिदान करवा दिया।

(६६) चमत्कार तो यह रहा; लेकिन देखना किसे हैं?

विवेकानंद के विदेश में बसते किसी एक ब्रह्मचारी शिष्य के ब्रह्मचर्य की बातें बार—बार सुनकर उसके चाहक डाक्टरों के एक समूह ने उससे ब्रह्मचर्य के किसी चमत्कार को दिखाने कहा। सौभाग्य से उसी समय उसके गुरु विवेकानंद परदेश आ पधारे थे। किसी चमत्कार दिखाने के आग्रह के बारे में शिष्य ने विवेकानंदजी से पूछा। दूसरे ही दिन पंद्रह हजार आदमियों की सभा में विवेकानंद वक्तव्य देनेवाले थे। उसमें वे चमत्कारभूखे डाक्टर लोग भी उपस्थित रहनेवाले थे। अतः उसी सभा में चमत्कार दिखाने की घोषणा विवेकानंदजी ने करायी।

दूसरे दिन निश्चित समय पर सभा हुई। प्रथम चालीस मिनटों तक विवेकानंदजी ने 'संस्कृति' के बारे में वक्तव्य दिया। आखिरी

दस मिनट तक उन्होंने पश्चिमी दुनिया के अहंकार आदि के बारे में कडी आलोचना करते हुए उन्होंने कहा भी कि– " Doctor's of America are nothing but donkies. "

मन मसोसकर–खून का घूंट पीकर सभी ने ये सारी बातें सुनीं और लोग बिखर गये।

समूह में से किसी एक ने दूसरे डाक्टर से कहा–

" लेकिन चमत्कार जैसा तो कुछ दीख न पाया ? " उसने जवाब दिया–" तुम्हें गधे से संबोधित किये गये, फिर भी सभीने चुपचाप सुन लिया। किसी ने प्रतिवाद या प्रतिकार नहीं किया यह ब्रह्मचर्य का चमत्कार नहीं तो और क्या है ? "

www.yugpradhan.com

(६७) भारत ने ही विश्व को संतों का प्रदान किया है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर शिकागो गये हुए थे। अमरिकन लोग ईश्वर के अस्तित्व के विषय में बेहद शंका व्यक्त करते थे। मौका पाकर शिकागो युनि० के एक वक्तव्य में, उन्होंने उस शंका के विरुद्ध भारी पुण्यप्रकोप व्यक्त किया।

उन्होंने उपस्थित अमरिकनों से कहा–" तुम्हें तुम्हारी प्रयोगशाला में ईश्वर हाथ न आया, उसी के कारण तुम लोग ऐसा कहने की धृष्टता करने पर तुले हो कि दुनिया में ईश्वर का कोई नामोनिशान नहीं ? "

" मेरा आप लोगों से पूछना है कि इस प्रवचन–हाल में उपस्थित श्रोताओं में से कोई भी पाँच लिटर दूध पीने का सामर्थ्य न रखता हो, उससे क्या तुम लोग हिन्दुस्तान के गाँवों के चरवाहे एक साथ आठ लिटर दूध पी जाते हैं, ऐसी सही बात का मजाक उडाने की कोशिश करोगे क्या ?

"सज्जनो ! आध्यात्मिक मामलों में आप लोग चंचुपात तक नहीं कर पाये हैं, फिर भी उस विषय के गहन तत्त्व का मखौल उड़ाने की धृष्टता दिखाते हों, उसे सभ्यता नहीं मानी जाती !

"स्मरण रहे कि तुम लोगों ने दुनिया को महान वैज्ञानिकों की भेंट दी है; लेकिन हमारे भारत ने तो एक एक से बढ़े बढ़े संतों की परंपरा दी है !"

(६८) दो किलो राई का मालिक

ब्राह्मणवाडा गाँव के मंदिर का वह पुजारी था । भगवान का वह पक्का दास बना हुआ था । सारा जीवन भगवान के चरणों में अर्पित था । गाँव के लोग 'भगतजी' के नाम से पुकार कर, आदर व्यक्त करते थे ।

www.yugpradhan.com

एक दिन की घटना है । मंदिर में भगवान के आभूषणों की चोरी हुई । सुबह भगतजी ने मंदिर के द्वार खोले । चोरी का पता चला । भगतजी ने सारे भक्तों को इकट्ठे कर चोरी की जानकारी दी ।

एकत्रित लोगों ने तरह तरह की बातें की । कई लोगों ने शंकाएँ भी व्यक्त की । कतिपय अग्रगण्यों ने सोचा—"शायद, भगतजी इस मामले में कहीं फँसे न हो ? द्रव्य देखकर साधु भी लालायित हो जाता है, तो भगतजी किस खेत की मूली ।"

आखिर, भगतजी को ही चोर का पता लगाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया । भगतजी सारी बातें समझ गये । उन्हें बेहद चोट पहुँची । रात होते ही भगवान के सामने जाकर शिकायत करते हुए कहा—"ओह मेरे भगवन् ! तुम मेरे मालिक बने हुए हो, उसका तो अभिमान मनाता मैं घूमता-फिरता हूँ ।"

"तुम मेरी थोडी बातें सुन लो। चोर तो तुम्हें ही पकड़ना होगा। मैं ठाठ से जाकर सो जाऊँगा। मैं क्यों चिन्ता करता ! चिन्ता करे मेरे भगवान !"

और सचमुच दूसरे ही दिन रंगे हाथों चोर पकड़ा गया !"

(६९) इसे कहते हैं जिंदादिली !

बालक ठाकुर अपने पिताजी के साथ, किसी गोरे अधिकारी के पास प्रथम वर्ग के डिब्बे में बैठे थे। गोरा दोनों काले भारतीयों से नफरत करता हुआ मन में सोच रहा था कि कैसे इन दोनों को डिब्बे में से अलग कर दिये जायँ ?

www.yugpradhan.com

किसी स्टेशन पर आकर गाड़ी रूकी। गोरेने टिकटचैकर को बुलाकर अपना नीच इरादा समझाया।

चैकरने आकर ठाकुर–पिता से टिकट माँगे। उन्होंने उठ टिकट दिखाये।

किसी भी तरह, अपराध के बहाने डिब्बेमें से उतारने को व्यूहबाजी लगा था। पूछा–'इस बच्चे का तुम्हें पूरा टिकट लेना चाहिए था। तुमने सरकार के साथ धोखाबाजी की है। अतः दोनों नीचे उतर जायँ।"

ठाकुर पिता को अपनी नीतिमत्ता पर चोट लगते भारी व्यथित हुए। टिकटचैकर से साफ साफ कह दिया कि इस लड़के की उम्र आधे टिकट के पात्र है। हम शरीर से काले जरूर हैं, लेकिन तुम्हारी तरह मन से कट्टे नहीं है।"

चैकर चला गया; लेकिन ठाकुर पिता को चैन कहाँ ! वे भी बाल रवीन्द्र को लेकर, स्टेशन पर उतर पड़े। आघात की व्यथा से जेबमें से पैसे निकालकर प्लैटफार्म पर फैंके और कहा—"अरे गोरे भिखारीओं, लो ये पैसे ! लेकिन आयंदा हमें ऐसे असत्यभाषी के रूपमें न समझे।"

(७०) धून और जपमंत्र का प्रभाव

एक घुमक्कड साधु थे। घुमते घुमते वे बंगाल में जा पहूँचे। लोगों के साथ सत्संग करते करते उन्हें पता चला कि वहाँ का राजा, प्रजाका भारी शोषण करता है। उसका स्वभाव भी खराब और क्रोधी है। इन कारणों से सारी प्रजा 'त्राहिमाम्' चीखती थी। उसके विरुद्ध विद्रोह करने में भी हजारों आदमियों की कत्ल होनेकी संभावना थी।

www.yogpradhan.com

आखिर घुमक्कड साधु उसका मुकाबला करने कटिबद्ध हुआ। सैकडों भक्तोंको साथ ले, वे राजा के महल में पहुँचे। महल के विशाल पटांगण में सब बैठ गये। राजा ने संन्यासी को डाँट—डपट सुनायी ; लेकिन जब संन्यासीने कहा कि—'हम लोग लेशमात्र भी तूफान करने नहीं आये। हमें तो यहाँ बैठकर प्रभुभक्ति करनी है और उसके नाम की धून लगाना है और जप—नामस्मरण करना है।" तब राजा ने उन्हें बैठने की संमति दी।

संन्यासी का प्रभाव आखिर रंग जमा गया। सैकडों प्रभुभक्तों ने अविरत रूप से धून एवं जाप शुरू किये लगातार सात दिन और चौबीसों घंटों तक।

दूसरी ओर संन्यासीने राजा के कल्याण के निमित्त प्रार्थना शुरू की और आठवें दिन सुबह जीवनभर किये सारे अत्याचारों को याद

कर, राजा फूट फूट कर रोने लगा। उस दिन से राजा प्रजावत्सल एवं परदुःखभंजक बन गया।

(७१) अनपढ़ ही पढ़ाई के योग्य

वह था जर्मनी का महान संगीतकार वेजनर! उस जमाने का वही एक सर्वेसर्वा संगीतज्ञ था। उसे संगीत से इतनी चाह थी कि संगीत का व्यापक प्रचार के लिये स्थान–स्थान पर उसने संगीत की तालीम देनेके लिये वर्ग चला रहा था। कई लोग इन वर्गों में शामिल होते थे। वर्गों में प्रवेश पानेकी योग्यता भी उसने अनोखी निश्चित की थी।

उसके लिये एक बोर्ड दरवाजे पर लटकाये रखता। उसमें सूचित किया गया था कि (१) संगीत से बिलकुल अनजान के लिये, सामान्य फिस ली जायेगी (२) थोडा बहुत जाननेवाले से ज्यादा फिस ली जायेगी और (३) जो अच्छा ज्ञाता होगा उसे वर्ग में प्रवेश दिया नहीं जायेगा।

ऐसा सख्त नियम करने के पीछे वेजनर का मानना यह था कि, अधिक शिक्षित लोग कदाग्रही होते हैं लेकिन अनपढ़ लोग तो बिलकुल सरल होते हैं। अतः उन्हें पढ़ाने में कम तकलिफें उठानी पड़ती हैं।

(७२) हरि का मार्ग शूरवीरों का है!

किसी लेखक की वैराग्यविषयक पुस्तक को पढ़कर, एक राजा को संसार के प्रति वैराग्य पैदा हुआ।

वैराग्य के विचारों को व्यक्त करनेवाले लेखक का जीवन कितना वैरागी होगा! उसे प्रत्यक्ष देखने के लिये राजा स्वयं उसके गाँव गया। खोजने पर घर मिला। घरमें घुसते ही तीन बच्चों एवं स्त्री से प्यार

www.yugpradhan.com

करते लेखक को देख, राजा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह मन ही मन बोल उठा—" कैसा दंभी आदमी निकला ? "

राजा ने अपने आगमन का हेतु लेखक को समझाया। लेखकने उसे शान्त होनेकी प्रार्थना की और उचित आतिथ्य भी निभाया।

उसके बाद राजा को नगर में पर्यटन के लिये ले निकल पड़ा। बाजार में तलवारें बनानेवाले एक कारीगर की दूकान के पास से गुजरते समय, राजा को वहाँ ले जाकर, लेखक ने सर्वश्रेष्ठ तलवार बताने के लिये दूकानदार से कहा। करीगर ने तेज तलवार निकाल बताते कहा— ' यह हमारी श्रेष्ठ तलवार है। एक ही घाव से टुकडे कर देनेका सामर्थ्य रखती है। "

राजा के साथ खड़े तलवार देखते हुए लेखक ने कारीगर से पूछा— ' अरे भाई, इतनी सुंदर तलवार लिये तुम ही युद्ध के मैदान में क्यों दुश्मनों पर टूट नहीं पड़ते ? "

www.yogpradhan.com

हँसते हुए कारीगरने जवाब दिया—" हमारा काम तो तलवारों को गढ़ना है; लडाई करनेका काम तो क्षत्रियों का है। "

लेखकने राजा से कहा—' राजन्, आपने ये बातें सुनी है ना। मेरा भी यही कहना है कि—मेरा काम पुस्तक लिखने का है। संसार का त्याग कर, हरि के मार्ग पर चलने का काम तो आप जैसे शूरवीरों का ही होता है ! '

उसी समय राजा को संतोष हुआ।

(७३) नीति का धन

लाख कोशिशें करने पर भी, किला पूरा न हो पाता था। थोडा बना—न बना और टूट जाता। विचक्षण मंत्रीने अनुमान किया—' शायद

क्षेत्रपाल देव अतृप्त—असंतुष्ट है।' उन्हें तृप्त करने के लिये, किसी नीतिमान व्यापारी के यहाँ से दस सोनामुहरें लाकर, उस किले के नीचे गाड़ दीं।

और देखते ही देखते किला बनकर तैयार हो गया। जब राजा को इस बाबत का पता चला तो उसे विश्वास न हुआ। उसी नीतिमान व्यापारी के यहाँ से मन्त्री दूसरी दस सोनामुहरें ले आया और एक मच्छीमार को दे दी और राजा के खजाने में से निकाल कर दूसरी दस सोनामुहरें एक साधु को भेंट दीं।

मच्छीमार, जाल में मछलियाँ पकडकर, घर लौट रहा था। उसके विचार पलट गये। अपने पापी जीवन के प्रति उसे भारी घृणा हुई। दूसरे ही दिन वह संन्यासी बन गया।

उस साधु का भी विचार—परिवर्तन हुआ। संसार के भोग—विलासों का अनुभव करने की तीव्र लालसा जगी। त्याग, तप और कडी साधना के द्वारा जीवन का दमन करता रहा, उसके बारे में भारी पश्चात्ताप हुआ।

उसी मच्छीमार की जाल पर उसकी नजर गयी। उसी जाल को उठाकर, वह साधु दूसरे दिन से मच्छीमारी करने लगा।

जब राजा को दोनों के जीवनपरिवर्तन का पता चला तो आश्चर्यचकित रह गया।

www.yogbradhan.com

(७४) हाय पापी राग ! तुम्हींने बरबाद किया !

वह था दिग्विजय कर सम्राट बनने की आकांक्षा रखनेवाला राजा। जब वह युद्ध के मैदान में घुडसवार बन युद्ध करता, तब उसका अद्वितीय युद्धकौशल देखकर, दुश्मन लोग भी देखते रह जाते ! उस राजा

से एक दिन किसी ने पूछा—" आप किस वजह से इतने तरोताजा, फूर्तिले और सशक्त बने रहे हैं ? "

उसने कहा—" मेरी पत्नी का प्यार । उसका पूरा प्यार पाकर जब मैं युद्ध के मैदान में उतरता हूँ, तब पहाड़े भी मेरे लिये नगण्य बन जाते हैं । "

एक लड़ाई का मामला था । दुश्मन उसे किसी भी हद तक जीत नहीं सकते थे, तब उसकी सब से बडी कमजोरी पर घाव कर दिया ।

पूरी ताकत से युद्ध करते उस राजा के पास, उसके ही वफादार मित्र को (बेवफा बनाकर) दौडाया । उसने पास जाकर युद्ध में ही राजा से कहा—" आप की श्रीमतीजी, फिलहाल छावनी में किसी फौजी अफसर के साथ रंगरेलियाँ मना रही हैं ! "

www.yugpradhan.com

यह सुनते ही राजा के दिल पर भारी चोट पहुँची । उसका सारा जोस वहीं तितरबितर हो ऊठा । युद्ध तो चलता ही रहा; लेकिन विजय उसके हाथ से छूटती रही । आखिर में उसी युद्ध में दुश्मनों ने उस राजा को जिंदा ही पकड़ लिया ।

ओ पापी राग ! विश्वविजेता की भी तूने देखते ही देखते दुर्दशा कर दी । धन्य है तुम्हारे अजोड़ सामर्थ्य को ।

(७५) धर्म की ध्वजा

सागर के तट पर एक भव्य नगर था । वैभवी जीवन की रंगरेलियाँ लूटनेवाले कई सेठिये लोग वहाँ बस रहे थे । उन में एक सेठ तो अनोखे ही थे । उसके जीवनव्यवहार के योग्य वैभव जरूर था । लेकिन साथ साथ वह दीन—दुःखियों का हमदर्द भी बना रहा था । कई

संख्या में उसने सदाव्रत और अन्नक्षेत्र खोल रखे थे। आसपास के सौ मिलों में कोई भी आदमी भूखा रह जायँ, यह बात सेठ को हमेशा अखरती थी।

मूगे प्राणियों के लिये भी उन्होंने कई जगह पशुशालाएँ खोल रखी थीं। प्याऊओं की कोई सुमार न थी। मंदिरों पर चारों ओर ध्वजाएँ लहर रही थीं। यह सारा प्रताप उस सेठजी का था। नाम था उनका धवलचन्द्र।

एक दिन वे सोचने लगे कि—ये सारे धर्मकार्य तो मैंने चाहे किये। लेकिन जिनका सारा जीवन सागर की गोद में ही पलता—पोषता रहता है, उन दरियालालों को क्या फायदा पहुँचा? सैकडों जहाज आते—जाते रहते हैं। नाखुदा लोग अपने परिवारों के साथ वहाँ बसते हैं और जहाजों में ही अपना घर बसा—बना लेते हैं। उन्हें कभी भी क्या अनाज की जरूरत महसूस न होती होगी? गेहूँ, बाजरा, जवार, तेल, मिर्च आदि यकायक खत्म हो जाय तो वे कहाँ से लेने जायँ? साथ ही बुखार आदि रोगों के लिये दवाई भी कहाँ से लाते होंगे?

इनके लिये भी मुझे कोई सुविधा करनी चाहिए। धरती पर तो कई सुविधाएँ उपस्थित कर दीं; लेकिन सागर की सतह पर भी कोई व्यवस्था करनी चाहिए।

इनेगिने दिनों में ही, धवलसेठने सागर पर दो जहाजों को तैरते छोडे। एक में पूरा अनाज भर रखा और दूसरे में विविध औषधियों भरी रखीं। दोनों जहाजों की ठीक बीच एक सफेद ध्वज लहराये रखा। दूर—सुदूर से वह ध्वजा दीख पड़ती और जरूरतमंद जहाज उसके पास दौड आते। और अपनी जरूरत पूरी कर लेते।

धीरे धीरे यह सुविधा ज्यादातर उपयोगी सिद्ध हुई। उस धजाको सभी बादमें 'धरम की धजा' के रूप में पहचानने लगे।

www.yugpradhan.com

लेकिन ऐसा सुंदर काम हमेशां सुचारु रूप में चलता रहे तो फिर कलियुग क्या करेगा ? उसी सागर में कुछ वाघिर जाति के लोग जहाज लूँटन के धंधे में फँसे हुए थे। लोगों के जहाजों को लूँटकर गुजारा करने की आदत उन्हें विरासत में मिली थी।

एक बार वाघिरोंने इकट्ठे होकर तय किया कि हम धवलसेठ के दोनों जहाजों को लूँट लें। हमें धर्म से क्या लगाव ? हमारा अगर कोई धर्म हैं तो एकमात्र यही है कि–' जहाजों को लूँटो और गुजारा करो।'

आधी रात के समय, धवलसेठ के दोनों जहाज लूँटे गये। उस धर्मध्वजा की भी लूँट हुई। वाघिरोंने लूंटा हुआ मालसामान बाँट लिया; लेकिन उस ध्वजा का बँटवारा न किया। उसे जैसी की वैसी रखी गयी और उसे अपने जहाजों के बीच में फहरा दी।

www.yugpradhan.com

अब मुसीबत यह हुई कि बेचारे भोले–भाले कपोत–से सरल दरियालाल, उस ध्वजा को देखते ही पूर्वपरिचित नियमानुसार वाघिरों के जहाजों के पास घँस जाते और वाघिर भी उन्हें घेर कर लूँट लेते।

धर्म की ध्वजा का बोलबाला देश–विदेश के खलासियों में चारों ओर था। सैकडों मिलोंके समुद्री प्रवास में यह धर्मध्वजा का स्थान ऐसा केन्द्रवर्ती था कि यहाँ से सभी आवश्यक चीजें मिल पाती थीं।

फलस्वरूप विदेशियों के जहाज भी वाघिरों के प्रपंच में फँसते रहे। इस प्रकार धर्म की ध्वजा की ओट में कई लोगों का सत्यानाश हो गया।

(' समाजवाद ' ' गरीबी हटाओ ' ' धर्मनिरपेक्षता ' इत्यादि धर्म की माडर्न स्टाइल की स्टोप–प्रेस आवृत्तियाँ ही हैं।)

(७६) पचरंगी कीडा

बड़ी खुशी के साथ महाराजा पल्लव और स्वामीआनंद धर्मचर्चा छेडे हुए थे। उसी समय यकायक स्वामीआनंद, महाराजा पल्लव के भालप्रदेश को देखते ही गंभीर हो ऊठे।

देश–विदेशो में पदयात्रा करते करते स्वामीआनंद, महाराजा पल्लव की राजसभा में आ पहूँचे थे। महाराजा ने भी दोरदमाम के साथ स्वागत किया। साथ ही अपने महल में ही थोडे दिनों के लिये ठहर जाने की प्रार्थना की। स्वामीजी ने प्रार्थना मंजूर की। राजा का काम पूरा होने के बाद हमेशां महाराजा पल्लव स्वामीजी के साथ धर्मचर्चा करते

www.yogpradhan.com

एक दिन यकायक गंभीर बने हुए, स्वामीजीने दो बार निःश्वास निकाले। 'हे भगवान्!' ऐसा भारी स्वर भी निकला।

महाराजा की नजरने इन सारी बातों को समझ लिया। महाराजा ने स्वामीजी से गंभीरता का कारण पूछा।

स्वामीआनंदने कहा कि वह दुःखदायक कहानी है। उसे जानने का हठाग्रह महाराजा न करे। लेकिन महाराजा का कुतूहल बढ़ा। उन्होंने पुनः आग्रह किया तब आनंद ने कहा–"राजन्! आपके ललाट की रेखाएँ देखते मैं अनुभव कर रहा हूँ कि आज से सातवें दिन आपका अवसान होगा और..."

"और क्या?" स्वस्थताके साथ पल्लवने पूछा–"नहीं....वह कहा जा सकता नहीं। उसे तो आप पूछे ही नहीं" स्वामीजीने कहा।

"भगवन्! ऐसा न कहें। मेरे निधनकी भविष्यवाणी भी मैंने पूरी स्वस्थतासे सुन ली। उससे ज्यादा और गंभीर बात ही क्या हो सकती है? जरूर फरमाएँ।" महाराजा पल्लवने कहा।

" राजन् ! मृत्यु के बाद तुरंत ही आपकी महारानियों के मल-मूत्रका संग्रह करनेवाली गंदी कूई में पचरंगी कीडे के रूप में आपका जन्म होते मैं देख रहा हूँ !"

" नहीं....नहीं .. यह कभी हो नहीं सकता ! मैं मरने तैयार हूँ; लेकिन मेरी रानियों के मलमूत्र को एकत्र करनेवाली कूई में कीडे का जन्म लेना मुझे मंजूर नहीं है ।" महाराजाने अकुला कर कहा ।

" राजन् ! यह मेरे बसकी बात नहीं है । विधिलिखित लेख कदापि मिथ्या नहीं हो सकते ।" स्वामीआनंद ने कहा ।

राजाने अपने सेनापति को बुलाकर कहा :

" सेनापतिजी ! यदि मेरा जन्म पचरंगी कीडे के रूप में हो तो, ईंट के टुकडों से या काँच के टुकडों से मुझे तुरंत खत्म कर देना । तुम्हारे सैन्य के सहारे से इतना जरूर करना । लो प्रतिज्ञा !"

राजा के अत्याग्रह के कारण सेनापति कंदुकने वैसी प्रतिज्ञा ले ली ।

सातवें दिन राजा पल्लव का सचमुच निधन हुआ । कूई के चारों ओर सैनिक खड़े हो गये । चार–छ घंटों में ही एक पचरंगी कीडा कूई में चक्कर काटता दीख पड़ा ।

" मारो...मारो....यह आया...यह गया " सैनिकोंने भारी शोर–गूल मचाया । चारों ओर से पथराव हुआ । लेकिन एक आश्चर्यजनक घटना घटी । मरने के लिये तत्पर होने के बजाय वह कीडा तो पानी में अदृश्य होने लगा । मरने के लिये मानों वह तैयार ही न हो । दिनभर के परिश्रम से थके सेनापति कन्दुक स्वामीआनंद के पास गये । उन्होंने पूछा–" भगवन् ! महाराजा की आत्मा कीडे की देह में मरने पर जरा भी उद्युक्त नहीं है । अब मैं करूँ भी तो क्या करूँ ?"

www.yugpradhan.com

स्मित करते हुए स्वामी ने कहा–" कंदुक ! प्रत्येक जीव जीना पसंद करता है। मरना किसी को जरा भी पसंद नहीं। अतः उस प्रयत्न को छोड दो।

तुम्हारा राजा उसकी रानियों के प्रति भारी आसक्त था। उस आसक्ति का ही यह परिणाम हैं। रानियों के मलमूत्र में जन्म लेना, जीना और अन्त में मरना।"

(७७) चाँपराजवाला डाकू

उसका नाम था चांपराजवाला। वह था एक प्रसिद्ध डाकू। उसकी भारी धाक थी। रोते बच्चे उसका नाम सुनते ही सहमकर चुप हो जाते।

www.yugpradhan.com

एक रोज उसे अपनी जिंदगी से नफरत हुई। सीधे–सादे जीवन की उसे लालसा जगी। एक अंग्रेज रेसिडन्ट के यहां वह नौकरी रहा।

महिने गुजर गये। चांपराजवाला अब अच्छे नौकर के रूप में मस्तमौला जीवन गुजार रहा था। अंग्रेज साहब के उसके पर चारों हाथ थे। फूरसत के समय कई बार टूटीफूटी हिन्दी में बात कर लेते और आनंद मनाते।

एक रोज लेडी साहब के पेट में भारी पीडा उत्पन्न हुई। पीडा असह्य होने पर यकायक बम्बई ले जानी पड़ी। निदान करने पर पता चला कि, गर्भ में रहा बच्चा मूल जगह से जरा हट गया–उलट भी गया है। उपचार शुरू हो गये ! लेकिन सारा किया–कराया व्यर्थ रहा। पारावार वेदना जारी रही। साहब ने देखते ही देखते दस हजार रूपये खर्च कर दिये। फिर भी कोई फायदा न होने पर लेडी साहब को पुनः घर वापस लानी पडी।

दिनरात लेडी साहब चीखती रहती है ! पति की चिंता का कोई अन्त नहीं। एक बार तब चांपराजवाले की स्वामीभक्ति, अंतर में उमडती पुकारने लगी—" अरे डाकू, अपनी मालकिन का दुःख हटाने के लिये तु समर्थ नहीं क्या ? खडे हो जाओ और काम करने लगो ! संस्कृति का सत्त्व अब भी प्रवर्तमान है ! "

और चाँपराजवाला खड़ा हुआ। मन ही मन सोचकर, दुपहरी में सीमा पर एक चक्कर काटकर, एक ग्लास में पानी भर, उसमें अपने पसीने को थोडी बुंदें घुला दीं। बाद में अंग्रेज साहब के पास जाकर कहा—" यह प्रवाही लेडी साहब को पिला दें, दस मिनट में ही आराम हो जायेगा। "

" डूबते को तिनके का सहारा " उस नियमानुसार साहब ने अपनी पत्नी को वह पानी पिलाया। सचमुच, दस मिनटों में ही पीडा शान्त हो गयी।

पति—पत्नी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। चांपराजवाले से दवाई के बारे में पूछताछ की। और दवाई का नाम जानने का अत्याग्रह हुआ तो उसने अपना पसीना अंगुली पर ले बताते हुए कहा कि— " यही मेरी वह दवाई है ! "

' ये नहि हो सकता है। तुम जूट बोलते हो। ' साहब ने कहा।

उसे समय चाँपराजवाले ने कहा—' साहब ! मैं झूठ नहीं कहता। मेरी बात पर विश्वास करें। सही बात यह है कि इस पसीने के पीछे मेरे माता—पिता के ब्रह्मचर्य का बल टिका हैं। आप मेरी बात ध्यान से सूनें :

" जब मैं दो साल का था, तब एक रोज दोपहर में खेत में से मेरे पिताजी यकायक घर आये। मेरी माँ के साथ थोडी छेडछाड की।

छेडछाड़ कर तो दी, लेकिन उस समय, मेरी माँने सोते हुए मेरी ओर देखा। मैं उस समय अपने माता–पिता की ओर ही देख रहा था। अतः मेरी माँ को भारी चोट लगी कि–" इस बच्चे में कैसे संस्कार घर कर जायेंगे।" यह चोट वह न सह पायी। रात होते होते उसने आत्म-हत्या कर ली।

" साहब, ऐसी पवित्र माँ की मैं संतान हूँ। उसके पसीने में भी रोगनाशक शक्ति हो तो उसमें आश्चर्य क्या है?"

चांपराजवाले की यह बात सुनकर साहब उससे प्रेमपूर्वक लिपट गये। लेडी साहब की आँखों से भी हर्षाश्रु उमड़ पड़े।

(७८) दो चौकीदार !

www.yugpradhan.com

एक सेठजी थे। सभी उन्हें ' साहब ' के नाम से बुलाते थे क्योंकि उनका सारा लालन–पालन विदेशी साहबों के ढंग–सा था।

सेठ के परिवार में लेडी साहब, चार लडके और उनकी चार पत्नियों, बच्चे आदि मिलाकर कुल पचास आदमी थे। परिवार में छोटे–बडोंका मानमर्तबा था। अतः सभी बड़े आराम से सुखी जीवन गुजार रहे थे।

सेठ का बंगला विशाल था। चारों ओर लंबाचौडा बाग फैला था। और इन सभी की देखभाल करने के लिये नौकरों का बड़ा झमेला भी था। इन में दो मुख्य चौकीदार थे। सारे बगीचे और बंगले की चारों ओर चक्कर काटने का काम उन दोनों के जिम्मे था। दोनों में से एक दिनभर की चौकी करता और दूसरा रातभर की।

एक दिन की घटना है। सुबह का समय था। साहब चायपानी कर रहे थे। उसी समय चौकीदार दोड़ता आया और सहब के पाँव

पकड़ कहने लगा—" साहब ! तीन दिन के बाद आप विमान से लंडन जानेवाले हैं; लेकिन मैं आपको जाने न दूंगा । "

साहब तो यह सुन चिडचिडा गये । " ऐसे जड़ और अनपढ़ आदमी को मेरी बातों में टांग अडाने का क्या हक है ? " साहब मन ही मन बड़बडाये ।

बाद में जोर से चीखते हुए चौकीदार से कहा—" अरे मूर्ख ! निकल जाओ यहाँसे । मेरी बात में कभी दखल न किया करो ! "

" लेकिन साहब, मुझे चाहें तो मार डालें, लेकिन उस विमान से मैं आपको रवाना न होने दूँगा ! क्योंकि मुझे आज रात सपना दीख पडा है । जिसमें मैंने आपके विमान को आगमें जलकर जमीन पर गिरता देखा है ।" चौकीदार ने एक ही साँसमें कह डाला । साहब के पास बैठी लेडी साहब ने जब यह बात सुनी तो वे चौंक पडीं । उन्होंने तुरंत साहब से कहा—" तब मैं भी चाहूँगी कि आप उस विमानसे नहीं जा पायें ! टिकट रद करवा दें । हो न हो, यह सपना सही बन पडे तो ? "

अब साहब प्रतिकार नहीं कर पाये । टिकट रद कर दिया गया । साहब मन—मसोसकर रह गये ।

और तीसरे दिन वह निश्चित विमान ऊड़ा । सचमुच थोडी ही देर में आकाश में जाकर वह जल उठा । दूसरे दिन अखबारों में समाचार पढ़ते ही, साहब का सारा परिवार आनंदविभोर हो उठा । रात के चौकीदार को ईनाम दिलाने के लिये छोटे-बडे सभीने साहब के सामने जाकर खड़ा कर दिया ।

लेकिन...साहब उदास थे । मोत के मुँह से बालबाल बच जाने पर भी उसके मुँह पर आनंद की लहरें दीख न पड़ती थीं ।

www.yugpradhan.com

सभी चकित रह गये।, आखिर लेडी साहब ने मौन तोड़ा और चौकीदार को दो हजार रूपयों का ईनाम देने की प्रार्थना की। चैकबुक मँगवाकर दो हजार रूपयों का चैक लिख दिया और बाद में हाथ में लेटर–पेड उठाकर लिखना शुरू किया :

"रात के चौकीदार को एक मास की नोटिस देकर नौकरी में से मैं बरतरफ करता हूँ।"

यह पढ़कर सारा परिवार स्तब्ध रह गया। लेडी साहब ने, साहब से कारण पूछा–" लेकिन ऐसा आप क्यों कर रहे हैं ?"

साहब ने कहा–" सपने कब आते हैं ? चौकीदार सोया हो तभी संभव है ना ? इस प्रकार इस चौकीदार ने रात को जगते रहने की मेरी आज्ञा का उल्लंघन किया है। आज्ञाभंग होने पर कोई भी लाभ मेरे लिये निकम्मा है। आज्ञाभंग की सजा भुगतनी ही चाहिए।"

www.vrudhradhan.com

(७९) दीवार साफ करें।

(बोध : मन की गंदी दीवारों पर चित्रित धर्मों के चित्र कभी शोभा नहीं पाते।)

एक राजा था। हर बात में रुचि रखता था। भारत की कला–कारिगीरी का कोई नमूना तो अपने राज्य में होना ही चाहिए इस बात का भारी आग्रह था।

एक रोज उसे भारत में जिसकी बराबरी न हो, ऐसी बेनमून चित्रशाला बनवाने का निर्णय किया। तुरंत ही कुशल चीतारों की खोज शुरू हुई। दो ख्यात–चित्रकार मिल भी गये। उनकी सूचना अनुसार चित्रशाला के लिये योग्य मकान तैयार करवाया। उस मकान के मुख्य खंड को लम्बचौरस बनाया गया था।

दो लम्बी दीवारें आमने–सामने बनवायी थीं। एक एक दीवार दोनों के बीच सौंपी गयी। एकदूसरे के चित्रों को देख, मन में वैसे ही चित्र के प्रति रुचि बढ़ जाने की संभावना, दोनों चित्रकारों में हो सकती है, ऐसा जान राजा ने दोनों के बीच में एक बड़ा पर्दा लगवा दिया। अब प्रत्येक चित्रकार अपनी मनोसृष्टि में विहार कर, अपनी खूबियाँ रंगों द्वारा दीवारें पर प्रकट किया करे, यह देखने के लिये राजा भारी उत्सुक था।

छ मास का समय निश्चित किया गया और शुभ मुहूर्त में चित्रकारों ने चित्रकार्य शुरू किया।

देखते ही देखते छ मास पूरे हुए। दोनों चित्रकारों ने, राजा को अपने अपने चित्रों के दर्शन के लिये, चित्रशाला में आने की प्रार्थना की। सामंतों, सरदारों, स्वजनों और बँधुओं को साथ ले, राजा चित्र देखने चित्रशाला में गये।

www.yogpradhan.com

प्रथम चित्र देखते ही सब चकित हो गये। एक साथ 'अद्भुत, अद्भुत' के शब्द निकल पड़े। उस चित्र में, एक जगह उदय होते सूर्य की किरणों का पानी की लहरों पर ऊतरना दिखाया था। घटादार वृक्षों की हरियाली की कोई अद्भुत रचना थी। नृत्य में मग्न बने मयूर के पीछों के रंगों की मिलान देखकर राजा दंग रह गये।

बाद में दूसरी दीवार के चित्र देखने सभी गये। लेकिन दुःखद बात यह थी कि उस दीवार पर अभी तक रंगों का आलेखन हुआ ही न था। छ मास तक उस चित्रकारने केवल दीवार घिसने का काम ही किया था। चित्रकाम तो शुरू भी न किया गया था। राजा ने महसूस किया कि "यह तो हजारों रूपयों की बरबादी ही है!" राजा आग-बबूले हो गये। उन्होंने सख्ताई के साथ चित्रकार को डाँटडपट की।

चित्रकार ने राजा से कहा—" राजन् ! आवेश में न आयें । चित्र तैयार ही है । इस खंड में जो बीच में पर्दा डलवाया है उसे हटायें, इतनी ही मेरी प्रार्थना है । "

तुरंत पर्दा हटाया गया । उस चित्र को तुच्छ बता दें ऐसा अनोखा चित्र इस दिवार पर चमकने लगा । राजा तो इकटक देखता ही रहा । चित्र में रहा मोर तो इतना सजीव था कि उसे पकड ने दौड पड़ा । "

हँसते हुए चित्रकार ने कहा—" राजाजी । यह तो चित्रित मोर है, धरती का नहीं ! "

यह सुन राजा शरमिंदा हुआ । चित्रकार ने कहा—" राजन् , मेरे मित्र चित्रकार ने जो चित्र सामने की दीवार पर बनाया है, वही यहाँ पर प्रतिबिंबित हुआ है । फिर भी उसमें जो सजीवता—वास्तविकता दीख पड़ती है, उसका एक मात्र कारण है इस दीवार की स्वच्छता और चमकीलापन हैं ! " राजा ने इस चित्रकार को खुश हो भारी इनाम दिया ।

www.youpradhan.com

(८०) द्रव्यदर्शन में राग : पर्यायदर्शन में विराग !

एक दिन किसी एक नगरी के राजाने भोजन—सभारंभ का आयोजन कर, स्वजनों को आमंत्रित किये । सुबुद्धि नामक जैन मंत्री को भी बुलाये गये । स्वादिष्ट भोजन की चारों ओर सराहना हो रही थी । तब सुबुद्धिने मौन रहना उचित समझा । राजा को यह बात पसंद न आयी । वे अकुलाकर बोले—" मन्त्रीश्वर तो केवल राजकाज में ही रुचि रखते हैं । दूसरी और बातों में कोई रुचि ही नहीं दीखती । "

फिर भी सुबुद्धि मौन रहे । बाद में सभी बिखरे ।

और एक दिन राजा, मन्त्री आदि साथ साथ घुमने निकले। रास्तेमें भयंकर बदबू छोडता नाला आया। सभीने नाकें सिकोडी; फिर भी मन्त्री को तो जैसे के वैसे घोडे पर बैठे देख, राजा चकित रह गये। सभी छीं....छीं.... करते गुजर गये।

उस दिन मंत्रीने निर्णय किया कि राजा आदि सभी को सही बात का खयाल आना चाहिए और उन्हें सही रास्ते की ओर मोडने चाहिए।

दूसरे दिन मन्त्रीने घडे में भरवाकर उसी गंदे नाले का गंदा पानी घर मँगवाया। एक के नीचे दुसरा, उस प्रकार क्रमशः सात घडे लगाये। सभी में रेती डालकर, उस गंदे पानी को छान लिया। उसके बाद कनक नामक चूर्ण द्वारा सात दिनों तक पुनः छानकर उसे निर्मल किया। उसके बाद एक एक कर सुगंधित द्रव्यों के मिश्रण के साथ दिनों तक छोडा गया। उस प्रकार कुल ४९ वें दिन नाले के गंदे पानी के रूप–रंग–रस सभी बदल गया और उसकी जगह सारे पानी में कोई अनोखी रसमयता और सुगंध पैदा हुई।

एक रोज मन्त्रीने राजा से लेकर सारे स्वजनों और स्नेहीजनों को अपने यहाँ भोजन के समारंभ में निमंत्रित किये।

भोजन की चीजें सारी, एक एक से बढिया और स्वादिष्ट थीं। बाद में जैसे ही उस सुगंधित पानी के ग्लास रखे गये, तब तो सारे खंडका वातावरण ही पलट गया। चारों ओर सुवास ही सुवास! महेमानों के दिमाग, उस सुगंध की मादकता से तरोताजा बन गये।

और सभीने जब उस पानी का पान किया तो सभी के मुँह से आनंद के उद्‌गार निकल पडे। सभी एक साथ बोल उठे "अद्‌भुत जल है!"

राजाने कहा—" सुबुद्धि ! आज तक तुमने मुझसे ऐसे सुगंधित जल की बात क्यों न बताई ? क्या हमारे नगर में ही कहीं से ऐसा मीठा, सुगंधित पानी बह रहा है ? "

" जी हाँ, उस नाले में ही; जिसकी दुर्गंध के मारे आपने नाक भौं सिकुडे थे । " मन्त्रीने कहा ।

" असंभव, कदापि नहीं हो सकता ! " सभी एकसाथ बोल उठे ।

सुबुद्धि मन्त्रीश्वरने गंभीर हो, शान्ति से कहा—" राजन् ! अपराध क्षमा हो ! यह सुगंधित पानी भी उसी नालेका गंदा पानी ही हैं । "

उसके बाद ऐसे गंदे पानी का परिवर्तन, ऐसे स्वादिष्ट—सुगंधित पानी के रूप में कैसे किया गया उसकी सारी कहानी मन्त्री ने राजा से कह सुनायी और कहा—" राजन् ! अब आप समझ पायेंगे कि आपके आयोजित भोजन—समारंभ एवं नालेकी दुर्गंध में मैं क्यों स्थित-प्रज्ञ बना रहा था ? "

www.yogpradhan.com

" राजन् ! जो केवल द्रव्य को ही नजर अंदाज करता है, उसके दिलमें ही राग और धिक्कार की लहरें ऊठती हैं; लेकिन जो द्रव्यों के पर्यायों की ओर ध्यान देता है, उसे सर्वत्र विराग की अनुभूति होती है ।"

(८१) खुशामतखोरी

(चापलूसों द्वारा धर्मशासन करना असंभव है !)

वह राजा पचास गाँवों का मालिक था । हर तरह से सुखी । साथ सभी पापों से निजी संबंध रखनेवाला ।

एक दिन मनमें सोचा कि थोडा धर्मकार्य करूँगा तो लोग मुझे धार्मिक पुरुष के रूप में ऊँची नजर से देखेंगे । मेरी चारों ओर प्रतिष्ठा होगी ।

तप, त्याग या व्रत, जप आदि तो राजा के लिये दुःसाध्य था। उसे तो बिना कष्ट उठाये आस्तिकता का प्रदर्शन ही करना था। सोचते एक युक्ति सूझी। 'धर्म की बातें कहते रहने से धर्मीजन के रूप में प्रसिद्धि हो सकेगी।'

दूसरे दिन से ही धर्मगोष्ठि शुरू हो पायी। गाँव के विद्वान शास्त्री प्रभाशंकर पुरोहित को आमंत्रण दिया गया।

दिन गुजरते चले। हर तरह से आडम्बरी और फटाटोपी राजा की 'धर्मराज' के रूप में ख्याति बढ़ने लगी।

एक रोज बीमारी के कारण प्रभाशंकर शास्त्रीजी धर्मगोष्ठि सभा में उपस्थित न हो सके। शास्त्रीजी का एक युवान पुत्र था। थोडी इधरउधर की बातें सुना कर शास्त्रीजीने उसे तैयार कर दिया।

बनठनकर शास्त्रीजी के पुत्र धर्मगोष्ठि के लिये राजसभा में आ पहुँचे। धर्मराज ने उनका भारी स्वागत–संमान किया।

धर्मगोष्ठि में चर्चा के बीच, शास्त्रीजी के पुत्र ने एक दुहा ललकारा :

"तिलभर मछली खायके, करे कोटि गौ दान...
काशी करवट ले चले; तो भी नरक निदान!"

इन दुहे में 'मछली' और 'नरक' दो शब्दों के उल्लेख से धर्मराज चौकन्ने हो गये। क्योंकि उन्हें मछली का भोजन अत्यंत प्रिय था। साथ ही नरक की बातों से वे कई बार काँप उठते थे।

उन्होंने तुरंत ही उनसे दुहे का भाव पूछा।

साफदिल के शास्त्रीपुत्र ने विशद रूप में उसका अर्थ समझाते हुए कहा कि–"तिलभर मछली का भोजन करनेवाले को भी नरक भुगतना पड़ता है; फिर भले ही वह धर्माचरण करता हो।"

धर्मराज के लिये तो यह बात वज्रपात जैसी थी। उनसे मछली-त्याग अशक्य था। अतः यह सुनते ही वे आगबबूला हो उठे। उन्होंने पुनः ऊँची आवाज से उस दुहे का स्पष्ट अर्थ पूछा। नीडर शास्त्रीपुत्र ने भी वही जवाब दिया।

" निकल जाओ यहाँ से....बकवासी कहीं का ! फिर कभी मुँह न दिखाना। तुम्हारे पिताजी को भी मैं इस स्थान से मुक्त कर देता हूँ। " धर्मराज ने साफ साफ बता दिया।

यकायक मामला बिगड जाने से शास्त्रीपुत्र हडबड़ा गये। तुरंत घर लौटे। पिताजी से सारी बातें बतायीं।

" अरे बेटा ! तुमने यह क्या किया ? हमें तो जीविका से मतलब है ! राजा के पापों से हमें क्या निस्बत ! वे अपनी करें अपनी जाने। वह खुश रहे यही हमारा काम है। उन्हें नाराज करने से हमें क्या फायदा ! अच्छा, चलो, जो हुआ सो हुआ, कल बिगड़ी बात मैं फिर बना लूँगा। " प्रभाकरजी ने बेटे से कहा।

दूसरे दिन राजसभा में जाकर शास्त्रीजीने कहा—" जय हो धर्म-राज का !" मेरे पुत्र ने शास्त्रार्थ करने में गलतफहमी की है। दुहे का सही अर्थ मैं समझा रहा हूँ। उसे सुन आप जो उचित समझे, करें।"

कुछ शान्त हुए राजाने सही अर्थ समझाने का इशारा किया तो शास्त्रीजी कहने लगे—" दुहे का सही भाव यह है कि जो मनुष्य केवल तलभर ही मछली खाय उसे नर्क यातना उठानी पड़े फिर भले वह धर्माचरण करता हो। "

" लेकिन आप नामदार तो थालियों भर मछली का भोजन करते हैं। अतः आप जैसों के लिये तो स्वर्ग की अप्सराएँ प्रतीक्षा में खड़ी हैं।

www.yugpradhan.com

शास्त्रीजी के बताये रहस्यार्थ को सुन धर्मराज आनंदविभोर हो उठे और तुरंत ही खजाने में से पाँच सौ सोनामुहरें भेंट की और वंश-परंपरा तक नौकरी भी कायम कर दी।

(८२) "चलणा है, रेणा नहीं।"

(क्षण इतिहास के निर्माता हैं, युग नहीं!)

वह टर्की का बादशाह था।

सिराजुद्दौला उसका नाम था। टर्की की सारी प्रजा उसे 'सिराजू' नाम से परिचित थी।

अपार संपत्ति एवं अमर्याद सत्ता के पुण्यबल से उसकी राजसत्ता का सूरज कभी अस्तंगत न हुआ था। लेकिन सत्ता और समृद्धि का नशा किसे छुआ नहीं? सत्तामद से अछूता कोई विरला ही होता हो!"

www.yugpradhan.com

सिराजू भी सत्तामद से अछूता न रहा। फलस्वरूप में युवानी के प्रारंभ में ही, अपने जीवन की चदर को अनाचार के काजल से कालीकलूटी कर रखी थी।

सुरा और सुंदरी उसके जीवनसाथी बने थे। प्रजा की अकुलाहट की उसे परवाह न थी। उसने इस पृथ्वी पर ही नशाखोरी का स्वर्ग धर दिया था। अतः स्वर्ग में जाने तक की कोई ख्वाहिश न थी।

फिर भी, पापी भी 'पापी' के रूप में अपनी पहचान हो, यह पसंद नहीं करता। अधर्मी भी, 'धर्मी' कहलाने की तृष्णासे बच नहीं पाते।

'सिराजू' ने भी अपनी राजसभा में धर्मगोष्ठि का आयोजन किया। फकीरों और मौलवियों को निमंत्रित किये गये।

सुंदरियों के नाचगान खत्म होते ही वह सभा धर्मगोष्ठि के रूप में परिवर्तित हो जाती । मौलवी लोग कुरान की बढिया–से बढिया आयातें पढ़ सुनाते और उनके रहस्यसभर अर्थ सुनते–समझते 'सिराजू' सिर धुनाता और "या खुदा....या परवरदिगार" आदि शब्दों के लगातार रटन कर, मौलवियों को खुश कर देता ।

खुशामतखोर मौलवियों को तो सिराजू के जीवन की बेढंगी रफतार की परवाह ही न थी । लेकिन एक बुजुर्ग मौलवी के दिलमें, ऐसी दिखावा करने की बात खटक रही थी । अत एव जरा सख्त बनकर सिराजू को सही बात समझाने की लगातार कोशिशें करते रहे । मौका पाते ही वे सुरा–सुन्दरी से मुक्त हो, खुदाकी बंदगी में जुड जानेका आग्रह करते । लेकिन सारे किये–कराये पर पानी फिर गया ।

www.yogpradhan.com

फिर भी, सिराजू के अंधकारमय पापी जीवन में भी एक रोज सुनहला प्रभात चमक पड़ा । मौलवी के उपदेश के युग के युग, उसका जीवन का परिवर्तन न कर पाये लेकिन एक बाँदी (दासी) की एक ही पलने, एक वाक्यने ही, सिराजू के जीवन की करवट बदल दी । जीवन में मौका तो हमेशा द्वार पर खड़ा रहता ही है, लेकिन जो अभागी हो उसे वह दीख नहीं पड़ता । ऐसे कमनसीब, मौकेकी प्रतीक्षा करने में ही सारा जीवन गुजार देते हैं; जब कि समझदार आदमी ऐसा सुअवसर पाते ही, बिना एक पल बरबाद किये अपने जीवन की बेढंगी रफतार को पलट देते हैं ।

एक रोज, दोपहर का समय था । भोजनादि कर 'सिराजू' झुले पर बैठ आरामसे सोया था । बड़ी बेगम साहिबा सलाई काम कर रही थीं । यकायक उन्हें कुछ याद आया । तुरंत वहीं से बांदी को पुकारा– 'वहाँ चलणा के नीचे रेणा है, वो इधर ले आ तो ।" (वहाँ छलनी

के नीचे बैंगन हैं। उन्हें यहाँ ले आओ।) सुनकर अपनी जगह से खडी हो, बाँदी बैंगन लेने के लिये छलनी के पास गयी। लेकिन छलनी के नीचे बैंगन थे ही नहीं। वह स्तब्ध हो, मन ही मन सोचा कि यहाँ बैंगन तो हैं ही नहीं। उसने वहीं से बेगम साहिबा से बताया कि– चलणा है, रेणा नहीं। (छलनी तो है, बैंगन नहीं।)

सिराजू ने यह वाक्य सुना। उसके दिल पर चोट हुई। एकसाथ पुकार उठा–"क्या मुझे भी एक बार यहाँ से जाना ही होगा? यहाँ हमेशा ठहरना नहीं है?" और उसी समय, बादशाह सिराजू फकीर हो, महल से बाहर हो गया।

(८३) छाडा शेठजी!

www.yogpradhan.com

वढवाण शहर के वे सेठजी थे। छाडा उनका नाम था। सेठजी के जीवन में ऐसा भी समय गुजरा था जब गरीबी के दुःखद क्षण गुजारने पडे थे। लेकिन ऐसी कठिन परिस्थिति में भी उनकी रक्षा धर्ममाताने की थी। उस माताने ऐसे कठिन दिनों में भी उन्हें विवश और निराश होने न दिये थे।

अब शेठजी के दिन पलटे थे। वढवाण के अग्रगण्य धनिकों में, उनका निश्चित स्थान बन पाया था।

जो कुछ घटित होता है, वह कर्म के उदय पर आधारित है। फिर भी तत्कालीन घटनाओं में कभी कभी कतिपय बाह्य निमित्त भी, अपना प्रभाव जमा देते हैं।

गरीबी में से अमीर बने सेठजी के जीवन में, दक्षिणावर्त शंख और परमात्मा पार्श्वनाथ की लक्षगवंती प्रतिमा की घर में की गयी प्रतिष्ठाने, भारी परिवर्तन ला दिया।

जाग्रत अधिष्ठायक देवों ने सेठजी के जीवन तारक को चकाचौंध कर डाला ।

विपत्ति में भी विवश न बनने की साधना तो आसमान के तारे तोड लाने जैसी दुसाध्य है।

लेकिन सेठजी के रोएँ–रोएँ में जिनधर्म व्याप्त हो पाया था। उसने ऐसी सिद्धि भी सेठजी के चरणों में लाकर धर दी ।

वही सच्चा धर्मीजन है, जो दुःख में भी अदीन बना रहे और सुख में भी अलीन–निर्मोही बना रहे ।

एक दिन सुख की उस अलीनता की पूरी कसौटी हुई । रात्रि का समय था । अर्धनिद्रा में छाडा सेठ सो रहे थे । उस समय उन्हें एक सपना दीख पड़ा ।

www.yogpradhan.com

(जो वास्तव में देवप्रदत्त होने के कारण सही था)

सपने में दो देवकुमार दीख पडे । उन्होंने सेठजी से कहा–" आप जगते हैं या सो रहे हैं ? "

सेठजी ने कहा–" मैं जग ही रहा हूँ । आप लोग कौन हैं ? और किस निमित्त यहाँ पधारे हैं ? "

देवकुमारों ने कहा–" सेठजी, हम दक्षिणावर्त शंख और परमात्मा पार्श्वनाथ की प्रतिमा के रक्षक (अधिष्ठायक) देव हैं । जहाँ उनकी प्रतिष्ठा वहाँ हमारी रखवाली । वहीं हमारा नवनिधान....। "

" अब सही बात यह है कि हम यहाँ से बिदा हो रहे हैं । क्योंकि सारी बातें आखिर पुण्यबल पर आधारित हैं । सेठजी, बिदा होने से पूर्व केवल आप से निवेदन करने के लिये हम आपके पास आये हैं । "

"अच्छाजी, बात ऐसी है क्या !" कहकर सेठजी खडे हुए। और बोले—"क्या आप लोग ऐंठकर ये सारी बातें कह रहे हैं ? आप के बिदा होते ही मेरी सारी जायदाद खतम हो जाने पर मेरी हालत क्या होगी उस चिन्ता से व्याकुल हैं क्या ?"

"तो आप जरा मेरी सुन लें। जब तक मेरे इष्टदेव अरिहंत है, गुरु निर्ग्रंथ हैं और दयामय धर्म है, तब तक, मेरा सर्वस्व लूँटा जाय, तो भी मुझे उसकी तिलमात्र चिन्ता नहीं है।"

"अरे, एक टुकडा बिखर जाने पर पहाड कभी रो-धूप करता है क्या ?"

"एक प्यालाभर पानी कम होने पर गंगाने कभी दुःख रोया क्या ? देवकुमार ! आप क्या बिदा लेंगे। अरे, मैं ही आपको बिदा कर दिये देता हूँ। यह बात आप निश्चित रूपसे समझ लें।" पूरे गौरव के साथ, सेठजीने देवकुमारों को खरीखोटी सुना दीं। चकित होकर देवकुमार वहाँ से बिदा हो लिये। योगानुयोग से, थोडे ही दिनों में मन्त्रीश्वर वस्तुपालके शत्रुञ्जयतीर्थके संघसमस्तने वढवाण शहर के बाहर डेरा डाला। पूरे मान-संमान के साथ, छाडा सेठजीने साधर्मिक भक्ति का लाभ देने के लिये, समुचे संघको अपने घर आमंत्रित किया। संघ-नायक ने संमति दी। उत्तम सामग्री से संघका स्वागत-सत्कार हुआ। सभी को ताम्बुल आदि देकर, पीताम्बर धारणकर सेठजी गद्दी पर बैठे संघनायक के पास आये। उनके हाथों सोनेका थाल पकड़ा हुआ था। उसमें दूध भरा था। उसमें शंख और प्रतिमाजी स्थापित किये थे। ये दोनों चीजें संघनायक को समर्पित कर दीं। सेठजी का पुनः पुण्योदय हुआ। देवकुमार पुनः रात में दीख पडे। बोले—"सेठजी, अब हम कभी वापस जाएँगे नहीं।"

www.vijaydhan.com

(८४) पापीजन या धर्मीजन ?

बातबात में कुमार के मातापिता के साथ मतभेद तीव्र होते चले। एक दिन बात बढ़ गयी और आवेश में आकर पिताने युवान राजकुमार को दोचार चोटे जमा दिया। क्रुद्ध हुए राजकुमारने बड़ी सुबह तलवार कटिमें बाँधकर राजमहल का त्याग किया।

प्रारब्ध में जहाँ निर्माण हो वहाँ जानेकी तैयारी के साथ वन में प्रवेश किया। दूसरे दिनका प्रभात हुआ। फलाहार कर राजकुमार आगे बढ़ता है, वहाँ उसके सामने एक घुडसवार आकर खड़ा रहा। उसने सर दाढ़ी बाँधी हुई थी। उसे देखते ही राजकुमारने म्यानमें से तलवार खींच निकाली। उस घुडसवारने राजकुमार से, आह्वान देते हुए कहा, "पास में जो कुछ हो, नीचे धर दो। लेकिन यह पक्का–सच्चा क्षत्रियबच्चा था। बिना कुछ जवाब दिये, उसने तलवारबाजी शुरू कर दी। दोनों के बीच भारी द्वन्द्व युद्ध खेला गया। थोड़े ही देरमें घुडसवार थकने लगा। मौका पाते ही राजकुमारने उसको तलवार का जोरका घाव किया और घुडसवार की तलवार हाथ से छूट जाकर दूर पड़ी। जमीन पर गिरते ही घुडसवार के मुँह से इष्टदेव के स्मरणरूप में 'नमो अरिहंताण' का उच्चार हो पाया। अपनी मौत निकट देख, उसने अन्तिम ईश्वरस्मरण कर लिया और दूसरे ही क्षणमें वह बेहोश हो गिर पड़ा।

यह मन्त्रोच्चार सुनते ही, राजकुमार स्तब्ध हो गया। जल छिटक कह उसने घुडसवार को जाग्रत किया और फिरसे ललकारा–"लो, उठाओ तलवार! पुनः युद्ध करें।"

घुडसवार ने हँसते हुए कहा–"अब युद्ध कैसा? मैं तो कभी का मारा जाता! लेकिन निःशस्त्र स्थिति में तूने मुझे मारा नहीं। कैसी

अनूठी है तुम्हारी सज्जनता ! तुम्हारे जैसे सज्जन आदमी के साथ लड़ना शोभास्पद नहीं है ।"

राजकुमार ने उसकी मैत्री का स्वीकार किया । दोनों एक बरगद के पेड के नीचे बैठे । राजकुमार ने घुडसवार से पूछा–"आप कौन हैं ?" और डाकू–सा जीवन गुजारते हुए तुम्हारे मुँहसे ईश्वर–स्मरण कैसे हो पाया ? मुझे कुछ विरुद्ध–सा उसमें दिख पड़ता है !"

घुडसवारने कहा 'कुमार, शान्तिपूर्वक सुनें । अपरमाँ राजमाता के त्रास और अत्याचारों की मुझ पर वर्षा हुई । एक रोज उसने कुछ जादू–टोना कर मुझे भोजन में कुछ खिला दिया । अर्धपागल जैसी स्थितिमें मैं राजमहल से चल पडा । चलते चलते जंगल में पहुँचा । भूखा–प्यासा था । बेहद परेशान भी था । वहाँ जानवरों के मुर्दों की दुर्गंध से भरा तालाब नजर आया । तुरंत ही प्यास बुझाने दौडा । वहाँ तीव्र दुर्गंध के कारण मुझे वहीं भारी कै हो गयी । उसमें वह जादु टोनावाला तत्त्व भी निकल पड़ा । उसी समय वहाँ एक पल्लीपति आया । वे मेरे चाचा ही थे । मेरी दुर्दशा देख उन्होंने मुझे पल्ली-पति के पद पर आरूढ किया और स्वयं जिसका अनवरत रटन करते थे, उस जैन दीक्षा को लेकर रहे ।

"राजकुमार ! आज अब आपसे भेंट हुई है । पल्लीपति के पापिष्ठ जीवन से मैं त्रस्त हो गया हूँ । मुझे जैनी दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण साधना है । तो आज से मेरी पल्ली को सम्हाल ले जिससे मैं अपने कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ूँ ।"

और....उसी दिन राजकुमार को पल्लीपति के पद पर आरूढ कर, सद्गुरू की खोज में वहाँ से बिदा हो गये ।

www.yugpradhan.com

(८५) एक ही बड़ी कमजोरी

(बोध कथा)

जर्मन देश में अत्यंत लोकप्रिय दंतकथा है।

एक समय देवों और दानवों के बीच घोर युद्ध हुआ करते थे। दानवों की कुटिलता देख देवलोग 'त्राहि माम्' कर गये थे।

उसी समय इस पृथ्वी सिग्फीड नामक एक युवक निवास करता था। उनकी ताकत अजोड़ थी। उसका पुरुषार्थ असाधारण था।

किसी कारणवश दानवों का राजा, सिग्फीड के साथ टकरा गया। दोनों के बीच भारी युद्ध छिड गया। देव और दानव, आकाश में स्थित हो दोनों की भीषण लड़ाई देख चकित रह गये।

www.yugpradhan.com

लेकिन सिग्फीड को विजय का एक मौका मिल गया। अमित दानवराज ने थोड़ी ही गलती की और तुरंत ही उसके पर तलवार का जोरदार घाव कर बैठा। एक ही पल में चीखता हुआ दानवराज तडपता हुआ मर गया। वहाँ खून की छोटी सी नदी बह निकली।

आनंद की पुकारे करते हुए देव जमीन पर आ उतरे। सभी ने सिग्फीड को धन्यवाद दिये। देवों के अधिपति ने वरदान दिया और कहा कि—"इस खून की नदी में तुम स्नान करो। जहाँ यह खून तुम्हारे अंगों को छुएगा, वे सारे अंग अभेद्य और अमर बन जायेंगे।"

आनंदविभोर बने सिग्फीड, वहाँ खून में स्नान करने लगे। उस समय वहाँ खडे पीपल के वृक्ष का एक पन्ना उनके कंधे पर लग गया।

सारे शरीर पर खून का स्पर्श हुआ, परन्तु कंधे का वह भाग अछूता रह गया।

यह बात वहीं थोडे दूर खडी सिग्फीड की माता ने जान ली।

शक्तियाँ तो सभी को ईश्वर की ओर से प्राप्त होती हैं; लेकिन उन्हें निभाने की हैसियत बहुत कम लोगों में देखी जाती हैं।

सिग्फीड को भी प्राप्त शक्ति का गर्व हुआ। उसकी देह अभेद्य हुई जान वह उद्धत और स्वेच्छाचारी हो गया। सर्वत्र त्रास के साम्राज्य का बोलबाला था।

इस हालत को देखकर, एक युवान राजकुमार का दिल दहल उठा।

उसने सोचा कि किसी भी मनुष्य में संपूर्णता नहीं है। सिग्फीड भी आखिर मनुष्य है; अतः वह भी संपूर्ण नहीं है। उसकी किसी कमजोरी को ढूंढ़ निकालनी चाहिए। अन्यथा इस नरराक्षस के अत्याचारों की कोई सीमा न रहेगी।

www.vidyadhan.com

येन–केन–प्रकारेण सिग्फीड की माँ का विश्वास पाकर, बातों ही बातों में सिग्फीड की कमजोरी पहचान ली कि "खून में स्नान करते समय चिपके हुए पीपल के पत्ते के कारण, कंधे का भाग अभेद्य रह नहीं पाया।"

इतना जानकर, राजकुमार वहाँ से विदा हो गया अपने राज्य में जाकर उसने विशाल सैन्य का आयोजन किया। बाद में सिग्फीड को युद्ध के लिये ललकारा।

दोनों के बीच घमासान युद्ध शुरू हुआ। आखिर में दोनों योद्धा आमने सामने आ गये। एक के बार व्यूह खेलने गये। मौका पाकर, राजकुमार ने अपने भाले का जोरदार प्रहार उसके कंधे पर दिया। उसी समय अभेद्य–अपराजेय सिग्फीड घायल हो जमीन पर गिर पड़ा।

इस प्रकार उसका त्रासवाद का अन्त हुआ। लोगों ने खुश हो राजकुमार की जयघोषणा की।

(दंतकथा द्वारा जर्मनी के अभिभावक और बड़े बूढे, अपने बच्चों को बोध देते हुए कहते हैं कि, अगर तुम्हारे जीवन में कहीं पर भी कमजोरी छिपी हुई होगी, तो वह तुम्हारे समुचे जीवन को तहस-नहस कर देगी।)

(८६) देह : हमारा दुश्मन !

(शास्त्रकारोंने देह की तुलना चोर के साथ की है। आत्मा के अनुपम गुणों का वह हत्यारा है। फिर भी उसके विना-सहकार आत्मविकास की साधना यदि असंभव हो तो, देह का लालन-पालन उदासीनता के साथ करते रहे; लेकिन उस समय भी, उसके 'घातकस्वरूप' को कभी भी साधक आत्मा को भूलना न चाहिए।)

www.yugpradhan.com

एक नगर था। नगर के राजा का नाम था शिलादित्य। राजा की न्यायप्रियता की सराहना चारों ओर हो रही थी। जितने वे उदार और मायालु थे उतने ही वे सख्त और नियमपालन के आग्रही थे। सज्जनों को आदर देते और दुष्टों का दमन करते।

उस नगर में धनपाल नामक एक सेठजी रहते थे। उनका प्रभव नामक लडका था। पिताजी के व्यवसाय में प्रभव ने भारी कौशल्य पा लिया था।

वसुदत्त और प्रभव दोनों के बीच मैत्री थी। एक रोज मामूली बात पर दोनों झगड़े। झगड़ा इस हद बढ़ गया कि आवेश में आकर, प्रभव ने वसुदत्त की तीक्ष्ण हथियार से हत्या कर दी।

धनपाल सेठने अपने पुत्र के हत्यारे को गिरफ्तार कराया। राजा शिलादित्यने प्रभव को बंदी बनाकर कारागार में ठूँस दिया।

थोडे महिने गुजरे। धनपाल सेठने व्यवसाय के बारे में किसी ग्राहक के साथ धोखाधडी की। ग्राहकने जाकर शिलादित्य से सिकायत की। सेठ को बुलाकर, राजाने सारी जानकारी पा ली और सेठजी को अपराधी घोषित किये। उन्हें छ मास की कारागार की कड़ी सजा दी गयी।

जिस बंदीगृह में अपने पुत्र का घातक प्रभव बंदी था, उसी बंदीघर में आज धनपाल सेठ को भी बंदी बनाकर रखे गये। इतना ही नहीं लेकिन दोनों बंदियों के एक एक पाँव को, एक ही लोहे की बेडी में बंद कर फँसा दिये गये।

फलस्वरूप दोनों को हमेशा साथ ही रहना पडे ऐसी हालत उपस्थित हुई।

www.yugpradhan.com

पहले दिन दोपहर के बारह बजे। तब चोर प्रभव के लिये बंदीगृह की ओर से भोजन आ पहुँचा। लेकिन सेठजी को अपवाद स्वरूप में घर से भोजन लाने की मुक्ति दी गयी थी। अतः सेठानी स्वयं दुःखित हृदय से सेठ के लिये भोजन ले आयी।

विविध प्रकार की भोजन की खाद्य चीजों देखकर प्रभव हैरान हो गया। उसका दिल भी उन चीजों को खाने को तडप उठा। धीरे से उसने धनपाल सेठ से कहा कि "मुझे आप थोड़ा अपने भोजन में से खाने देंगें क्या?"

इतना सुनते ही, सेठ–सेठानी दोनों आगबबूले हो गये। कई कटु अपशब्दों से उसे वहीं दुत्कारा। प्रभव मन मसोस कर चुप रहा।

शाम चार बजे। सेठजी को शौचकर्म की इच्छा हुई। सेठने प्रभव से कहा–"तुम्हारा और मेरा एक–एक पाँव लोहे की बेडी में

फँसा हैं। अतः तुम उठो, और मेरे साथ चलो। मुझे पाखाना जाना है।"

क्रुद्ध प्रभवने सेठजी की प्रार्थना का साफ साफ इन्कार कर दिया। सेठजी को पाखाने की इच्छा तीव्र बनी। आखिर विवश हो, दूसरे दिन से हर रोज भोजन में से मीठी मसालेदार चीजें देने का वचन दिया। तभी प्रभव उनके साथ जाने तत्पर हुआ।

दूसरे दिन बारह बजे सेठानी नये प्रकार की स्वादिष्ट चीजें भोजन के लिये ले आयी। सेठ ज्यों ही भोजन शुरू करने लगे, त्यों ही प्रभवने कहा - "सेठजी, वचन अनुसार मुझे भी थोडा दें।"

प्रभव की ओर तुच्छकार से देखते हुए, विवश हो सेठने प्रभव को दो लड्डु दे दिये। प्रभव जल्द लड्डु खाने लगा।

www.yugpradhan.com

सेठानी यह देख न सकी। वह आगबबूला हो गयी। आवेश में आग उगलते हुए उसने सेठसे कहा-"हमारे लाडले के हत्यारे को आपने लड्डु खाने दिये ? यह कैसी विचित्र करुणा है ?"

सेठने सेठानी से सारी बात बतायी। सुनकर बड़ी मुश्किल से सेठानी शान्त हो पायी।

(८७) धर्म ही सर्वोपरि है !

(जबरदस्ती से किये गये धर्मान्तर को किसी भी हालत में निभाया नहीं जा सकता। 'सेक्यूलर स्टेट' बिनसांप्रदायिक राज्य की ओट लेकर, ईसाइयों द्वारा प्रतिवर्ष लाखों लोगों का धर्मपरिवर्तन कराया जा रहा है। बहुमत पर आधारित इस राष्ट्रान्तर में ही यह धर्मपरिवर्तन चरितार्थ होगा, यह निःशंक है।)

बंगला देश का वह राजा था। प्रतिदिन नयी लड़ाइयाँ खेलता और नयी जमीन कब्जे करता रहता। उसकी भूमिलालसा अमर्याद थी।

एक दिन दूर देश के राजा पर उसने धावा बोल दिया। नगर के किले को घेर कर अड गया।

कमनसीबी यह हुई कि उस किले का मालिक राजा यकायक गुजर गया। उसको राजा की एक ही राजकुमारी थी। शरीर से वह अबला थी, लेकिन पिता की तालीम के कारण कई मर्दों को परास्त करने की क्षमता–सामर्थ्य रखती थी।

पिता का निधन होते ही, सारी जिम्मेवारी राजकुमारीने अपने हाथों उठा ली। सैन्यसज्ज होकर उसने किले का मुख्य द्वार खुलवा दिया।

www.yugpradhan.com

सैन्य के नेतृत्व में एक अबला को देख, बंगाली राजा असमंजसमें पड़ गया। युद्ध के बजाय शान्तिका संदेश भिजवाकर राजकुमारी के साथ भेंट का आयोजन किया गया। बंगाली राजाने अबलाके साथ युद्ध करना नामंजूर किया। आखिर में उसी राजकुमारी के साथ उसने शादी कर ली और उसके छोटे भाई को वहाँ की गद्दी पर बैठाया।

दोनों बंगला राज्य में वापस लौटे। नवदंपती के प्रारंभिक वर्ष रंगराग में गुजरे। लेकिन एक दिन राजकुमारी को जान पड़ा कि अपने स्वामी, किसी मुस्लिम रखैल के साथ फँसे हुए हैं।

रानी को पारावार दुःख हुआ।

बात बढ़ती चली। मुस्लिम रखैल के मोह–पाश में फँसे राजासे एक दिन रानीने कहा–"मुझ पर आपका अथाग प्रेम है, यह मैं तभी मान लूँ कि आप सारी प्रजाको इस्लाम धर्म की दीक्षा दें।"

मोहाँध राजाने रानी के आह्वानका स्वीकार कर देशभर में ढँढेरा पिटवा दिया ।

यह राजाज्ञा सुनते ही, तमाम प्रजाजन सिहर उठे । व्याकुलता के मारे सब इकट्ठे होकर सोच विचार करने लगे । आखिर में तय किया गया कि "ऐसी राजाज्ञा को स्थगित करने के लिये राजा के साथ मंत्रणा के लिये प्रतिनिधिमंडल भेजा जाय ।"

फिर भी राजा टस से मस न हुआ । आखिर हैरान हो, प्रतिनिधि लोग रानी के पास गये । नयी रानीने सारी बातें उन लोगों से समझ लीं; क्योंकि राजाके अडियल स्वभाव से वह परिचित थी ही ।

प्रजाजनों के प्रतिनिधियों से उसने कहा—"पति की आज्ञाका पालन करना, यह पत्नी का प्रथम कर्तव्य है, । लेकिन इस पत्नी धर्म का जिसने प्रथम पाठ सिखाया, उस धर्म की रक्षा करना यह मेरा सर्वोच्च कर्तव्य है । आप सब निश्चिंत बनें । इस समस्या को मैं हल करूँगी ।"

प्रतिनिधि बिदा हुए । शाम होते ही नयी रानीने अपने देवर के पास से दो सौ तालीमबाज शस्त्रसज्ज सैनिक प्राप्त कर लिये । बाद में कमर में कटारी छिपाकर, राजा के पास पहुँची । राजाको बहुत समझाया; लेकिन सारी मेहनत बरबाद हुई ।

और....पलमात्र में रानी ने चंडिका स्वरूप धारण कर लिया ।

कमर में से कटारी खींच निकाली और देखते ही देखते राजाके पेट में घूसेड दी ।

दो सौ वीरसैनिकों से धीरे राजमहल को अपने अधिकार में कर लिया । तुरंत ही रानी का राज्याभिषेक कराया गया ।

www.yugpradhan.com

और प्रजाजन पर फडकती बिजली की तरह झपटी हुई आपत्तिके काले मंडराते बादल देखते ही देखते बिखर गये ।

(८८) अतृप्ति की गर्ता

देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा आदिनाथ के जीवन की यह घटना है ।

अपने संसारी जीवन में ही उन्होंने अपने सभी पुत्रों के बीच राज्य के प्रदेशों का बँटवारा कर दिया । उसके बाद, मनसा, वचसा, कर्मणा संसारत्याग कर श्रमण भगवान आदिनाथ बने ।

अब उन्हें संसार की जिम्मेवारियाँ उठानी न थीं और न ही स्वजनों की चिंता करनी थी ।

www.yugpradhan.com

निर्ग्रन्थ जीवन की साधना के उच्च शिखर पर बैठकर, सर्व कर्मों का क्षय करने के लिये वे एकाग्र बने हुए थे ।

उसी समय एक घटना घटी। अपने आश्रित हो, बचपन से लेकर बड़े किये पुत्रवत् लालन–पालन कर संजाये हुए नमी और विनमी नामक दो कुमार पुत्रों के बीच राज्य के बँटवारे के समय गैरहाजिर होने के कारण उन्हें राज्य का कोई हिस्सा दिया गया न था। जब वे दोनों राकुमार स्वदेश आये तब परमात्मा के पुत्रों ने अपने हिस्से में से थोडा हिस्सा उन्हें देने के लिये तत्परता दिखायी लेकिन स्वमानी युवकों ने, उसे लेने से इन्कार कर दिया ।

वे श्रमण भगवान के हाथों से ही राज्य प्राप्त करना चाहते थे । अतः वे कृपालु के पास गये ।

मौन धारण कर साधक बने श्रमण भगवान आदिनाथ की सेवा करने लगे । इस प्रकार कुछ समय गुजर गया ।

एक रोज श्रमणार्य ने उनकी ओर नजर उठायी। दोनों कुमार उनके चरणों में झुक पड़े। उन्होंने उन्हें अपनी परिस्थिति का खयाल दिया और कहा–' हमें राज्य का हिस्सा दें ! आप के हाथों ही दें।"

उनकी बात सुन, श्रमणार्य ने एक बोधकथा शुरू की।

"एक गाँव में एक आदमी को नींद में सपना दीख पड़ा। सपने में उसे भारी प्यास लगी। उस प्यास को बुझाने के लिये वह गंगा–यमुना का पानी पी गया। बाद में छोटी–बडी अन्य नदियों का पानी पीता रहा। फिर भी उस की प्यास बूझ न पायी। बाद में आसपास के घरों में घुसा और तमाम मटकियों–घडों का पानी पी गया; लेकिन प्यास जैसी की वैसी बनी रही।

सोचते सोचते उसकी नजर तालाबों के भीगे मिट्टी के टुकडों पर लगी। हर्षनाद करता हुआ सपने में वह मन ही मन बड़बडाया–

"बस, बस, इन भीगे टुकडों को चूसा जाय तो प्यास जरूर बूझ जाएगी।

"कुमार ! अब मैं तुम लोगों से पूछता हूँ कि क्या उन टुकडों को चूसनेसे प्यास कभी बूझ सकती है क्या ?"

"नहीं भगवन्, कभी नहीं। गंगा–यमुना के पानी पीकर भी जो प्यास बूझ न पायी, वह कीचड के टुकडे चूसने से क्या बूझेगी। भगवन्, यह तो सचमुच मूर्खतापूर्ण खयाल है।" नमी और विनमी ने एक साथ कहा। "तो तुम्हारे पूर्वजन्मों में तुम लोग चक्रवर्ती के, इन्द्रों के और बड़े बड़े धनेश्वरों के जीवनों को पुण्यबल से प्राप्त कर पाये हों। उर्वशी, अप्सरा आदि के साथ स्पर्शसुख भी प्राप्त कर चुके हों और उत्तमोत्तम स्वादिष्ट–मिष्टान्नों का आस्वाद किया है। फिर भी तुम्हारी अतृप्त वासनाएँ शान्त नहीं हो पायीं, हद से ज्यादा बढ़ गयी हैं।"

www.yogpradhan.com

तपेतपाये लोहे पर पानी की बूँदें ! वे तप्त लोहे को शान्त–ठंडा कैसे कर पाये ? ' चम् ' करती खुद ही नामशेष हो जातीं ।

" कुमार लोग ! अब इस मर्त्यलोक को मामूली जमीन–सत्ता–सिंहासन पर बैठने से क्या तुम्हारी वह अतृप्त वासना शान्त होगी ?" करुणासभर आर्द्र स्वर में श्रमणार्य ने कहा ।

सुज्ञ कुमार इशारे में समझ गये । परमात्मा के परम भक्त बनकर, आत्मकल्याण कर पाये ।

(८९) जहाँ सत्त्वबल, वहाँ सर्वस्व !

(सत्त्व की इस दुनिया में भारी किंमत है । लक्ष्मी–सरस्वती से अछूते भी अपने सत्त्वबल पर सिद्धियों की परंपरा खडी कर लेते हैं । हमें वीर विक्रम की यह कथा इस रहस्य का बोध करायेगी ।)

वीर विक्रम हमेशां रात के समय गुप्त वेश में नगरचर्या कर, प्रजा के सुख–दुःखों से परिचित रहते थे । एक रोज किसी झोंपडे की ओट में जा खड़े हुए । वहाँ झोंपडे में बैठी स्त्री अपने पतिको उलाहना दे रही थी । राजाने सुना–" मैं छ छ बच्चों की माँ हूँ । बच्चों के लिये पूरा दूध भी मिल नहीं पाता । राजा विक्रम सचमुच परदुःख-भंजक हो तो, उसे हमारा दुःख दूर करना ही चाहिए । तुम पुरुष लोग हमेशां पुरुषों की प्रशंसामें ही डूबे रहते हो और सही परिस्थिति की जानकारी न दो, यह ठीक नहीं है । "

पुरुषने अपनी पत्नी से कहा–' तू ऐसा मत कह । राजा विक्रम तो सचमुच परदुःखभंजक हैं । लेकिन वे कर ही क्या सकते हैं ? हमारी दरिद्रता का कारण हमारे घरमें ही रहा हो जब ? तुम तो यह

जानती ही हो कि जब से हमारे घर दरिद्रता की प्रतीकरूप मूर्ति यहाँ आयी है, तब से हमारा एक भी दिन सुखमें नहीं गुजरा। इसमें विक्रमदेव क्या कर सकते हैं!"

पुरुष के प्रत्येक शब्द को विक्रम ने सुना। दूसरे दिन सुबह होते ही, विक्रमराजा के सिपाही उस गरीब के झोंपडे के पास आ पहूँचे। उन्होंने कहा कि "राजा विक्रमदेव इसी समय आपको बुलाते हैं।"

वह गरीब आदमी तुरंत समझ गया कि, "पति–पत्नी के बीच हुई बातको किसी गुप्तचर ने सुनकर राजा से कही होगी। अब राजा पत्नी की कडुई बातों की सख्त सजा देकर ही रहेंगे।"

लेकिन जब उसे राजा विक्रमदेव के पास ले जा खडा किया तो स्थिति कुछ और ही थी। राजाने दरिद्रनारायण की मूर्ति, अपने कोषाध्यक्ष को दे देने के लिये आज्ञा दी। उस गरीबने राजा से कहा– "राजन्, आप उस प्रतिमा को न लें, लोगों के दुःखभंजक–मेरे मालिक, उसके अभिशाप से निर्धन हो दर दर ठोकरें खाएगा।"

लेकिन राजाने उसकी परवाह की नहीं। प्रतिमा राजाके खजाने में रखी गयी।

उसी रात सोते वीर विक्रमने लक्ष्मी के दर्शन किये। लक्ष्मीने दर्शन देकर, विक्रम से कहा–"हे राजा विक्रम! मैं अब तुम्हारे महल से विदा होती हूँ। क्योंकि तूमने दरिद्रनारायण की स्थापना की है।"

विक्रमने कहा–'देवीजी, भले, जैसी आपकी मर्जी! दूसरी रात सरस्वती आयीं। उन्होंने भी विदा की बात पेश की। विक्रमने उन्हें भी वही उत्तर दिया। "जैसी आपकी मर्जी।"

तीसरी रात आयी। कीर्तिदेवी पधारीं। उन्होंने भी वही बात पेश की। उन्होंने भी कहा—" विक्रम, मैं जा रही हूँ। जहाँ दरिद्र-नारायण वहाँ मैं कैसे ?"

बादमें सत्त्वने आकर वैसा कहा। उसी समय विक्रमने म्यान से तलवार खींचकर सत्त्वसे कहा—" सबूर ! खडे रहो, तुम कभी जा नहीं सकते। तुम्हें अगर जाना है तो मेरे साथ मुकाबला कर मुझे पराजित करके ही जा सकते हो। और कोई उपाय नहीं है। लक्ष्मी भले ही गयी, सरस्वती बिदा हुई। कीर्ति ने भी साथ छोड दिया। उसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। उनके चले जाने पर भी मेरा सत्त्व मेरे पास सुरक्षित रहा तो मेरी विजय निश्चित है। अतः तू चला जाय यह मुझे मंजूर नहीं। मेरे साथ फैसला करके ही तुम जा सकते हो" इस प्रकार हाथमें खूली तलवार ले, ललकारते विक्रम को देख कर सत्त्वपुरुष सोचने लगा—" जिस समय मैं बिदा हो रहा हूँ, उस समय भी इस मनुष्य में कैसी अनूठी वीरता विद्यमान है। लक्ष्मी, सरस्वती, कीर्ति रहित मनुष्य में भी 'अभय' बना रहे तो वह इस दुनिया का खुशनसीब आदमी समझा जाय। यह सोच कर सत्त्वपुरुष उसीमें बना रहा। फलस्वरूप लक्ष्मी, सरस्वती, कीर्ति सभी वापस लौट आये।

www.yugpradhan.com

(९०) आर्य : यानी साधुत्व का प्रेमी !

रामचंद्रजी के पूर्वजो की यह कथा है। उनका नाम वज्रबाहु था। वयस्क होने पर मातापिता ने मनोरमा नामक सुंदर राजकुमारी के साथ उसकी शादी करवा दी। ससुराल का मीठा आतिथ्य पाकर वज्र-बाहु, मनोरमा को साथ ले, अपने राज्य की ओर चल पडे। उदयसुंदर नामक साला, अपने बहनोई को बिदा देने के लिये साथ चला। रात में

किसी गुफा में निवास कर सुबह आगे बढ़े। थोडे समय के बाद, एक छोटी-सी पहाडी के पास से रथ गुजरा ! उस पहाडी पर एक मुनिवर ध्यानस्थ खड़े थे। उनके दर्शन करते ही कुमार वज्रबाहु का मस्तक झुक गया।

"ओहो, कैसी अनूठी मस्ती ! बिना पैसे कैसा सुख ? बिना पत्नी कैसा अनहद आनंद ? बिना घरबार कैसी तरोताजगी ?"

"जहाँ हम जैसे संसारियों ने स्वर्ग देखा वहाँ आसक्तियों की वैतरणी में उसने नर्कागार के दर्शन किये और उसे तुरंत ही छोडकर निकल पड़े और वह असिधारा जैसी संयम की कठोर साधना की राह पर ! मुझ-से अभागी को क्या जाने कौन से पूर्वजन्म के या पूर्वजों के पुण्यबल के कारण ऐसे निर्जन वनप्रदेश में मुनिवर के दर्शन हुए।"

www.yugpradhan.com

कुमार वज्रबाहु ने रथ रुकवाया। उनके मुँह पर झलकती वैराग्य की भावनाओं को देखकर साले उदयसुंदर ने मजाक में कहा- "कहियेजी, वैरागी बनने के लिये जी तड़प रहा है क्या ? ऐसी इच्छा हो तो मुझे भी सूचित करें। अकेले उस लाभ को न पाये।"

पहाडी की राह पर कदम रखते हुए, उदयसुंदर की ओर देखकर वज्रबाहु ने कहा-"महाशय, आपने बताया वैसे वैरागी हो जाने की तीव्र इच्छा तो अवश्य है। इस महापुरुष के मुख पर जो अनुपम मस्ती दीख पड़ती है, यह हम अभागों में कहाँ नजर आये। कैसा मस्त जीवन है इनका !" पहाड़ी चढ़ते चढ़ते कुमार की चाल भी बदल गयी। उदयसुंदर एक ही पल में वस्तुस्थिति की गंभीरता समझ गया।

गंभीर स्वर में वज्रबाहु से उसने कहा-"लेकिन आपने मेरी बहन मनोरमा के बारे में कुछ सोचा क्या ?"

पहाडी के मध्य में खडे होकर वज्रबाहु ने पूछा—"उदयसुंदर ! तुम्हारी बहन कुलीन है या अकुलीन ? मुझे इसका उत्तर दें।"

"उस में शंका ही कौन—सी है ?" उदयसुंदरने कहा।

"यदि कुलीन है तो, पति का संपूर्ण रूप में सहचरी बने रहना उसका कर्तव्य है या नहीं ? और अकुलीन हो तो, मुझे ऐसी पत्नी की कोई जरूरत नहीं। आज ही यहाँ से उसे अपने घर वापस ले जा सकते हो।"

यह सुनते ही उदयसुंदर अवाक् रह गये।

मनोरमाने भी सारी बातें सुनीं। अभी तो जिस के अन्तर में रंगराग की तीव्र लालसा भरी है, उसके दिल में 'कुलीन या अकुलीन' के प्रश्न ने खलबली पैदा कर दी। जीवन के इस मांगल्य को स्वीकृत कर लेने का दृढ़ संकल्प उसने किया।

सभी मुनिजी के पास पहुँचे। उनके पास से देशना सुनी। विरागमय बने वज्रबाहु, मनोरमा एवं उदयसुंदर ने दीक्षा ली। ये समाचार घर पहुँचे। अभिभावक वहाँ आ पहुँचे। सभी ने भी दीक्षा को अंगीकार किया। ऐसे थे रामचंद्रजी के पूर्वजों के नर रत्न !.... धन्य है ऐसे साधुरत्नों को... !

(९१) आत्मसाक्षात्कार कैसे हो ?

(गगरी—सी छोटी यह कहानी है; लेकिन सागर—सा बोध इसमें भरा पड़ा हैं। जगत्दर्शन, जगत्पतिदर्शन और आखिर आत्मदर्शन के विकासक्रम को इस कथा में सुंदर ढंग से गुम्फित किया गया है।)

एक पटेल थे। मनजीभाई उनका नाम था। साधु–संतों के वे भारी उपासक थे। गाँवमें पधारे ऐसे कोई साधु–संत नहीं होंगे जिनकी बैठक उनके घर न हो।

एक रोज स्वामी अवधूत उनके वहाँ पधारें। पंद्रह दिन तक मनजीभाई ने अपने घरमें उनके रखे। और अविरत सत्संग किया।

बिदा का समय आया! बिछडने पर मनजीभाई ने स्वामीजी से प्रश्न किया–" भगवन्! आत्मसाक्षात्कार कैसे हो?"

स्वामीजीने कहा–" पटेल, ऐसा गंभीर प्रश्न तुमने आज बिदाके समय पूछा? ठीक है लेकिन उसका जवाब देनेके लिये तो मुझे कई दिन तुम्हारे यहाँ ठहरना होगा।"

तो, स्वामी! उसमें क्या हर्ज है? पुनः आप मेरे घर आएँ! मुझे तो बड़ा मज़ा आयेगा।

www.yugpradhan.com

स्वामीजी वापस लौट आये। पटेल के घरमें एक भैंस थी। आँगनमें ही उसे बाँधी रखी जाती थी।

दूसरे दिन सुबह हुई। आत्मसाक्षात्कार–विधि का आरंभ करते हुए स्वामीजीने पटेल से कहा–" पटेल, इस भैंस का हूबहू चित्र मुझे बना दो। भले ही पंद्रह दिन हो। लेकिन चित्र तो हूबहू भैंस का ही होना जरूरी है।"

लगातार पंद्रह दिनों तक, पटेल भैंस की ओर देखते रहें और चित्र के लिये प्रयत्न करते रहे लेकिन सारा प्रयत्न व्यर्थ। क्योंकि भैंस को देखते और उनका चित्रण करने के प्रयत्न में, उसके मन से कुटुंब–परिवार का लगाव बना रहा था।

लेकिन पटेल हाथ धोकर पीछे लगा रहा। अतः दूसरे पंद्रह दिनोंमें मनकी इधर–उधर की दौडभाग रूक जानेके कारण चित्र पूरा हो पाया।

स्वामीजीने उस चित्र देखकर कहा—" पटेल, अभी चित्र पूरा तैयार नहीं जँचता । फिर भैंसका ध्यान देकर निरीक्षण करें । "

और पंद्रह दिन गुजर गये । परिणामरूप में पटेल भैंस के साथ एकरूप बन गये ।

एकाग्र बने पटेल को देख स्वामीजीने कहा—" मनजीभाई । अभी थोडी कमी रह पायी है । पुनः और पंद्रह दिन इसका ध्यान करें । "

और....अब पटेल की एकाग्रता ऊँची उडान पर पहूँची । उसकी नजरों में सारा विश्व भैंसस्वरूप बन गया । उसे दुनिया के पदार्थमात्र में—विविधस्वरूप में भैंस दीख पड़ती थी । अब बात में प्रगति हुई थी । पटेल भैंसमय बन गये । ठीक पन्द्रह दिन गुजरे । अतः बंद द्वार खोल जैसे ही स्वामीजी अंदर प्रवेश करने लगे, वहाँ मनजीभाई दो हाथ और दो पैर फैलाकर स्वामीजी की ओर दौडे । भैंस की तरह सिर हिलाने लगे और स्वामीजी के शरीर को बड़ी चावसे सूँघने लगे ।

स्वामीजी को विश्वास हुआ कि अब मनजीभाई संपूर्णतया भैंसमय बन गये हैं ।

स्वामी को पूरा संतोष हुआ । थोडा प्रयत्न कर, मनजीभाई को ध्यानमें से पुनः बाहर निकाले गये । तभी उन्हें पता चला कि—" वे स्वयं मनजीभाई है । " अवधूतने कहा—" पटेल, आत्मसाक्षात्कार की तीन अवस्थाओं का तुमने अनुभव किया । प्रथम अवस्था में नश्वर जगत से संबंध छोडना पड़ता है । नश्वर की नश्वरता का जब साक्षात्कार हो, तभी वह भुलाया जा सकता है । उसके बाद ईश्वरमय हो, ईश्वरसाक्षात्कार करना पड़े ।

संसार के विस्मरण के बाद ही, ईश्वर के साथ तादात्म्य सुलभ हो पाता है और उसके बाद उस ईश्वर—साक्षात्कार के अरीसे में हमारी

www.yugpradhan.com

आत्मा के दर्शन हो, तभी आत्म-साक्षात्कार हुआ ऐसा माना जाता है।

(९२) अपात्र, धर्मदर्शन नहीं कर पाता !

(आज ऐसा विवाद चल पडा है कि, सभी को सब हर स्थान पर दिया करें। असमानता न होनी चाहिए। ठीक है, भौतिक दुनिया के तत्त्व को वे भोगवादी बुद्धिजीवी जानें-समझें; लेकिन धर्मक्षेत्र में तो यह न्यायतत्त्व अत्यंत नुकसानकर्ता है। यहाँ तो 'पात्रता' को ही प्राधान्य दिया है।

कौन ऐसी सच्ची माँ होगी कि जो संग्रहणी (विषूचिका) की यातना से दुःखी अपने लाडले को दूध पीने की तीव्र लालसा को पूरी करे? केसरयुक्त दूध पीने को दे? दूध पीने की भावना गौण है; दूध पीने की पात्रता ही मुख्य है।)

www.yogpradhan.com

एक धर्मपुरुष थे। मन्त्र-तन्त्र के भी वे अच्छे ज्ञाता थे। एक रोज तीन आदमी उनके पास आये। धर्म की थोडी बहुत चर्चा करने के बाद, उन्होंने उस धर्मगुरु से कहा-"हमने सुना है कि, आप के पास मुर्दों को खड़े कर दे, ऐसा मंत्र है। तो हमें वह मन्त्र दें।"

"हमें देखना है, कि मुर्दा खड़ा कैसे होता है?"

यह बात सुनते ही, ठहाका मारकर हँसते हुए धर्मगुरु ने कहा-"अरे भाइओं! मुर्दों के जिंदा करने के बजाय मैं तुम्हें ही 'अमर' बन जाने का मंत्र सिखला दूँ तो क्या हर्ज है?"

"नहीं, महाराज! हमें उसकी आवश्यकता नहीं है। हमें तो मुर्दे खड़े करने का मंत्र दें।"

धर्मगुरु ने देखा कि, इन मनुष्यों में मंत्र धारण करने की क्षमता—'पात्रता' नहीं है। उन्हें तो मात्र तमाशा करना है, अतः उन्हें इस हठाग्रह को छोड़ देने को खूब समझाया। फिर भी वे अपनी बात पर अडे रहे तो उद्वेग के साथ धर्मगुरु ने उन्हें मंत्र दिया।

तीनों ने मन्त्र को ठीक याद कर लिया। और सीधे दौड़े। मुर्दे खोज ने निकले। वे आसपास के गाँवों को छानने लगे। लेकिन उस दिन कोई मरा नहीं पाया। इस प्रकार न कोई मुर्दा हाथ लगता था न ही मन्त्र को लंबे समय तक धारण किया जा सकता था। भारी अकुलाहट थी। वह बढ़ती गयी। शाम हुई। भूखे, प्यासे, हारे, थके वे लाख कोशिश करने पर भी मुर्दा न पा सके।

इतने में एक गाँव के किनारे अस्थिपंजर देखा। गाँव के लोगों के साथ पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि, थोडे ही दिनों के पहले, ग्रामजनों ने इकट्ठे होकर मानवभक्षी सिंह को मारा था; उसी का वह अस्थिपंजर था।

यह सुन तीनों में मतभेद शुरू हुआ। एक बोला "सिंह को जिंदा करने में खतरा भारी है।" दूसरे दोने कहा—"ऐसे खतरे की परवाह नहीं करनी चाहिए। बिना साहस कभी किसी को सफलता प्राप्त हुई है क्या?"

आखिर दो विरुद्ध एक मतानुसार मन्त्रोच्चार करने का निर्णय किया गया। तीनों ने मिलकर मन्त्रपाठ शुरू किया गया। एक बार, दूसरी बार और तीसरी बार जैसे ही मन्त्रोच्चार किया, कि अस्थिपंजर से यकायक सिंह जिंदा हो ऊठा।

तीनो गभराये। ग्रामजन तो नौ दो ग्यारह हो गये। सिंह भी पूरा भूखा था। उसे तो भोजन ही चाहिये। सामने ही तीनों आदमी

www.yogpradhan.com

भय के मारे काँप रहे थे। सिंह ने भारी गर्जना की। उसकी गर्जना सुनकर तीनों चीखकर बेहोश हो गये। एक ही छलांग में सिंह उनके पास आया और देखते ही देखते तीनों को चीर–फाड खत्म कर दिये।

अभागे! मन्त्रों को तमाशा का साधन बनाने चले, तो मोत से जा टकराये।

(९३) संत नामदेव!

(किसीके आग्रह से भी की–करायी जाती धर्मक्रिया कभी कैसा अनूठा फायदा पहुँचाती है, उसे इस कथा से आप समझ पायेंगे। अतएव आध्यात्मिक विकास की प्रारंभिक अवस्था में पूरी समझके साथ या मन मनाने के लिये भी की जानेवाली धर्मक्रियाओं को भी संमान्य की गयी हैं।)

www.yogpradhan.com

उसका नाम था नामदेव। कुख्यात डाकू था। उसका नाम सुनते ही रोते बच्चे भयके मारे चुप हो जाते।

ऐसे खतरनाक डाकू की माँ फिर भी बडी कल्याणकारिणी थी। उसने हररोज प्रभुदर्शन करनेकी और दस मिनट एकचित्त से ध्यान करने की प्रतिज्ञा बेटे के पास करायी थी। अतः जभी भी वह किसी गाँव पर धावा बोलने जाता तो, उससे पूर्व नामदेव, दर्शन और ध्यान की प्रतिज्ञा पूरी कर लेता।

इस डाकूने क्या पता, कई लोगों के सर उतार लिये थे। क्या जाने, कितना धन लूटा होगा। क्या जाने उसके हाथों, किन लोगोंने कितने स्वजन गँवाये होंगे।

एक रोज की बात है। मंदिर में छप्पन भोगों का महोत्सव जमा था। नित्यक्रमानुसार नामदेव, सुबह मंदिर जाकर इश्वर–ध्यान में बैठा।

लेकिन आज मन लगता न था। क्योंकि मंदिर में अपने छोटे बच्चे के साथ कोई माँ आयी थी। छप्पन भोगों के बड़े बड़े थाल देखकर बच्चेने शोरगुल मचा दिया। माँ से कहने लगा—" मुझे मिठाई दो।' माँ ने कहा—' भगवान को अर्पण न किया जाय, तब तक मिठाई खायी नहीं जाती।' लेकिन अध्यात्म की इस बात को बच्चे की बुद्धिकी स्वीकृति न थी। उसने जारशोर से रोना शुरू कर दिया।

इसी कारण नामदेव का ध्यान एकाग्र होता न था। अब नामदेव अकुलाया। शुद्ध ध्यान बिना किये, वह धंधा करना नहीं चाहता।

उसने, उस स्त्री से कहा—" अरे बहन, तुम अपने रोते बच्चे को साथ लेकर बाहर जाओ। मुझे ध्यान में तकलीफ होती हैं। बाहर किसी हलवाई की दुकान से मिठाई खरीदकर खिला देने से वह रोना बंद कर देगा।"

www.yugpradhan.com

पराये आदमी के ये वाक्य सुन वह स्त्री गंभीर हो गयी। थोडी ही देर में उसने कहा—" भाई मेरे, एक दिन ऐसा था कि मेरा बच्चा भरपेट खा ले उतनी मिठाई थी। लेकिन अब वे दिन नहीं रहे। भाग्य पूरा हुआ। जब से नामदेव नामक डाकू ने इस लडके के बाप को मार डाला है, तब से दो पैसों की मिठाई खाने के अरमान अधूरे रह गये हैं।" स्त्री का अन्तिम वाक्य सुनते ही नामदेव पर वज्राघात हुआ। उसका सर चकराने लगा।

अपने डाकू जीवन में किये तमाम अधम कृत्य खून, मांस, आहें, आँसू, चीखें, पुकारें आदि चित्रपट की तरह उसकी आँखों के सामने मंडराने लगे। "हाय रे मैंने कितनें पाप किये होंगे? कितनी युवतियाँ मेरे कारण विधवा हुई होंगी? कितनी माँओं को अपने लाडलों से अलग की होगी? अनेक जीवों की हिंसा करनेवाले को इस दुनिया

पर जीने का कोई अधिकार नहीं है।" नामदेव मन ही मन सोचने लगा।

पास में पड़ी तलवार उस स्त्री के हाथों में थामते हुए कहा— "बहन, वह खूनी और हत्यारा नामदेव मैं खुद हूँ। लो चलाओ तलवार इस मेरी गरदन पर। कई लोगों के जीवन को तहस-नहस करनेवाला यह नामदेव दुनिया में जिंदा रहना नहीं चाहता।"

गंभीर चेहरे से स्त्री ने कहा—"नहीं, यह मेरे लिये असंभव है। एक बच्चा अपने पिता को गँवाकर कैसी अनाथता-निराधारता महसूस करता है, यह मैं रातदिन अपने लाडले के मुँह पर देखती रही हूँ। अब तुम्हारे लाडले को भी अनाथ बनाने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है।" थोडा रूककर आगे बोली—"मैं तो ईश्वर से प्रार्थना करती हूं कि मेरे पति के घातक का भी कल्याण करें। अभागा अनबूझ में पाप कर बैठा है।" स्त्री का प्रत्येक शब्द नामदेव के लिये पीठ पर के हंटर की चोटें बन गये थे। उसी समय नामदेव अपने इष्टदेव के पास गया। उनके चरणों में तलवार रख दी। ईश्वर के चरणों में मस्तक नवाँकर फूटफूट कर वह रोने लगा और नामदेव.... संत नामदेव बन गया!

www.yugpradhan.com

(९४) उजमशी लम्बा और वीरजी काना।

(लगभग ५० साल पहले घटी यह सत्य घटना है। बम्बई के बेताज बादशाह उजमशीभाई और वीरजीभाई। जन्म के रूप में जैन थे, बाकी धर्म के रूप में शेष कुछ नहीं। फिर भी जैन शासन की सेवा करने का एक प्रसंग-मौका घर पर ही उपस्थित हुआ, तब इन दो जैनों ने कैसा अनूठा इतिहास रचा, इसका बयान यह छोटी-सी कथा करेगी)

आज रात बम्बई के जैन संघ समस्त के अग्रेसर एकत्र हुए थे। बात ऐसी थी कि कोई पारसी मित्र 'नेम–राजुल' का नाटक तैयार कर रहे थे। कोई भी आदमी जैन धर्म के धार्मिक पात्र के रूप में अभिनय कर नहीं सकता। यह उन महापुरुषों का अपमान ही माना जायेगा। अतः अनेक प्रार्थनाएँ कर इस नाट्य प्रयोग को स्थगित करने के लिये जैन संघ ने अनेक प्रयत्न किये। लेकिन वे पारसी मित्र टस से मस नहीं हुए। अब किया क्या जाय? उसकी मंत्रणा करने के निमित्त आज संघ एकत्र हुआ था।

जहाँ गाँव होता है, वहाँ गंदकी के ढेर भी साथ ही जुडे रहते हैं। उस नियमानुसार वहाँ उपस्थित संघ सदस्यों में कई निर्मल्य आये थे। उन्होंने तो इस समस्या को सामान्य उदार दृष्टिकोण से हल करने का प्रस्ताव रखा। लेकिन वहाँ उपस्थित युवक वर्ग उसे कैसे मान्य करता? उन्होंने कहा–" निर्मल्यों का यह धर्म नहीं। धर्म पर होते हमलों का मुकाबला हमें करना ही चाहिए। ढीलीढाली बातों से काम लिया जाय तो भावि पीढ़ियों को नुकसान उठाना पड़े।"

आखिर तय किया गया कि इस कार्य के लिये दंड नीति का उपयोग किया जाय और उसके लिये संघ का एक प्रतिनिधि मंडल, उजमशीभाई और वीरजीभाई से जाकर मिले।

दूसरे ही दिन इस निर्णय का अमल किया गया। जैनसंघ के अग्रणियों ने अपने घर आये देख बम्बई के ये 'किंग मेकर' सानंदाश्चर्य महसूस करने लगे। स्वागत सत्कार के बाद पधारने का कारण पूछने पर प्रतिनिधियों ने सारी परिस्थिति उन्हें समझायी और अन्त में प्रार्थना की कि–" हमें आप के साथ–सहकार की आवश्यकता है।

www.yogpradhan.com

आप इसकी जिम्मेवारी उठाये और जो भी खर्च होगा, उसे हम निभायेंगे।"

गद्‌गद् आवाज से उजसशीभाई ने कहा—

"अरे भाईसाहब! यह तो सद्‌भाग्य होगा। जाएँ, श्री संघ इसकी बिलकुल चिंता न करें। हम उसे सम्हाल लेंगे।"

दूसरे दिन अपने पाँच सौ आदमियों के द्वारा नाटक के पहले खेलके सारे टिकट खरीदवा लिये। सारा थियेटर उन पाँच सौ आदमियों से खचाखच भर गया। सभी तैयार होकर आये थे। पहले अंक का पर्दा हटा ही था कि सारे थियेटर में चारों ओर से एकसाथ शोरगूल मच गया। भारी तूफान हुआ। थियेटर में भी भारी तोड़फोड की गयी।

www.yugpradhan.com

उसी समय उजमशी और वीरजी वहाँ दो दो घोडेजोडी बग्गियों में आ पहुँचे। नीचे उतरकर उस पारसी नाट्यकार को पकड अच्छी तरह उसकी पिटाई की। पारसीने क्षमाप्रार्थना की, तभी उसे छोडा गया।

लम्बे उजमशीभाई और काने वीरजीभाई, अपनी बग्गियों में बैठकर वापस लौट चले।

जिस धर्म में जन्म लिया है, उस धर्म उपर आयी आपत्ति के निवारण के सद्‌भाग्य का अवसर मिला, उसका भारी आनंद उनके मुँह पर झलकता था।

संघ के अग्रणियोंने उनका सन्मान करना चाहा। तो दोनों ने तुरंत इन्कार कर कहा कि—"यह हमारा फर्ज था, उसमें संमान किस लिये?"

"धन्यवाद हमें श्रीसंघको देना है कि ऐसा पुण्यकार्य करने का अवसर हमें दिया। हमारी श्रीसंघसे बारबार प्रार्थना है कि धर्म उपर जब भी खतरनाक आफत आये तो इन सेवकों को अवश्य याद करें। प्राणोंकी बिना परवाह किये हम उस आपत्ति को मार हठायेंगे।"

(९५) मानव यदि देवको भी झुका सकता है....

(यह ऐसी घटना है, जिसमें मानवीय शक्तियाँ, दैवी तत्त्वों को भी नतमस्तक बनाने में समर्थ होती हैं। यदि महान और सामर्थ्य संपन्न देवतत्त्वों को भी झुकाने में मानव सफलता प्राप्त कर सकता हो तो, सत्ता या संपत्ति के नशेमें चकचूर आदमियों को परास्त करने में मानव सफल क्यों न हो?)

www.yugpradhan.com

नाम था उनका जावडशा। उनके जमाने के एकमात्र धनिक एवं उच्च कक्षाके धर्मीजन।

लक्ष्मी और धर्मनिष्ठा दोनों उनके घरमें स्थायी निवास के लिये स्पर्धा कर रही थी।

एकबार जावडशाने तीर्थाधिराज श्रीशत्रुंजय के जिनालय आदि की जर्जरित दुर्दशा को देखी। अपने जीते जी, अपने परमात्मा के जिनालय जर्जरित हो रहे हैं। अपनी उपेक्षावृत्तिसे वे अपने आप से घृणा करने लगे।

गहराई में जाने पर पता चला कि—"शत्रुंजय तीर्थका अधिनायक देव, धर्मभ्रष्ट हो जाने पर उसने तीर्थों की दुर्दशा कर रखी थी।

उस जमाने के युगप्रधान आचार्य श्रीवज्रस्वामीजी इस स्थिति से परिचित थे और दुःखी भी। लेकिन संपत्ति के भौतिक बल का साथ न हो, तब तक वे महात्मा कुछ कर पाये, ऐसी स्थिति न थी।

लेकिन एक दिन अध्यात्म एवं संपत्ति, दोनों परिबल एक साथ हो लिये ।

जावडशा और वज्रस्वामीजी शत्रुंजय के जीर्णोद्धार के लिये कटिबद्ध हुए ।

मंदिरों के पत्थरों पर टंकन काम शुरू हो गया । पर्वत पर ही नूतन प्रतिमाओं का निर्माण होने लगा । वर्षों की कडी मेहनत और साधना के फलस्वरूप प्रतिमाएँ तैयार हो पायी । कल प्रतिमाओं की मंदिरमें प्रवेशविधि थी ।

और....यह क्या ? सुबह में ज्यों हि जावडशा सेठ तलहरी से पहाडी पर चढ़ने के लिये अपना पाँव रखने ही थे कि वे सारी प्रतिमाएँ अपने ही पाँवों में खंडित हो आ पड़ी !

www.yugpradhan.com

जावडशा को क्षणभर वज्राघात महसूस हुआ । दुष्ट देवों की कारवाई वे तुरंत समझ पाये ।

जरा भी निराश हुए बिना नये सीरे से प्रतिमाओं का निर्माण शुरू हो गया ।

लेकिन फिर वही दशा ! पुनः नवनिर्माण । पुनः प्रतिमाएँ टूकडे टूकडे हो गयीं । बीसबीस बार यह क्रम चलता रहा । जावडशा के सर पर सफेद बाल चमकने लगे । मुख परकी रेखाएँ वार्धक्य की सूचना देने लगी ।

एकबीसवीं बार उस वृद्धने पुरुषार्थ नहीं छोडा । प्रतिमाएँ तैयार होते ही, उन तमाम प्रतिमाओं को रथारूढ कर, दोनों पति–पत्नी रथके दोनों पहियों के नीचे सो कर दुष्टदेवों को आह्वान करते हुए कहा

कि–" अब हमारे पर पहिये चलाकर ही इन प्रतिमाओं से भरे रथको आगे बढ़ाना ।"

और....देव मजबूर हुए। सर्वगुणसंपन्न महापुरुष का बलिदान लेने जैसी कठोरता उनके दिलों में बच न पायी थी ।

श्री वज्रस्वामीजी की अध्यक्षतामें ही सारा मंगल कार्य पूर्ण हुआ । प्रतिष्ठा भी बडी धामधूम से हुई । उस दिन, जावडशा और उनकी पत्नी, दोनों ध्वजा चढ़ाने के लिये मंदिर के शिखर पर पहुँचे । कार्यसफलता का हर्षोद्रेक दोनों के हृदयों में बेहद ऊमड पड़ा था । ध्वजा चढ़ाते ही हर्षावेश अमर्याद हुआ और वहीं उन दोनों पति–पत्नी के हृदय बंद पडते ही अवसान हुआ ।

सर्वत्र शोक की गहरी छाया फैली । सबसे ज्यादा चोट पहुँची थी जावडशा के बडे पुत्र के दिलको ।

www.yugpradhan.com

उसने कल्पना की कि, " मुहूर्त अशुभ होने के कारण ही ऐसा अमंगल हो पाया है । वज्रस्वामीजी की ही यह भारी गलती है । गुरुजीने उसे समझाने की लाख कोशिशें कीं, लेकिन उसका दिल नहीं माना । वहाँ यकायक आकाशमार्ग से देव–देवीका सुंदर जोड़ा शत्रुंजय तीर्थस्थल पर ऊतर आया ।

वे दोनों थे अवसान के बाद देवता स्वरूप बने जावडशा और उनकी पत्नी !

उन्हों ने अपने पुत्रसे कहा, " वत्स, शोक न करो । हम तो मृत्यु के बाद अमर बन गये हैं । अब ज्यादा धर्मशासन की सेवा कर पायेंगे।"

इन शब्दों से पुत्र को शान्ति हुई ।

(९६) आधुनिक मम्मण

(परमात्मा महावीर देवके जीवनकाल के कंजूस शिरोमणि मम्मण सेठ की कथा तो आप लोगों ने कई बार सुनी होगी, लेकिन यहाँ तो आधुनिक समय के एक मम्मण की कथा पेश की है ।

बेचारा ! कैसी करुण मौत थी उसकी !)

झालावाड का एक छोटा सा गाँव । पचास हजार की उसकी आबादी थी । वहाँ एक आदमी बस रहा था । न माँ थी, न बाप था, न पत्नी ही ।

छोटा सा घर—माँबाप विरासत में दे गये थे । उसमें वह रहता था । शादी हुई न थी, अतः बालबच्चों की झंझट न थी । कोई चिंता उसे न थी । लेकिन वह शरीर का कामचोर था । साथ ही बुद्धिका वह लठ्ठ था । पूरा गोबरगणेश !

www.yogpradhan.com

भीख माँग कर जीवन गुजारा करने की बुरी आदत उसे थी।

जो पूरा निर्लज्ज हो वही भीख माँग सकता है । जीवन की मर्यादाओं का लोप कर पाये, वही उस क्षेत्र में सफलता पा सकता है ।

अपमान में संमान समझने को कला हस्तगत न की हो, तो भीख का धंधा चल नहीं पाता । मम्मण ने भी लाज—मर्यादा को तिलांजलि दे दी ।

पैसे पैसे के लिये वह मरने लगा । अधम कक्षा का जीवन गुजार कर वह धनसंग्रह करने लगा ।

बड़ा एक गाँव था । महिने में १५—२० दिन तो विविध सभारंभों एवं पार्टियों का आयोजन होता रहता । शादी के मौसम में तो रोजमर्रा के भोजन सभारंभ चलते रहते ।

इस मम्मण की दृष्टि में ज्ञाति–पाँति का कोई भेद न था। अपमान सहकर, अपशब्द सुनकर, अरे मारपीट सहकर भी यदि भोजन मिल जायँ तो वह हमेशा तैयार रहता। क्योंकि उसका जीवन-लक्ष्य यही था कि येनकेन उपायेन धनोपार्जन करना और उसको बचाये रखना।

दीन वाणी में प्रार्थनाएँ करते उस कमभागी को देख सभी तरस खाते। सभी कुछ न कुछ देते रहते। बचा–खुचा भोजन भी कराते।

वर्ष एक एक कर गुजरते चले। इस अभागे का जीवन–गुजारा एक ढंग से चल रहा था।

लेकिन जूठन खानेवाले की काया तंदुरस्त कहाँ तक रह सकती है? ४६ वर्ष की उम्र होते होते उसकी काया में अनेक रोगों ने घर कर लिया।

www.yogpradhan.com

लेकिन दवाई–उपचार का नामनिशान नहीं! औषधोपचार कराने के लिये पैसों का खर्च करना मम्मण सोचता ही कैसे?

ज्वरग्रस्त होकर भी वह कई दिनों तक घर में पड़ा रहा। और एक दिन हँस अपना पिंजरा छोड चल पड़ा।

तीन दिनों तक उसका शव घर में पड़ा रहा। बेहद बदबू फैल रही थी। उस से त्रस्त बने आसपास के लोगोंने घर के बंद किवाडों को तुडवाया। पुलीस आ पहुँची। उस अभागे का शव देखा। बाप रे! बिल्ली ने उसे नोच नोच रफादफा कर दिया था। कई जीव-जंतुओं से लदा था।

छोटी–सी लारी में उठाकर, उसे स्मशान में ले जाकर पेट्रोल छिडककर अग्निदाह किया गया। बाद में सारे घर की तलाश की गयी। टूटी–फूटी एक संदूक मिली। उसमें से कई चीथडे निकले!

लेकिन यह क्या ? चींथडों में लपेटे नोटों के बंडल निकलने लगे । पूरी गिनती करने पर पूरे साठ हजार रूपये निकले ।

सरकारी आदमियों ने उनके सगे–संबंधियों की तलाश की । दूर की सगाई की बहन मिली । नियमानुसार इस धन की उत्तराधिकारी उसकी वह बहन ही थी ।

लेकिन....उस बहन ने लिखित अधिकार छोड दिया कि -" मैं इस धन को लेना नहीं चाहती । भीख में मिले धन के सहारे मुझे अपना संसार चलाना नहीं है । उसे बरबाद होने में देर क्या लगे ? " आखिर लावारिस उस रकम पर सरकार ने कब्जा कर लिया ।

कैसा अजीब श्रीमंत भिखारी !

www.yugpradhan.com

कैसा खुशनसीब कमनसीब ! धन की पागलपनने ऐसी कई जीवनियों का उच्छेद कर डाला है । इतिहास के पन्नों पर ऐसे कई प्रसंग दृष्टिगोचर नहीं हो पाये हैं ! "

(९७) इस देश की मिट्टी के कणकण में है अजीब जिंदादिली ।

(यह ऐसी कहानी है, जिसमें सरस्वतीदेवी को भी आह्वान किया गया है । कैसा होगा यह आर्यदेश ! जिस की भूमि के कण-कण में से जिंदादिल वीरपुरुष पैदा हुए हैं । अतएव यज्ञोपवित की विधि के समय पुरोहित लोग प्रार्थना करते हैं कि–" मृत्तिके, हर मे पापम् !–हे मृत्तिका, हमारे पापों को हर लो ।")

श्रीहर्ष का खंडनखंडखाद्य महाकाव्य ! ब्रह्मसूत्र से कठिन उसकी गहनता । वाचस्पति मिश्र की ' भामती ' से भी उत्कृष्ट ग्रन्थ है ।

इस देश का एक राजा ! उस में साहित्य की भारी कदरबूझ थी । श्रीहर्षने ' खंडनखंडखाद्य ' उसके समक्ष सादर किया । राजा ने

उसे 'विद्वत्सभा' के सामने आलोचना के लिये पेश किया। सभीने एक स्वर में उसका भारी समर्थन किया; लेकिन सामान्य जन के लिये वह दुर्बोध था। चाहे उतना सुंदर लड्डु हो, लेकिन वह दाँतों से न टूटे ऐसा कठोर हो तो क्या फायदा ?

फसला सुनते ही श्रीहर्ष को भारी सदमा पहुँचा। कैसा अभागा कवि ! इस काव्य का सजन करने से पहले ही किसी मित्र ने सलाह दी थी कि–"तुम्हारी कुशाग्रबुद्धि पर थोडा अंकुश लगाओ और काव्य थोडा लोकभोग्य बनाओ।" इस से देवी सरस्वती की आराधना कर हर्ष ने देवी से प्रार्थना की कि–"बुद्धि थोडी कम की जाय !" लेकिन माँने कहा–'हर्ष ! बुद्धि पर अंकुश रखने का एक मात्र उपाय है, बुद्धि के विभिन्न तत्वों का जीवन में समायोजन करना। बुद्धि की तीव्रता की कसौटी पर खरे उतरवाले गहन पदार्थ यदि आत्मसात् हो जाय, तभी बुद्धि का संतुलन पा सकोगे, अन्यथा बेहद तूफानी घोडे की तरह, वह अप्रिय हो उठेगी।

श्रीहर्ष ने सरस्वती की आज्ञा का पालन किया। फिर भी, बुद्धि विषयक ऐसा अभिप्राय सुनते ही उसके मनमें भारी खलबली मच गयी। वह आगबबूला हो उठा। उसने राजा एवं विद्वत्सभा से साफ-साफ कह दिया कि–"मेरे काव्य की कदरबूजी करने की हैसियत ही तुम्हारे में कहाँ ? काव्य तुम्हें सौंपने में मेरी भारी गलती हुई है।"

विद्वत्सभा के अग्रणी ने कहा–"तो काश्मीरी देवी सरस्वती के चरणों में ही तुम्हारे ग्रंथ को अर्पित कर दो। चौबीस घंटों में ही उसका निर्णय हो जाय ! यदि आपका काव्य सर्वांगसंपूर्ण होगा तो, माँ का प्रभाव जीता–जागता है।"

और सुनते ही श्रीहर्ष कश्मीर गये। माँ के चरणों में काव्य रख

स्वयं ही मंदिर के द्वार बंद किये। दूसरे दिन सुबह द्वार खोलते ही श्रीहर्ष सन्न–से रह गये। काव्य दूर फैंका जा चुका था।

अब धैर्य खो बैठा। श्रीहर्ष ने जाहिर किया कि–माँ सरस्वती की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। वह मेरे काव्य की बूझ क्या कर पायेगी?

श्रीहर्ष ने माँ के सामने ही उपवास शुरू किये। देवी ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये। उसने कहा–" ११ वें सर्ग के ६६ वें श्लोक में तुमने मुझे विष्णु की पत्नी के रूपमें निर्दिष्ट कर मेरे कौमार्य को कलंकित किया है। अतः मैंने तुम्हारे काव्य को उठा फैंका है!"

यह सुनते ही श्रीहर्ष खुलकर हंस पड़े। उन्होंने कहा–" माँ अब तो तुम्हारे विषय में किया गया उल्लेख सत्य सिद्ध हुआ कि तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हुई है।"

www.yogpradhan.com

" सुने, इस दुनिया के अनेक विद्वानों के मुँह से जब मैंने सुना कि–" देवी तो मेरे घर पधारी हैं। मेरी जिह्वा पर उनका निवास है।" तब मैं चकरा गया। सोचा कि–" क्या माँ घर घर घुम रही है? मतलब कि वह कुलटा है क्या? इस कलंक को हटाने के लिये मैंने विष्णु की पत्नी के रूप में तुम्हारा उल्लेख किया है! फिर भी तुम्हें यह उलट समझ में आ रहा है। अब कहो तो तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हुई है या नहीं।

हर्ष का यह तर्क सुनकर देवी–सरस्वती प्रसन्न हो गयी और उनके रचित पुस्तकों को अपनी ओर से पूर्ण स्वीकृति दे दी।

(९८) मृत्तिके, हर मे पापम्।

(यज्ञोपवित की विधि करते हुए ब्राह्मण, धरती की धूलको माथे पर चढ़ाते हुए कहते हैं कि–" हे मृत्तिके! तुम मेरे पापों को हर लो!

वह कितनी पवित्र होती है ! जहाँ यह पवित्र धूल नहीं, वहाँ के सज्जन महापुरुष भी देखते ही देखते पतित हो जाते हैं । साथ ही पतितों का उत्थान भी शीघ्र हो जाता है । इस सत्य को लक्ष्य कर यह कथा रखी गयी है ।)

सम्राट् सिकंदर के जीवन में कोई दूषण पैदा न हो उसके लिये उसके धर्मगुरु अरस्तू बेहद सावधान रहते । हमेशा साथ रहते । एक बार युद्ध का मामला उपस्थित हुआ तो अरस्तू वहाँ भी साथ हो लिये ।

एक रोज संध्या होते सैन्य ने एक स्थान पर अपना अड्डा जमाया । मन बहलाने के लिये सिकंदर घोडे पर बैठ घूमने निकल पड़ा । थोडे ही दूर बगीचा था । ईरान के शाह का वहाँ महल था । शाहजादी उस अरसे में वहीं थी । बागमें दोनों के बीच मिलन हुआ । एकदूसरे की ओर आकर्षण होने पर, प्रारंभिक वार्तालाप हुआ ।

www.ypadhan.com

योगानुयोग से अरस्तू वहाँ आ धमके । दूर ही स्तब्ध रह गये । सारा दृश्य अपनी आँखों से देखा ।

नित्यक्रमानुसार रात को सभी धर्मकथा सुनने के लिये अरस्तू की चारों ओर कुण्डली मारकर बैठ गये ।

" सिकंदर ! एक बातका गौर करना कि विश्वविजेता भी स्त्रियों के हाथ अधम पराजय के शिकार हो पाये हैं । इतिहास इसका साक्षी है । यह तुम्हें कभी भूलना न चाहिए । " धर्मगुरु अरस्तूने सिकंदर से धर्मबोध किया । आज उनके शब्दों में एक विशिष्ट प्रकार का जोस था । उसे सिकंदर ने ग्रहण कर लिया था ।

दूसरे ही दिन, ईरान की शाहजादी के पास जाकर सिकंदर ने उससे प्रेम से इन्कार कर दिया ।

शाहजादी आगबबूला हो उठी। उसे पता चल गया कि उसकी प्रेमलीला को मटियामेट कर देनेवाले केवल अरस्तू ही है!"

शाहजादी ने प्रतिज्ञाबद्ध हो, सिकंदर से कहा कि, "थोडे ही दिनों में वह अरस्तू को अपना चमत्कार दिखा पायेगी। स्त्रीके सामने पुरुष कितना विवश हो जाता है, उस सत्य के साक्षी होने के लिये सिकंदर को भी उसने आमंत्रण दिया और दूसरे ही दिन इस शाहजादी ने नर को—नरव्याघ्र को बुरी तरह परास्त कर दिया।

अरस्तू उसी उद्यान में ध्यानस्थ बैठे। सोलह शृंगारों से सजधज, शाहजादी ने वायोलीन बजाना शुरू किया। शान्ति की मोहिनी ने अरस्तू पर जादू कर दिया। ध्यान छोड, उठकर वे शाहजादी के पास पहुँचे। उसका सौन्दर्य देखते ही वे मचल उठे। उसके साथ संभोग-सुख मनाने की प्रार्थना की। महल के पहले मजले पर बैठा सिकंदर इस घटना को निहारता था।

शाहजादी ने कहा—" संभोगसुख देना मुझे मंजूर है, लेकिन एक शर्त पर। मेरा घोडा बनकर, चारों पाँवोंसे इस महल की परिक्रमा आपको करनी होगी।"

अरस्तू ने इस शर्तको मंजूर की। शाहजादी उसकी पीठ पर सवार हुई। चाबूक की तरह पीछा मारती डच डच बोलती वह उन्हें चारों पाँव चलाने लगी।

उसी समय सिकंदर दौडता नीचे आया—" अरे गुरुजी! यह क्या? गत रोजका आपका उपदेश और आजका यह प्रसंग, दोनों का मेल कहाँ?

यह सुनते ही अरस्तू लज्जित हो गये। उन्होंने तुरंत खड़े होकर सिकंदर से कहा—" बादशाह। मैंने जिन शब्दों में कल तुम्हें धर्मबोध

किया था, वह बिलकुल यथार्थ हैं। देखो, मुझ–सा आदमी भी इस नारी शक्ति से परास्त हुआ है ? खैर...अब भी कुछ बिगडा नहीं है। अब भी सम्हलकर, यहाँ से हम दोनों भाग छूटें।"

और दो अश्वारोही दूर दूर जाते दीख पड़े। हाथमें आया शिकार, इस प्रकार हाथ से निकल गया देख, शाहजादी पश्चात्ताप करने लगी।

लेकिन, सावधान रहे। उस शाहजादी ने एक बार तो अपनी नारीशक्ति का परिचय दे ही दिया था। यही उसकी ज्वलंत विजय थी।

(९९) खूब सोचविचार कर बोलें।

www.yogpradhan.com

(अधीर बनकर जल्दबाजी में बेहद ढंगसे जब हम कुछ अंटसंट बक जाते हैं तो उसके दुष्परिणाम उठाने पड़ते हैं। अच्छी बात को भी बिना सोचे कहने पर, पाँच जीवों की हत्या में वह प्रतिफलित हुई। फिर झूठी और गलीच बातें तो मुँहसे निकले ही कैसे ? इस कथा को दिल लगाकर पढ़े। उपयुक्त बोध मिल पायेगा।)

बारह बारह साल देखते ही देखते गुजर गये। अब भी पति वापस नहीं आये जान, उसकी प्रतीक्षा में एक स्त्री द्वार पर आश लगाये खडी है। यह उसका रोजाना कार्यक्रम था।

एक रोज एक बड़े ज्ञानी मुनि उस मार्ग पर गुजर रहे थे। भिक्षाके लिये वे निकले थे। उस पति–वियोगिनी स्त्रीने अपने यहाँ पधारने की प्रार्थना की। मुनिजीने उसकी प्रार्थना का स्वीकार किया।

भिक्षा ले वापस लौटते मुनि को रोककर उस स्त्री ने मुनि से कहा–"मुनिवर ! और मैं कुछ नहीं चाहती, लेकिन कई वर्षों से मेरे पति के आगमन की प्रतीक्षा करते करते अब हार गयी हूँ। मैं बहुत

परेशान हूँ। आप ज्ञानी है। यदि आप उनके आगमन का निश्चित समय बता दें तो मैं दैनिक प्रतीक्षा करना छोड़ दूँ। धर्मध्यान में चित्त लगा दूँ और उनके आनेका निश्चित दिन समझ कर निश्चित हो जाऊँ।"

यदि एक स्त्री इस प्रकार दुर्ध्यान से मुक्त हो तो उसके लिये मैं अपने ज्ञानका सद्‌पयोग क्यों न करूँ ? ऐसा सोचकर ज्ञानी मुनिने स्त्री से कहा—"बहन ! आजसे तीसरे दिन तुम्हारे घर आ पहुँचेंगे।"

स्त्री अत्यंत खुश हो गयी। तीसरा दिन आ पहुँचा। सुबह से ही उसका चेहरा खुशहाल था। पतिका स्वागत करने के लिये वह सोलह शृंगार सजधज बैठी। मुँहमें पानका बीड़ा लगाया। सेंथेमें सिन्दूर लगाया।

www.yogpadhan.com

और... सचमुच शाम होते ही उसके पति घर आये। पत्नीने पूरे प्यार से उनका स्वागत किया। लेकिन पति को शंका हुई कि मेरे आगमन का इस स्त्री को तो पता न था। तो ये सोलह शृंगार किसके लिये ? क्या वह कुलटा हो गयी है ?"

स्त्री के दुश्चारित्र्य की शंका को दूर करने के लिये पतिने आखिर पत्नी से पूछा ही मारा। स्त्रीने निर्व्याज हँसते हुए कहा—"आप ऐसी भद्दी कल्पना करते क्यों हैं ? मुझे तो हमारे गाँवमें विराजे जैनमुनिजी ने आपके आगमन के आशीर्वाद, तीन दिन पहले से दे दिये थे। इसी वजह से मैंने आज कई दिनों के बाद सोलह शृंगार धारण किये हैं !"

लेकिन, फिर भी पतिके दिलमें यह स्पष्टता जमी नहीं। दूसरे दिन मुनि के ज्ञानकी कसौटी करने के निमित्त, उपाश्रय में पहुँचा। सारी बातों की चर्चा कर लेने पर भी समाधान हो न पाया। आखिर में मुनिजी से पूछा—"मुनिजी, यदि आप इतने ज्ञानी हैं, तो मुझे आप

इतना बतायें कि मेरे घर जो घोडी है, वह गर्भवती कब हुई है? और अभी उसके पेटमें कितने बच्चे पल रहे हैं?

"दो बच्चे।" मुनि ने तुरंत ही उत्तर दिया।

इस सत्य की कसौटी में देर नहीं थी। घर जाकर तुरंत उसने घोडी के पेट जोर का घाव कर दिया और उसके साथ ही उसके सामने ही तलवार से कटे हुए दो बच्चे भी बाहर निकल आये। सामने ही खड़ी उसकी पत्नी से यह देखा न गया। वह चीखकर बेहोश हो गिर पड़ी।

मध्यरात्रि हुई। फिर भी उसे निंद नहीं आयी। "अपने लिये तीन जीवों की हत्या" यह कल्पना ही उसके लिये आत्मघातक सिद्ध हुई। उसने गले में फाँस डालकर आत्महत्या कर ली।

www.yugpradhan.com

सुबह मुनिजी को इस बात का पता चला। चारों हत्याओं का निमित्त खुद है, ऐसा जानकर अनशन कर उन्होंने देहत्याग किया।

उस दिन सारे नगर में सन्नाटा फैल गया। सभी एक ही बात पर जोर दे रहे थे कि-"भाई, कुछ भी कहने-बोलने से पहले खूब गौर करना।"

(१००) चोर साहुकार बनने चले...

यह एक सत्य घटना है।

वे थे मांडल के सेठजी। नाम था उनका अमृतलाल मलुकचंद।

आसपास के प्रदेश में उनका भारी बोलबाला था। धर्मात्मा थे। मर्द थे। सदाचारी थे। परोपकारी थे। नीतिमान थे।

एक रोज, नित्यक्रमानुसार सेठजी घोडी पर सवार हो, शंखेश्वर-तीर्थ की यात्रा करने जा रहे थे। घोडी जंगल से गुजर रही थी। वहाँ रूपेण नदी के बीच आ जाने पर, चारों दिशाओं में से आकर डाकुओंने उसे घेर लिया। वे सभी घुडसवार थे।

चेतावनी देते हुए उन्होंने कहा—"सेठजी, अंग पर जितने गहने हो, वे सारे उतारकर दे दें। वर्ना घर नहीं जा पाओगे। आप एक हैं, हम चार हैं।"

अनुभवी सेठजी सारी परिस्थिति समझ गये। मुकाबला करने का कोई अर्थ न था और न ही ऐसा सामर्थ्य था।

"तो क्या गहने उतार दे दिये जायें? उपरान्त यह तो तीर्थयात्रा है। इस प्रकार रास्ते में लूटा जाऊँ तो तो भयके मारे और लोग यात्रा करना ही छोड़ दें। उस पापके भार को मैं क्यों उठाऊँ?" सेठजी मन ही मन सोचने लगे। यकायक उपाय सूझा। स्वस्थता के साथ सेठजी ने डाकुओं से कहा—"भाई, मुझे यह तो समझाओ कि मैं क्यों लूटा जा रहा हूँ?"

घर में खाने के लिये अन्न नहीं। बच्चे भूखों मर रहे हैं। डाकुओं में से एकने कहा।

"तो ऐसा करें। मैं तुम चारों को सौ सौ रूपये नगद दे दूँ। तुम लोग किसानी शुरू करो। मै मानता हूँ कि उससे तुम्हें ज्यादा फायदा होगा। अन्यथा इस प्रकार लूटमार करके कितने दिन गुजारा कर पाओगे।

सेठ के वाक्य सुन चारों चकित रह गये। अन्योन्य विचारविमर्श कर एक डाकुने कहा—"सेठजी, यहीं पर रूपये मंगवा कर दे दें तो हम यह डकैत का धंधा छोड दें।"

www.yugpradhan.com

तुरंत ही सेठजी ने पंचासर की पीढी पर चिठ्ठी लिख दी। एक जवान तुरंत पहुँचा और पंचासर से रूपये लेकर वापस आ पहुँचा। सभीने वहीं रकम का बँटवारा कर लिया और सेठजी को मुक्त कर दिये। सेठजी का पता ले लिया। वे सांजी घोडीवाले सेठ कहलाते थे। २५–२५ रूपयों में बैल खरीद कर चारों ने मिली झुली किसानी शुरू की। मौसम अच्छा रहा। खूब धान पका। सभीके हिस्से में पंद्रह सौ पंद्रह सौ रुपये मुनाफा के रूपमें हाथ लगे।

हाथ में आये रूपये देख, सभी को सेठजी की याद ताजी हुई। उनके उपकार को भूल जाय ऐसे वे कृतघ्न न थे। वे तो खुद उकैत बने हुए थे। लेकिन वंश–परंपरागत कुलीनता को छोडी न थी।

चार सौ रूपये लेकर वे गये मांडल। सांजी घोडीवाले सेठ की तलाश की। सेठजी मिल पाये। सेठ को रूपये देने लगे।

www.yogpradhan.com

सेठजी ने कहा–" रूपये कैसे और बात कैसी? मेरी नोंध-वही–खातावही में आप का नामोनिशान ही नहीं है तो मैं रूपये जमा भी कहाँ करूँ?"

उकैत ने रूपेण नदी के तट पर घटी घटना की याद दिलायी। सेठजी को उस घटना की याद ताजा हुई हो ऐसा दिखावा करते हुए कहा–" हाँ....हाँ....हं....याद आया! ठीक है, तो क्या तुम लोगोंने उन पैसों में से खेतीबारी की क्या? अपनी उकैती छोड दी क्या!

" हाँ....सेठजी! आप की सूचनानुसार हम लोगोंने किया तो, हम लोगों के घर रूपयों का ढेर लग गया। इसी लिये तो आप के रूपये लौटाने आये हैं न? अगुए उकैत ने कहा।"

सेठजी ने कहा—"अच्छा है, लेकिन आपके गाँव में जो लोग अभी भी उकैती का धंधा करते हों उनमें चार आदमियों को इनमें से सौ सौ रूपये दे दो और उन्हें खेतीबाडी में लगा दो। अगर वे लोग भी रूपये कमाकर रूपये वापस लौटाने आएँ तो दूसरे चार आदमियों में उन रूपयों को बाँट कर, उन्हें धंधे में जोड देना। इस प्रकार इन चार सौ रूपयों को हाथोंहाथ बाँटते रहना।" इस सूचना का अमल होता रहा और आधे गाँवने चोरी छोड दी।

(१०१) एकाकी वीर बनो।

जंगल विस्तार में से किसी श्रीमंत घर की बारात गुजर रही थी। सभी आनंद में मग्न थे। संध्या का समय होने आया। तब वृद्धजनों ने कहा—"बारात को यहीं ठहरा दें और सभी भोजन कर लें।" बारात रूकी। लड्डु और नमकीन का सभीने कलेवा किया।

www.yogadhyan.com

वृद्धोंने युवानों से कहा—"युवकजनों! इर्दगिर्द के प्रदेश में चक्कर काटकर देख आओ कि कोई मुसाफिर तो नहीं? हो तो उसे यहाँ ले आएँ। हम उनका आतिथ्य करेंगे।"

युवकजन घुडसवार हो निकल पडे। हाथ लगे सभी मुसाफिरों को लाकर उनका स्वागत किया। उसी समय थोडी दूरी पर एक घुडसवार गुजर रहा था। वह कोई राजपूत था। अत्याग्रह के साथ, उसे भी युवकजन ले आये।

रजपूत ने भी लड्डु—नमकीन का कलेवा किया। वृद्धोंने उनका परिचय ले लिया। बारात गुजरने के रास्ते में ही उसका गाँव पड़ता था। अतः उसे बारात के साथ ही चलने का आग्रह किया गया। रजपूत ने उसका सादर स्वीकार किया।

सायं भोजन कर बारात आगे बढ़ी। रात जम गयी। गाढ़ा अंधेरा ऊतर आया। चौकीदार चौकी करते आगे बढ़े।

यकायक सिर बाँधे उकैत एक ओर से आ धमके। उन्होंने पलवार में बारात को घेर ली। बच्चे और बहनें भय के मारे काँपने लगे। जोरशोर से चीखने लगे। उकैत के अगुए ने डाँटकर कहा—"सारे गहने उतारकर धर दो। यहीं ढेर लगायो। नहीं तो एक एक को काटकर फैंक दिया जायेगा।"

जितनी लालटेनें थीं। सारी की सारी जला दीं। चारों ओर प्रकाश फैल गया।

बारात में कई श्रीमंत भी थे। श्रीमंतो के घर की कन्याएँ भी थीं। सभीने एक एक कर गहने उतार धर दिये। ढेर सा लग गया देखते ही देखते। सिर बाँधे उकैत फूले न नमाये। यकायक उनका नसीब आज पलट गया था जो।"

बारात के चौकीदारों को पकडकर पेडों के तनों के साथ कस कर बाँध दिये थे।

वह रजपूत थोडी दूरी पर खड़ा था। तीखी नजरों से वह, यह सारा मामला देख रहा था!

उकैतों के अगुए की नजर रजपूत पर पहुँची। उसकी कमर पर लटकती तलवार देख वह गरजकर बोला—अरे साथियों! उसकी कमर में लटकते दंतुए को खींच लो।

पाँच साथी रजपूत की ओर धंसे और उसे घेर लिया। रजपूत ने गरजकर कहा—"मेरी तलवार का फिर से अपमान किया तो तुम्हारा मजा किर—किरा कर दूँगा।" पाँचों साथी इस चेतावनी को सुन चार कदम पीछे हट गये। अब अगुवा उसके पास आया। रजपूत

की मर्दानगी देख वह बेहद खुश हो गया। ईशारे से ही साथियों को बुझा दिया कि–"उसके साथ लडो भले ही, लेकिन जान से खत्म न करना। किसी वीरपुरुष का वारिस है।"

रजपूत ने अगुए उकैत से का–" भाईसाहेब, एक बात सुन लें। इस बारात के लड्डू खा कर मैंने मुँह मिठा किया है। अतः मेरे जीते जागते आप लोग बारात की स्त्रियों के गहने कदापि ले नहीं जा पाओगे! आप लोग मुझसे लडझगड कर, मुझे खत्म कर फिर चाहे जो कर सकेंगे। उसके अलावा तो इस ढेर को मैं छुने तक न दुँगा। यह निश्चित है। मैं नमकहलाल हूँ, नमकहराम नहीं।"

और चंद मिनटों में ही धमासान लड़ाई छिड गयी। लालटेनों के उजाले में तलवारें आमनेसामने टकराने लगी। अगुएने महसूस किया कि यह तो एक भी हजारों–सा लगता है। इसे जिंदा पकड़ना मुश्किल है।

रजपूत ने पाँच उकैतों को घायल कर दिये। क्रुद्ध शेर की तरह वह उकैतों पर टूट पडा।

'लड़ाई रोक दो।' उकैतों के अगुएने यकायक आदेश दिया।

रजपूत के साथ मैत्री का संकेत दिया। गहने वापस किये गये। बारात उठने की तैयारी में लगी। बारात के वृद्धजन रजपूत से गले लगे। आनंदाश्रु से उसे भीग दिया।

रजपूत के मुँह पर नमकहलाली निभाने का अपूर्व संतोष निखर आया था।

www.yugpradhan.com

(१०२) चाँपा : संपूर्णतया आर्यजन !

धन से भरी पूरी बांसुरी को कमर पर बाँधकर ऊँट पर सवार चाँपा सेठ जंगल से गुजर रहा था। रास्ते में तीन उकैत से भेंट हुई।

गरजते हुए रूक जाने का आदेश देते हुए पूछा–" अरे बनिया, तुम्हारे पास रूपये–पैसे हैं क्या ?" सत्यभाषी चांपा ने बताया– " अवश्य है और इस बाँसुरी में है ओर शरीर पर भी धरा है।"

उकैतों के सरदार ने कहा–" उस सारे धन को यहाँ छोडकर जाना पडेगा।"

चाँपा : अगर तुम तीनों भिखमंगे हो तो दानरूप में इसमें से कुछ धन दे देने की मेरी तैयारी है। नहीं तो एक पैसा भी लेने न दूँगा।

www.yugpradhan.com

सरदार : हम तो उकैत हैं। बिना लूँटे रहेंगे नहीं।

चाँपा : तो मुकाबले के लिये हो जाओ तैयार !

लड़कर ही तुम धन ले सकोगे। लूँटकर कदापि नहीं।

इतना कह, मर्द चांपा ऊँट पर से नीचे ऊतर कर, सामने आया। इससे चकित हो, सरदार ने नीचे ऊतर आनेका कारण पूछा। चांपाने कहा कि–"लड़ने के लिये दोनों पक्षों में समान भूमिका होनी चाहिए। यह युद्ध की नीति है। तुम जमीन पर और मैं ऊँट पर रहूँ, यह ठीक नहीं है।"

इतना कह चांपाने तरकस में तीन बाण रख, बाकी सारे बाणों को तोड़ फैंक दिये। इससे पुनः चकित होकर, सरदार ने वैसा करने का कारण पूछा।

चांपा : तुम लोग तीन हो, अतः तीन बाण मेरे लिये पर्याप्त हैं। ज्यादा बाणों की क्या जरूरत ?"

सरदार : तो तू क्या यह समझ बैठा है कि तुम्हारे तीन बाणोंमें से एक भी निष्फल नहीं जाएगा और हम तीनों आहत हो जाएँगे ? "

चांपा : अलबत्त, क्योंकि मैं कुशल निशानबाज हूँ। मेरा बाण अमोघ है।

सरदार : तो आसमान में उड़ते जाते इस पक्षीको मार गिराओ तो ?

चांपा : निर्दोष पक्षी को मार गिराने में कोई बहादुरी नहीं है। फिर भी तुम कहो तो, तुम्हारे में से कोई एक उस वृक्षके तने से थोडे दूर खड़े हो जाओ। उसके सर पर मेरे गलेकी माला थोडी उपर उठाकर रखो। मेरा बाण, उस मालाको उठाकर पेडके तने में घुस जाएगा।

यह सुन सरदार स्वयं तैयार हो गया।

www.youpradhan.com

सचमुच बाण माला को उठाकर तनमें घुस गया।

सत्यवादी, न्यायप्रिय, उदार, मर्द और तीरंदाज बनिये को सभी इकटक देखते रहे।

सरदार के नाम पूछने पर, चांपाने अपना नाम भी बताया।

सरदार ने उससे कहा—" भाई, तुम्हारे जैसे मर्द के साथ युद्ध कर इस धरती पर से हम तुम्हें नामशेष करना नहीं चाहते। तुम्हारे जैसे मर्दों की हमें ज्यादा जरूरत है।"

भाषा की ऊँचाई देख चांपाने पूछा—"आप उकैत से मामुली आदमी हो यह मैं मानने के लिए तैयार नहीं। सही बात जानने के लिये उत्सुक हूँ।"

सरदार ने कहा—" मैं वनराज चावड़ा हूँ। राष्ट्ररक्षा के लिये धन एकत्र करने के लिये अनिवार्य रूपसे इस राह पर निकल पड़ा हूँ।"

जब राज्यसत्ता प्राप्त हो, तब मुझे अवश्य सूचित करें और मेरे पास आ पहुँचें। तुम्हारी शक्तिका मुझे समुचित उपयोग करना है।"

चांपा : ओहो आप खुद ही वनराज हैं! तो तो यह सारी संपत्ति आपके चरणों में सादर समर्पित है। बनिये का द्रव्य योग्य समय पर राष्ट्ररक्षाके हित उपयोग में आता हो तो, वह बड़ा सौभाग्य माना जाय। मेरी संपत्ति का स्वीकार करें। आप आदेश दें तो ये प्राण भी आपके चरणों में सादर समर्पित कर दूँ। आप मुझे कोई भी आदेश दे सकते हैं।

अपनी प्रजाकी वीरता पर प्रसन्न वनराज की आँखों में आनंदाश्रु झलक पड़े। आये दिन दुःखोंमें से मुक्ति प्राप्त होती दिखायी दी।

www.yugpradhan.com

(१०३) गुरु का अपमान कभी न करें।

सूरिपुंदर हरिभद्रसूरीश्वरजी के संसारभोगके दो भानजे : एक था हंस, दूसरा था परमहंस।

संसार से विरक्त हो, दोनों ने मामा महाराज के पास दीक्षा ली। अच्छी तरह शास्त्राभ्यास किया, फिर भी स्वाध्याय की तड़पन जैसी की वैसी बनी रही।

एक रोज गुरुदेव के पास बौद्ध मतका अभ्यास करने के लिये, आश्रम में जाकर गुप्तरूप में निवास करने की आज्ञा माँगी। ज्ञानी गुरुवर को कोई अशुभ दर्शन हुआ और उन्हों ने संमति न दी।

गुरुकी आशिष प्राप्त न होने पर भी अविनयी उद्धत बन दोनों भानजे–मुनियों ने भेष पलट कर बौद्ध मठ में जा निवास किया और बौद्धमतका जोरदार अभ्यास शुरू किया।

एक दिन बौद्धाचार्य, जैनमत का खंडन कैसे किया जाय, उसके बारेमें तर्क दे रहे थे। उस समय हंस और परमहंस दोनों मुनियों ने उन तर्कोंके कमजोर पहलुओं की नोंध गुप्तरूपसे कर ली। कागज के टूकडे पर यह नोंध की गयी और कमनसीबी के मारे वह टूकड़ा इधर–उधर रखने के कारण बौद्ध–विद्यार्थी के हाथों जा पड़ा।

उसने बौद्धाचार्य को दिया। उस पर से बौद्धाचार्य ने अंदाज लगाया कि इस मठमें गुप्त रूपसे जैनमत के अनुयायी अवश्य है। इसका सबूत प्राप्त करने के लिए, उन्होंने रात्रि के समय विद्यार्थी के निवास में ऊपर से लगातार मिट्टी के घडे गिराये। यकायक शोरगुल–धमाके होने से बौद्ध विद्यार्थियों ने "बुद्धं शरणं गच्छामि" आदि नामस्मरण में लग गये जब कि हंस–परमहंस मुनि "नमो अरिहंताणं" का नामस्मरण जोरशोर से करने लगे।

www.yugpradhan.com

बौद्धाचार्य को विश्वास हो गया कि, वे दोनों जैन हैं। पुनः एक एक और कसौटी की गयी। जिसमें हर पाँवदान पर अरिहंत की प्रतिमा की आकृति रचाकर सभी को उन पाँवदानों पर पैर रखकर ऊतरने की आज्ञा की। दोनों मुनियों को अपने ऊपर आये मुसीबतों के मंडराते काले बादल नजर आये। लेकिन इस समम तो उसमें से तो रास्ता ही निकालना था। अतः हाथमें सफेद खड़ी लेकर, अरिहंत की प्रतिमा को अन्य रूपमें कल्पना कर तेजी से पार गये और पीछे के दरवाजे से भाग निकले।

बौद्धों ने उनका पीछा लिया। हंसमुनि पकडे गये ओर रास्ते में उनकी मृत्यु हुई। परमहंस मुनि राजा शूरपाल के पास पहुँचे। बौद्धों ने शूरपाल से परमहंस मुनि सौंपने की प्रार्थना की। लेकिन शूरपाल ने

उसका साफ इन्कार किया और कहा—" वह मेरी शरण में है। मेरा उन्हें अभयवचन है। आप चले जाएँ।"

बौद्ध निराश हो, मठ की ओर वापस आये।

उसके बाद राजाके इशारे से परमहंस मुनि, मौका पाकर वहाँसे भाग छूटे। भयके बोझिल वातावरण के साथ वे गुरुदेव श्री हरिभद्रसूरीजी के पास चितोड तक पहुँचे। परमहंस मुनिने गुरुदेव को सारी बातें बतायीं और अन्तमें स्वीकार किया कि, गुरुदेव के स्पष्ट इन्कार होने पर भी, उसका उल्लंघन कर, अभ्यास करने गये। अतः ऐसा करुण परिणाम भुगतना पड़ा। सगे भाई मुनि हंसका जीवन खत्म हो गया है। ऐसा कह अविनय के लिये फूट फूट कर रोने लगे और क्षमा—प्रार्थना की।

अविनय की भूल एक बार हो गयी सो हो गयी। लेकिन सूरिदेव को अपने होनहार पट्टशिष्य को गँवाने का भारी सदमा पहुँचा।

परमहंस मुनि की व्यथा बेहद थी। मानों गुरुदेव को जानकारी देने और क्षमा—प्रार्थना के लिये ही शरीर में आत्मा टिकी हुई हो। गुरुदेव की गोदमें सर रखकर रुदन करते हुए परमहंस मुनिने प्राण गँवाये। सूरिवर के लिये यह असह्य आघात बन पड़ा। कई दिनों तक वे व्याकुल बने रहे।

एक रोज शासनदेवीने सूरिवर से कहा कि—" विद्वान शिष्यों के विरह की व्यथा शान्त करें। आप तो महा ज्ञानी है। आप से क्या बतायें ? लेकिन एक बात बता दूँ कि आप के नसीब अब कोई शिष्यलाभ नहीं है। इस विरहव्यथा को शान्त करने के लिये आप ग्रंथनिर्माणरूप स्वाध्यायकार्य में लीन हो जायँ। आप को अपार शान्ति प्राप्त होगी।" सूरिजी ने वैसा ही किया। उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई।

www.yogadhyan.com

(१०४) प्रखर राजनीतिज्ञ श्रीकृष्ण

(श्रीकृष्ण को अनेक पहलूओं से वर्णित किये जाते हैं। उनमें से एक पहलू से सोचने पर श्रीकृष्ण को महाभारतकार ने 'राजनीति का विराट व्यक्तित्व धारण करनेवाले श्रीकृष्ण' के रूप में चित्रित किये हैं, ऐसा दीख पड़ता है। शायद श्रीकृष्ण जैसे राजनीतिज्ञ हमें कदाचित् ही मिलने पाये। यहाँ उनके विशिष्ट अंग का परिचय कराया गया है। राजनीति को बिना समझे–बुझे, उसके परंपरागत् कौशल को बिना हस्तगत किये, राजनीति के क्षेत्र में घूसखोर आदमियों के द्वारा कैसा भद्दापन नजर आता है, प्रजा की कैसी खानाखराबी होती है, यह बात श्रीकृष्ण के जीवनप्रसंग द्वारा यहाँ समझाने का नम्र प्रयास किया गया है।)

www.yogpadhan.com

महाभारत के युद्ध में एक दिन अर्जुन के महाबलिष्ठ पुत्र अभिमन्यु का जयद्रथ ने संहार किया। अपने पुत्र के वध के समाचार अवगत होते ही अर्जुन शोकातुर हो गया। लेकिन बाद में अपने पुत्र की हत्या करनेवाले जयद्रथ को खत्म करने के लिये वह अकुलाकर अधीर हो उठा। अर्जुन ने उसी जगह कडी प्रतिज्ञा की कि, "यदि जयद्रथ को कल सूर्यास्त होते खत्म न करूँ तो मैं अग्निप्रवेश कर लूँगा।"

अर्जुन की प्रतिज्ञा के समाचार श्रीकृष्ण को प्राप्त होते ही, वे चिंतातुर हो गये। "यदि अर्जुन कल युद्ध में जयद्रथ का वध कर न पाये तो निजवचन दृढ़मति अर्जुन अवश्य अग्निप्रवेश करेगा। यह विचार श्रीकृष्ण को परेशान करने लगा।

दूसरे दिन सूर्योदय हुआ और युद्ध शुरू हुआ। अर्जुन और जयद्रथ आमने–सामने आ गये। दोनों के बीच युद्धनीति के उत्कृष्ट

दावपेच शुरू हो गये। दोनों पक्षों के सैनिक युद्ध करना छोड उस महायुद्ध को इकटक देखने में तल्लीन हो गये।

देखते ही देखते दोपहर के चार बज गये। अभी तक जयद्रथ अड़ा रहा है। कृष्णने यह देखा। ऐसे ही यदि शाम ढ़ल गयी तो अर्जुन का अग्निप्रवेश निश्चित था। अर्जुन जैसे महारथी को किसी भी तरह बचाना चाहिए ऐसा कृष्ण मानते थे। बिना किसी दाव आजमाये कोई चारा नहीं था।

थोडी ही दूर जाकर श्रीकृष्णने पृथ्वी पर अपना चक्र घुमाना शुरू कर दिया। चारों ओर धूलका बवंडर ऊड खड़ा हुआ।

थोडी ही देर में सारा आकाश धूल से छा गया। सूर्य भी ढँक गया। चारों ओर अंधकार हो गया।

www.yugpradhan.com

सूर्यास्त हो जाने की कल्पना से युद्धविराम घोषित हुआ। जयद्रथ ऐंठता हुआ अपनी छावनी में गया। अर्जुन ने अग्निप्रवेश की तैयारी की। अपने प्यारे गाण्डीव के साथ अग्नि में प्रवेश करने के लिये सज्ज हुआ।

छावनी में थोडा आराम कर जयद्रथ आदि योद्धे अर्जुन का अग्निप्रवेश देखने के लिये चिता के पास आये। थोडी दूर खडे रहकर वे अर्जुन की मजाक करने लगे। अर्जुन सब सुनता रहा; लेकिन अब उसके सामने कोई चारा न था। सिवा अग्निप्रवेश!

जहाँ अर्जुन अग्निप्रवेश करने की तैयारी करता है। वहीं थोडे समय पूर्व, सुदर्शन चक्र की गति स्थगित कर देने के कारण, आकाश में व्याप्त धूलो बिखर ने लगी और यकायक सूर्य के दर्शन हो पाये।

और... श्रीकृष्ण ने पुकारा—" अर्जुन, अरे अर्जुन! अभी तो आसमान में सूर्य विद्यमान है। अतः युद्धविराम हो नहीं सकता।

उठाओ, तुम्हारा गाण्डीव, जल्द उठाओ। प्रत्यंचा पर बाण लगाओ। देखो वह खड़ा जयद्रथ।"

ये शब्द सुनते ही जयद्रथ ने भेद पा लिया, अपने को बचाने वहाँ से भागा लेकिन अफसोस! अब विलंब हो गया है। श्रीकृष्ण के युद्ध-व्यूह के सकंजे में वह आबाद फँस गया है। अर्जुन ने प्रत्यंचा पर बाण चढ़ाकर जयद्रथ का निशान लिया। सननन....आवाज करता हुआ बाण छूटा और... जयद्रथ का मस्तक शरीर पर से कट कर जा गिरा। पांडव पक्ष के सैनिको ने अर्जुन का गगनभेदी विजयनाद किया।

(१०५) कैसी अनोखी है, कर्मोंकी पीडा

www.yugpradhan.com

(यहाँ ऐसी एक आत्मा की कथा है, जो अपने उद्धार के लिये तडपती थी। उसके लिये व्यवस्था भी कर चूकी थी, फिर भी अपने ही उद्धार की बातों की उपेक्षा करती है। जन्मजन्मान्तर के क्रमों में कभी कहीं गलती होती है तब उसके फलस्वरूप कैसी दयनीय स्थिति का निर्माण होता है, उसका परिचय यह छोटी-सी कथा करायेगी।)

त्रिलोकगुरु परमात्मा महावीरदेव के चरणों की सेवा एक रोज देवोंका राजा सौधर्मेन्द्र कर रहा था। उसके मनमें थोडी जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उसे सन्तुष्ट करने के लिये, उसने त्रिकालज्ञानी प्रभु से पूछा-"हे अशरणशरण! देवाधिदेव! आपने चौदह पूर्वोका जो ज्ञान, आपके विनम्र शिष्यों के दिया है वह, कहाँ तक स्थायी रह पायेगा?"

करुणासागर प्रभुने कहा-"सौधर्मेन्द्र, चौदह पूर्वरूप में जो ज्ञान है, वह क्षीण होते होते एकाध पूर्व समान रह पायेगा। तब मेरे परिनिर्वाण के बाद ९०० साल गुजर गये होंगे।"

सौधर्मेन्द्र ने पूछा—"प्रभो ! उस जमाने में कौन से महात्मा विद्यमान होंगे ?"

"इन्द्र ! तुम्हारे सेवक रूपमें जो हरिणैगमेषी देव हालमें देवलोक में विद्यमान है, वह देवरूप में अपनी शेष आयु पूरी कर, इस भरत क्षेत्रमें मानवजन्म लेकर "देवर्धिगणि।" नामक साधु होंगे। उनके समय में अन्तिम पूर्व का भी नाश होगा। प्रभुने भविष्यवाणी की।

प्रभुके पास से यह बात जानकर, इन्द्र स्वर्ग में गया। वहाँ उसने हरणैगमेषी देवको, उसका भावि प्रभुके श्रीमुख से सुनाया—कहा। यह बात सुनकर, उस देवात्मा को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह खुद परमात्मा के पास पहुँचा और उसने पूछा—"हे प्रभु ! मानवजन्म के बाद मुझे शीघ्र ही साधुधर्मादि की प्राप्ति होगी या बहुत मुश्किल से ?

www.yugpradhan.com

प्रभुने कहा—"हे देवात्मा ! मुश्किल से तुम्हें धर्मलाभ होगा। क्योंकि उस समय तुम्हारा जन्म राजकुल में होगा और वहाँ के भौतिक वैभवों में तुम डूबे रहोगे।"

यह बात सुनकर हरिणैगमेषी को भारी सदमा हुआ। स्वर्ग में जाकर, उसने यह बात अपने स्वामी सौधर्मेन्द्र को बतायी।

सौधर्मेन्द्र ने उसे एक सुंदर सलाह देते हुए कहा कि—"तुम अपने विमान की दीवार पर लिख दो कि—"मेरे स्थान पर जो देवात्मा आये वह मुझे मेरे मानवजीवन में प्रतिबोध करें। यदि ऐसा न करे तो उसे देवेन्द्र की सौगन्ध है।"

ऐसी बात, तुम्हारे स्थानका भावि देवात्मा जो पढ़ेगा, वह तुम्हें अपनी मोहनिद्रामें से मुक्त करने के लिये आ पहुँचेगा।"

सौधर्मेन्द्र की यह सलाह देवात्मा को पसंद आयी। उसने उसका पूरा अमल किया।

समय को गुजरते देर कहाँ ? एक दिन उस देवात्मा की देवायु पूर्ण हो चुकी और वेरावल–पाटन के अरिदमन राजा की कलावती नामक राणी की गोदमें गर्भरूपमें वह आत्मा स्थिर हुई। यथावसर उसका जन्म हुआ। राजकुल के भोगविलासों के बीच पलता वह भूतपूर्व देवात्मा संपूर्णतया धर्मविमुख होकर विलासमय जीवन का आराधक बन गया। जंगल में जा निर्दोष पशुओं की हत्या करना यह तो मानों उसकी एक आदत सी हो गयी।

दूसरी ओर उसके स्थान पर आये नये देवात्माने, कई वर्षों के बाद, विमान की दीवार पर का लिखा लेख पढ़ा। तुरंत वह मर्त्यलोक में आया। उसने अपनी दिव्य शक्ति के द्वारा, भिन्न भिन्न युक्तियों के द्वारा उस राजकुमार को प्रबोधन के लिये कोशिशें कीं, लेकिन उसकी सारी कोशिशें व्यर्थ हुई। राजकुमार दिन–ब–दिन नास्तिकता की ओर ही धँसने लगा।

www.yugpradhan.com

आखिर, एक दिन राजकुमार जब शिकार करने जंगल में गया तब उस देवात्माने अपनी दिव्य–माया बलके सहारे यकायक आकाश को मेघाच्छन्न कर दिया। बिजलियाँ कौंधने लगी। जोरों के कडाके शुरू हो गये। बाघ, शेर आदि हिंसक जानवरों की भयानक दिल दहला देनेवाली आवाजें सुनायी पड़ी। राजकुमार को भी मित्रों से अलग कर दिया गया।

ऐसी परिस्थिति में वज्रकठोर हृदयवाला राजकुमार भी भयभीत हो काँपने लगा। उसकी आँखोंमें से आँसु बहने लगे। 'बचाओ–बचाओ' की पुकारें करने लगा।

उस समय वह देवात्मा प्रगट हुआ। उसने कहा कि–"मैं जो कहूँ, उसे पूरा करने का तुम मुझे वचन दो, तो मैं तुम्हें बचाऊँ।"

राजकुमार को उसका स्वीकार किये बिना और कोई चारा न था। राजकुमार को सुरक्षित स्थान पर उस देवात्माने छोड दिया।

देवात्मा की इच्छानुसार उस राजकुमार ने साधु धर्म का स्वीकार किया। वही महासंयमी, अनासक्तयोगी, विशिष्ट ज्ञानी, देवर्धिगण, क्षमाश्रमण, जिन्हों ने शेष बचे जैनशास्त्रों को ग्रन्थस्थ किये। वंदन हो उन महात्मा को!

(१०६) शील के लिये तीन बलिदान

भारत के एक प्रदेश का वह राजा था। उसका नाम था वल्लराज।

www.yugpradhan.com

ईश्वर का वह भक्त था, दुःखियों का साथी था। स्वयं शुद्धचरित्र था। उसके विशुद्ध जीवन के प्रभावसे ही उसका राज्य समृद्ध था, स्वस्थ था, निरापद था। प्रजा उसे चाहती थी। मित्र उनके संगके इच्छुक बने रहते थे। सेवकगण ऐसे मालिक पर न्योछावर था।

धर्मात्मा वल्लराज ने एक बार तीर्थयात्रा करने की अभिलाषा हुई। युवराज को राज्य की धुरा सौंपकर, शुभ मुहूर्त में उन्हों ने यात्रा शुरू की।

दो-तीन मास गुजरे ही थे कि युवराज के जीवन में एक भयंकर घटना घटित हुई!

एक दिवस युवराज महल के झरोखे में अपने मित्र से गपशप लगाते बैठे थे। उसी समय राजमार्ग परसे कतिपय पनिहारियाँ गुजरी।

क्या पता, क्यों ? उस दिन नीचे गुजरती हुई दो ब्राह्मण–कन्याओं को राजकुमार ने कामुक दृष्टि से देखा । युवतियों के कडकते–कसकते यौवनने राजकुमार को विह्वल कर दिया ।

क्षण दो क्षण गुजरे न गुजरे, वहीं युवराज यकायक स्वस्थ हो ऊठे ।

मनस्तल में यकायक उमडी वासना की काली बदरी यकायक बिखर गयी ।

लेकिन युवराज को चैन कहाँ ? मुझसे ऐसा अकार्य क्यों हुआ ? यह कल्पना ही सैकडों चींटियाँ के डंखों से अधिक वेदना पैदा कर गयी।

वेदना असह्य होते, समीपवर्ती साथी से उसने सही हाल बताया और कहा–" मित्र, आज तो मानसिक पाप हो पाया है, लेकिन क्या पता, कल शरीर से क्या हो न पाये ? मेरा जीवन–भवन भ्रष्ट–पतित हो उससे पहले ही उसे जमीनदोस्त कर नामोनिशान मिटा देना चाहिए " इतना कह तुरंत ही युवराज खिडकी में से नीचे कूद पडे । जमीन पर गिरते ही उसकी खोपडी चकनाचूर हो गयी । युवराज उसी क्षण प्राण गँवा बैठे ।

थोडे ही क्षणों में युवराज की आत्महत्या और उसके कारण के समाचार नगरभर में फैल गये । उन दो विप्रकन्याओं को ये समाचार प्राप्त हुए । ज्यादा छानबीन करने पर यह भी पता चला कि उन दो विप्र–कन्याओं का रूप ही, युवराज की आत्महत्या का मुख्य निमित्त बन पाया है ।

इस बात से विप्रकन्याओं को भी भारी सदमा पहुँचा ।

www.yogpradhan.com

उन्होंने सोचा कि हमारे रूप में ही कामुकता का प्रवेश हुआ हो तभी ही दूसरे के दिल में वासना उभर आती है। क्या ऐसा सामान्य नियम नहीं है ?

अब हमारी स्थिति ही ऐसी हो तो आगामी दिनों में हमारा पतन क्यों न हो ! ऐसा पतिता का जीवन गुजारने की अपेक्षा बेहतर यह है कि पवित्र जीवन की स्थिति में ही प्राण छोड़ दे।

दोनों बहनों ने सोचविचार कर, उसी रात अपने प्राणों का त्याग कर दिया।

दूसरे दिन सुबह इस घटना के समाचार नगरभर में फैल गये। तब घर घर की स्त्रियोंने, उन विप्रकन्याओं को शतशत धन्यवाद दिये। उनके शवों—बलिदान व्यर्थ नहीं जाएँगे। भारत की धरती पर उत्पन्न भावि प्रजा के शील का प्रस्तर, इस न्योछावरी के रक्त से चिरकाल के लिये पुनर्जीवित बन पाया।

दिन गुजरते राजा वल्लराज नगर में आये। आते ही उन्हें सारी बातों का पता चला। नगर के अग्रगण्य नागरिकों ने शोकार्त बन, वल्लराज से ये समाचार कह सुनाये। सभी के दिलों में एक ही बात चक्कर काट रही थी कि पुत्र के एवं दो प्रजाजनो के अवसान के समाचार सुनते ही राजासाहब को कैसी भारी चोट दिल पर पहुँचेगी! उस पीडा की असह्यता से शायद वे भी रामशरण हो जायँ !"

लेकिन नागरिकों की यह कल्पना निराधार ठहरी। जब उन्होंने ये समाचार राजा से बताये तब बिना विचलित हुए, वल्लराजने उन से कहा—अभी भी मेरे पूर्वजों का पुण्यबल, ऊपर संपूर्ण तथा प्रकाशित है। इसी कारण मेरा पुत्र और मेरी पुत्रियाँ, कुशीलता का मानसिक

स्पर्श भी सहन पाये । जीवन में कलंक का काला दाग लगने से पूर्व ही उन्होंने अपनी पवित्र देहमें से प्राणों को अलग कर दिये ।

ओ भगवन् ! इससे ज्यादा आपकी मेहरबानी और क्या हो सकती है ।

(१०७) जमीन पर बिना पाँव, कोरा गगन विहार !

(यह अजैन घटना है । अत्यंत बोधप्रद है । जो तत्त्वज्ञान द्वारा प्रबोधित न्याय, नीति, दया विरति, करुणा के जीवन का स्पर्श करने तत्पर नहीं हैं और फिर भी आत्मा ईश्वर, स्वर्ग, नरक अवकाश यात्रा आदि ब्रह्मांड संबद्ध कूट एवं गूढ प्रश्नो की चर्चा के मैदान में कूद पडने का दुःसाहस कर बैठते हैं, वैसे कोरे ज्ञानवादियों का मजाक, उडाती यह एक सुंदर कहानी है । सभी शान्ति से पढ़े ।)

www.yogpradhan.com

एक रोज राजा जनक ने ब्राह्मणों को एकत्र किये । सोने की चद्दर से जड़ी सींगोंवाली हृष्टपुष्ट एक हजार गायों के समूह को दिखाकर उन से कहा कि—"तुम्हारे में से सही ब्राह्मण हो, वह इन सारी गायों को अपने घर की ओर लौटा दे ।

राजा जनक की यह बात सुन विप्रवृंद में कानाफूँसी शुरू हो गयी । कौन अपने को सही ब्राह्मण समझायँ ? यह समस्या थी । अतः जनक की सामने, सच्चे ब्राह्मण के रूप में प्रगट होना मामूली बात न थी ।

थोडी देर तक तो कोई आगे न आया ।

उसी समय याज्ञवल्क्य नामक ब्राह्मणने आगे आकर अपने शिष्यों से कहा—"जाओ, उन तमाम गायों को घर की ओर लौटा दो ।"

ऐसे विधान से याज्ञवल्क्य ने अपने आप को, सही ब्राह्मण के रूप में सभी के सामने घोषित किया।

कतिपय विलक्षण विप्रोंने, याज्ञवल्क्य में अतिसाहस के दर्शन किये। उन्होंने आगे आकर याज्ञवल्क्य को आह्वान किया। सही ब्राह्मण के सबूत के लिये थोडे प्रश्न भी किये। लेकिन उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर जब याज्ञवल्क्य ने संतोषकारक दिया, तब वहाँ उपस्थित सभी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने घर की ओर गायों को मोडने की छुट्टी दी।

लेकिन जहाँ याज्ञवल्क्य का शिष्य गायों को मोडने की कोशिश करता है, वहीं वचकनु ऋषि की पुत्री गार्गी आगे बढ़ी। उसने कहा– "मेरे प्रश्नों के संतोषकारक उत्तर आप दें। बाद में ही मैं तुम्हें सही ब्राह्मण मानूँगी।"

www.yugpradhan.com

याज्ञवल्क्यने गार्गी से पूछने का आमंत्रण दिया। गार्गी ने कुछ प्रश्न किये। तुरंत ही याज्ञवल्क्यने उनके प्रश्नों के अनोखे उत्तर दे दिये।

अब गार्गी आगे बढ़ी। उसकी मर्यादा की सीमा का वह उल्लंघन करने तत्पर हुई। क्रमशः वह कूट और गूढ प्रश्न करने लगी; लेकिन याज्ञवल्क्य ने उनके भी अनोखे उत्तर दिये।

लेकिन गार्गी जब ब्रह्माण्ड संबद्ध अति कूट प्रश्न याज्ञवल्क्य से पूछने लगी तब याज्ञवल्क्य का क्रोध भड़क उठा। उन्होंने देखा कि यह स्त्री जिज्ञासावृत्ति छोड जय–पराजय के विवाद की ओर भागी जा रही है। उसकी आत्मा में विलक्षण वृत्तियाँ जीवंत बन पायी है। उसे उसकी मर्यादा का ख्याल, मुझे देना ही चाहिए।

मौका पाकर याज्ञवल्क्य ने, गार्गी से ललकार कर कहा–"गार्गी! मातिप्राक्षीः मूर्धा ते व्यपबते। अरे ओ गार्गी! ब्रह्मांड के कूटाति-

कूट प्रश्नों की गहराई में डूब नहीं; वर्ना कभी तुम्हारा दिमाग फट जायेगा।"

याज्ञवल्क्य के निर्मल हृदय में से प्रगटे हुए प्रभावी शब्दों ने गार्गी पर भारी चोट पहुँचायी। उसने तुरंत ही याज्ञवल्क्य से माफी माँगी।

और....जनक विदेही की आज्ञा पाते ही, याज्ञवल्क्य गायों की एक टोली लेकर अपने घर की ओर लौट पड़े!

याज्ञवल्क्य को एक मात्र सच्चे ब्राह्मण के रूपमें सभीने नमस्कार किये।

अणुबम के अन्वेषकों में से एक वर्तमान वैज्ञानिक ओपन हाईमर, सर्वप्रथम अणुविस्फोट की ज्वालाएँ देखकर, संस्कृत में बोल उठे थे कि–'कालोऽस्मि लोकक्षये प्रवृद्धः'–उसने सच ही कहा है कि–"हम वैज्ञानिक, ब्रह्मांड के अति गूढ रहस्यों की जानकारी प्राप्त करते समय, अज्ञात के अंधकूपों की ओर नजर ही नहीं डालते। वास्तव में उन अंधकूपों में उतर पडे हैं। वहाँ शायद हमारा क्या होगा? वह हमारी समझ से बाहर हैं। लेकिन इतना अवश्य है कि अंतरिक्ष एवं अवकाश को पार करने का हमारा साहस, कभी किन्हीं अज्ञात परिबलों से इतना भारी परास्त होगा कि हमेशा के लिये, धरती पर पैदल चलते मुसाफिर के सिवा, हमारे पास कुछ भी बचा न रहा होगा।"

www.yugpradhan.com

(१०८) अद्भुत परीक्षा (कसौटी)

(धर्म के तत्त्वज्ञान का अपना निराला क्षेत्र है। इस तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में जिसे प्रवेश पाना हो, उसे दो शर्तें निभानी होगी। पहली शर्त यह कि दुन्यवी व्यवहार के बल पर इस क्षेत्र में परिभ्रमण अशक्य होगा और दूसरी शर्त यह है कि इस तत्त्वज्ञान को अवगत

करनेवाले को अपनी सांसारिक बातें रीतरिवाज, आचार विचार आदि को छोडना होगा। यह सारा जो भूल पायेगा, वही तत्त्वज्ञानी होगा। इस कथा का मुख्य बोध यही है।)

एक राजा था। यकायक उनके मुख्य मंत्री का अवसान हुआ। उसके स्थान पर किस की नियुक्ति की जाय, यह समस्या खड़ी हुई। अन्त में राजाने सर्वोत्तम बुद्धिशाली आदमी की पसंदगी के लिये घोषित किया कि–"जो परीक्षा ली जाय, उसमें जो सर्वप्रथम रहेगा, उस बुद्धिशाली को महामंत्री पद पर नियुक्त किया जायेगा।

अलग अलग गाँवके तीन आदमी, इस कसौटी के लिये कटिबद्ध हुए। कसौटी के निश्चित दिनसे एक सप्ताह पूर्व वे राजधानी में आ पहुँचे। वे यह जानना चाहते थे कि–"राजा किस प्रकार कसौटी करना चाहते हैं?"

www.yugpradhan.com

कई कोशिशों के बाद वे जान पायें कि राजासाहब ताली खुलवाने की कसौटी करने वाले हैं। फलाँ दरवाजे पर लगी तालीको खोलकर उद्यान में बैठे राजा के पास जो आदमी सर्व प्रथम पहुँचेगा, उसकी नियुक्ति महामंत्री पद पर की जायेगी।

इतनी जानकारी प्राप्त कर, तीनमें से दो आदमी तो ग्रंथालय में जाकर ताली और चाभी के विषय की लभ्य सारी किताबें पढ चूके।

उपरान्त उन्होंने महसूस किया कि तालियाँ गणितकी करामातों से खोली जाती हैं। अतः वे नगर के बड़े बड़े गणितज्ञों से भेंट करने गये।

इतना ही नहीं, लुहार के यहाँ जाकर लोहेकी धातु से संबंधित बातें, तालियाँ दुरस्त करने वाले के यहाँ जाकर दुरस्ती की जानकारी भी प्राप्त कर आये। आखिर चाभी बनानेवाले के पाससे भी आवश्यक जानकारी ले आये।

जिन दिनों में ये दो आदमी ऐसा सख्त परिश्रम कर रहे थे, उन दिनों में वह तीसरा आदमी बेफिकर हो सारे नगर में घुमता रहा। होटल, क्लब, पार्टी आदि में भटकता रहा। और मनोरंजक बातें कह सभी को पेटभर हँसाता रहा। ऐसे वर्तन से उन दो परिश्रमी आदमियों को यह आदमी बेवकूफ, और मुफलिस नजर आया।

इस प्रकार दिन गुजरते कसौटी का आखिरी दिन आ पहुँचा। परिश्रमियों ने परिश्रम को और घनिष्ट कर दिया। जब कि उस तीसरे ने बेफिक्री में और बढ़ावा कर दिया।

और...कसौटी का दिन आया। सुबह आठ बजे ताली खोलनी थी। अन्तिम मिनट तक उन दोनों परिश्रमियों ने पढ़ाई जारी रखी। उनके दिलमें भय, बेचैनी और अकुलाहट थी। जब कि उस मुफलिस ने फव्वारे के नीचे बैठ घंटे तक सायगल और पंकजमलिक के गीत गाते स्नान किया।

www.yugpradhan.com

अब आठमें पाँच मिनट बाकी रहे। वह मुफलिस मास्टर कपड़े पहन सज्ज हुआ। समय होते ही वह बिना हिचकिचाहट द्वार की ओर चला और द्वार के पास पहुँच ताली को जोर से झटक दी—ताली तुरंत ही खुल गयी और भाईने सीधे बगीचे में पहुँच राजा से नमस्कार किये।

वे दोनों जब द्वार के पास आये तब ताली और दरवाजा दोनों खुले देख चकित हो गये। वे भी राजाके पास पहुँचे।

राजाने कहा—"अब आप देरी से आये हैं। प्रथम आये इस महाशय की मैंने मंत्रीपदके लिये नियुक्ति कर दी है।

राजाने उस मजाकी मास्टर से पूछा—"तुमने ताली किस ढंगसे

खोली ? उसे खोलने के लिये तुमने क्या क्या कोशिशें कीं ? कितनी पढ़ाई की ? किन किन से मिले ? ये सारी बातें मुझे बतायें।

उन्हों ने कहा—" महाराज, मैंने कुछ पढ़ा नहीं है, न मैं किसी से मिला हूँ। उसके बारे में मेरे इन दो मित्रोंने अधिक परिश्रम किया है। मैंने तो मात्र खींचकर ताली खोल दी है। ताली को चाभी से बंद की ही नहीं गयी थी। खुली ही थी वह।"

" महाराज ! मुझे पता था ही कि राजासाहब सामान्य ताली को खोलने वाली चाभी के बारेमें कभी कसौटी करते ही नहीं। यह कोई अनोखी कसौटी होनी चाहिए। इसी लिये मैंने दुन्यवी ताली को भूल जानेका प्रयत्न किया। उसीके लिये मैंने मौज-मजामें दिन गुजार दिये। इन मित्रोंने ताली—चाभी विषयक पूरी जानकारी प्राप्त की, इसीलिये वे निष्फल रहे।

महाराज ! हमारा स्मृतिलब्ध ज्ञान को बिना भूले दूसरा ज्ञान प्राप्त होना असंभव है। ऐसी मेरी दृढ मान्यता का सुन्दर परिणाम आज मुझे मिल पाया है।

www.yogiradhan.com

(१०९) गाँव-गाँव खडे हैं ऐसे वीरस्मारक !

(जब इस देश का जन—हृदय संस्कृति की प्राणाधिक प्रियता से भरा पूरा था; जब इस देशका बहुजन समाज बिना कसम खाये अपने राष्ट्र के प्रतिज्ञाबद्ध था, जब माता सही अर्थ में बच्चों की संस्कार-धरित्री बन पाती, उस जमाने की यह घटना है—' जैसे अन्याय का आचरण किया नहीं जाता वैसे सच्चा आदमी अन्याय सह भी नहीं सकता ' यही कथा का मुख्य कथयितव्य है।)

एक नगर था। उसका राजा भारी आततायी, खतरनाक और प्रजा के लिये कठोर था।

लेकिन अधमाधम के पाप का भंडा कभी न कभी फूटता ही है। किसी भी तरह उनकी पापलीला का अंत कोई न कोई ला ही देता है।

नगर की एक माता थी। उसे छ बच्चे थे। राजा की करतूतों से वह परेशान हो चुकी थी। उसने, उसके पुत्रों को सारी परिस्थिति समझायी। उसने स्वपुत्रों से कहा—'राष्ट्र, प्रजा, धर्म और संस्कृति—सभी का सर्वनाश हो रहा हो, उस समय व्यक्तिगत पुण्यबल पर रंगराग मनाते रहना उसके जैसा महापराध और कोई नहीं है।' यह बात पुत्रों के दिमाग में जम गयी। उन्होंने प्रलयकारी राजा को सबक सिखाने का निश्चित किया।

www.yugnirdhan.com

छ युवकों की तीन टुकडियाँ निश्चित की गयीं। पहले दो युवक तैयार हुए। माताने उन्हें कंसार—भक्षण कराया। उत्तम वस्त्रों से सजाये। माता की आशिष ले, वे राजमहल की ओर चल पडे। किले के पास आते ही चौकीदारोंने रोके। राजा से भेंट करने की बात पहरेगीरोने मान्य न की। आमने—सामने विवाद हो चला। उसमें से हाथापायी शुरू हो गयी। आखिर में दोनों युवक आहत हो गिर पडे। मरने से पहले दोनों ने अन्तिम वाक्य पुकारे—'अन्याय का नाश करो।'

दूसरे दिन अन्य दो युवक तैयार हुए। उसी प्रकार माता के आशीर्वचन पाकर, वे दोनों किले के पास पहुँचे। चौकीदारों के साथ घमासान लड़ाई छिड गयी। अन्त में वे भी उन्हीं अन्तिम पुकारों के साथ मर चुके। तीसरे दिन तीसरी टुकडी के दो युवक आये। हजारों लोग इन बलिदानों को अकथ्य वेदना के साथ देख रहे थे। उनकी आत्मा अकुला रही थी। उनके शीत रक्त में गर्मी झलकने लगी।

दोनों युवकों को किले की ओर जाते देख, सभीने एक आवाज से कहा "धन्यवाद है उस स्त्री को। प्रजा की सुखशान्ति के लिये अपने अन्तिम दोनों भी बलि के रूप में पुत्रों को अर्पित कर रही है।"

सारे नगर में खलबली मच गयी। चौथे दिन राजा ने लडकों की माता को बुलवायी। भरी राजसभा में उस माता के साथ मजाक उडाने में उसे जरा भी संकोच न हुआ। खुशामतखोर भी राजा के मुँह के सामने देख, मजाक उडाने लगे। राजाने कहा-"बाई, क्या तुम्हें पता नहीं है कि मेरे पास राज्यसत्ता है? तुमने क्यों अपने तमाम पुत्रों को मरवा डाले?"

सरकारी अधिकारियोंने भी हाँ में हाँ मिलायी।

वीर पुत्रों की जननी, नमकहराम मानवों की इस खुशामतखोरी देख तमतमा उठी। उसने राजा से कहा-"मेरे बेटों ने प्रजा के लिये इसलिये अपने प्राणार्पण किये हैं कि वे शेरनी के बच्चे थे। इन सारे तुम्हारे खुशामतखोरों से मैं यह कहना चाहती हूँ कि तुम जल्द अपने अपने घर चले जाओ। तुम्हारी माताएँ एवं पत्नियाँ, तुम्हारे पर थूँकने के लिये, घरके द्वार पर खड़ी प्रतीक्षा कर रही हैं। वे सब बता रही है कि हमारे बेटोंने ऐसे भव्य बलिदान क्यों नहीं दिये। सचमुच हमारे पुरुष कायर पैदा हुए हैं!"

आगे चलकर उसने कहा-"मेरे सिंह जैसे पुत्र तो मिट कर भी स्वर्ग में सम्मान के अधिकारी होंगे, लेकिन तुम लोग तो जीते जी भी अपमानित होते रहोगे। इतिहास की भावि पीढियाँ, इस शताब्दी की निर्माल्य प्रजा की घोर निंदा करेंगी।"

स्त्री की ये बातें सुन राजा आगबबूला हो ऊठा। उसने उस स्त्री को कारावास में डाल दी। हँसते मुँह उसने कारावास में निवास किया।

www.yogpradhan.com

दूसरे ही दिन, नगरभर में राजा के विरुद्ध प्रजा में विद्रोह फूट पड़ा। राजा पदभ्रष्ट हुआ। किसी शत्रुने जंगल में ले जाकर उसका शिरच्छेद कर दिया।

उस वीर जनेता के शब्दों को याद करते नागरिक आज भी पुकारते हैं कि–" मेरे बेटे तो शेरनी के बच्चे थे।"

(११०) सावधान, कहीं कच्चा न रह पायें।

(आर्यावर्तकी प्रजा की सारी मर्यादाओं को चकनाचूर कर दे ऐसा जमानावाद का कातिल वातावरण फैला पड़ा है। सर्वनाश के इस बवंडर में से शायद ही कोई बच पाये हम क्या लेने चले थे, और हमने क्या पाया ? हानि–लाभ का कोई अंदाजा तो निकाले। यह तो सामान्य लाभ हेतु सर्वनाश के नियम–सा महसूस हो रहा है। भगवान ही जाने सर्वनाश की आँधीने क्या क्या नुकसान नहीं किया। यह बात इस प्रसंगकथा से आपको ज्ञात होगी।)

सौराष्ट्र का एक गाँव। ८००–९०० आदमियों की आबादी होगी वहाँ की।

परंपरागत विरासत के रूप में लगातार प्राप्त होते रहे आर्य-संस्कृति के गौरव तत्व उस गाँव की वृद्धाओं और वृद्धों के मुँह पर झलकते थे।

लेकिन जमाना का असर, रेडियो, स्कूल, अखबार आदि द्वारा वहाँ जा पहुँचा था। नयी पीढी के मासूम बच्चों को, जमानावाद की इस ज्वाला ने चारों ओर से लपेट रखे थे।

उस गाँव की एक कन्या की बात है। नाम था उसका रामु।

www.yugpradhan.com

रामु युवती बनी। कालिज में भर्ती हुई। पास वाले किसी शहर से वह "अप–डाउन" किया करती थी।

बेचारे रूढिचुस्त माँ–बाप! पुत्री के बाहरी दिखावे के चक्कर में फँसे। उसकी ज्ञान–विज्ञान की बातों में आ गये। सारे गाँव में अपनी बेटी की प्रशंसा करते उनका जी अघाता न था।

एक दिन पता चला कि रामु किसी के घर जा पत्नी के रूप में बैठ गयी है। पति था दरजी का लडका। उसकी कालिज का सहाध्यायी। दैनिक परिचय से प्रणय हुआ और दोनों ने घरसंसार जोड लिया।

पुत्री के माता–पिता पर वज्राघात हुआ। लेकिन जमाने से परिचित आदमियों ने जमाना समझ कर आश्वासन दिलाया।

www.yugpradhan.com

दरजी युवक पासवाले गाँव में ही बसता था। बड़ा संस्कारी और मातापिता का भक्त था। मानो आधुनिक श्रवण ही। थोडे दिनों तक तो ठीक चलता रहा।

लेकिन एक दिन बात ही बात में रामुने बात छेडी कि–"मुझे ऐसे गाँव में जचता नहीं। उपरान्त सास–ससुर की दासी बनने के लिये मैं यहाँ नहीं आयी। अतः इस गाँव को छोड हम बडे शहर में चले जायें।"

दरजी युवक ने तपाक से जवाब दिया–"वह कभी नहीं हो सकता। पिता मेरे लिये भगवान स्वरूप हैं। और माँ मेरी भगवती हैं। उनकी सेवा करना यह मेरा आजीवन व्रत है।"

रामु समझ गयी कि यहाँ उसकी एक चलने वाली नहीं। उसके लिये शहर के विलास और रंग–राग, शहरी नवयुवकों की सौबत, मुक्त जीवन, मुक्त सहचार, बेरोकटोक का जीवन गाँव में प्राप्त

करना असंभव था। स्वप्न में भी इसकी कल्पना यहाँ रहते हो नहीं सकती थी।

जमाने के विषाक्त वातावरण को इस दास बनी युवतीने मन ही मन सारा आयोजन कर लिया।

दूसरे दिन वह मैके चली गयी। उसके छोटे भाई छगन से, उसने रोते हुए सारी बातें बताकर कहा–"भाई मेरे, मुझे किसी भी तरह इस कारागार से बचा लो।"

खूब सोचने पर पति का ही खात्मा कर देने का निर्णय किया गया। दूसरे ही दिन छगन बहनोई के पास पहुँचा। उसे घर आकर, अपनी बहन को ले आने की प्रार्थना की। लेकिन उसके जीजाजीने कहा–तुम्हारी बहन भले ही अभी मैके रहे। वापस आने की क्या जल्दी है?"

फिर भी आग्रह कर छगन जीजाको घर ले आया। दूधपाक–पूडी का भोजन हुआ। रात हुई। बातें करते सभी सो गये। मधरात हुई। रामु और छगन दोनों भाई–बहन उठे। विष का कटोरा तैयार कर दरजी युवक के पास पहुँचे। गहरी नींद में से उसे जगाया। छगनने कहा–"जीजाजी, इस ग्लास को पी लो!"

दरजी ने कहा–'लेकिन बात क्या है, वह तो मुझे समझाओ मुझे कुछ पीना नहीं है। मुझे जगाया क्यों?'

छगन ने कहा–"ग्लास पीना ही पडेगा। तुम्हें तुम्हारी मौत पुकार रही है। मेरी बहन का जीवन तुमने बरबाद कर दिया है। माँ–बाप के चुस्त उपासक के साथ मुझे अपनी बहन का जीवन बाँधे रखना नहीं। यह जहर का प्याला है और उसे पीना ही पडेगा।"

www.yugpradhan.com

इतना कह, छगन ने दरजी को गरदन से पकड़ा ! बहन मदद में आ पहुँची । दोनोंने मिलकर जबरदस्ती से उसे जहर पिला दिया ।

चिल्लाता दरजी जमीन पर लुढक गया । अभी वह थोडा होश में था । तब बहन ने भाई से कहा—" उसे पूरा खत्म कर देना । कहीं वह कच्चा छूट न पाये ।"

सुबह के चार बजे थे । बैलगाड़ी में दरजी को उठाकर ७ किलोमीटर दूर ले जाकर, किसी गाँव के पास उसे फैंक दिया गया ।

सौभाग्य से उस गाँव में छोटा सा दवाखाना था । डाक्टर का पटावाला आज सुबह जल्द आ सफाई कर रहा था । वहाँ उसकी नजर दरजी पर गयी । वह दौडता उसके पास पहुँचा । जिंदा मालूम होते ही डाक्टर को बुला लाया ।

www.yogpradhan.com

उपचार करने पर दरजी होश में आया । उसका मरण समय का निवेदन (डाईंग डेक्लेशन) तैयार किया गया । उसमें उसके अन्तिम शब्द टूटते–टूटते–से थे । वे लिखे गये–मेरी बहनने उसके भाई से कहा—" देखना, कहीं वह कच्चा छूट न पाये ।" और दूसरे ही क्षण दरजीने प्राणत्याग कर दिया ।

(१११) नारी का तेजोमय सतीत्व

(भूतकाल में हमारे यहाँ सती होने का चाल था । जिस स्त्री के पतिका अवसान हुआ हो, उसकी पत्नी यथाशक्य महासती–साध्वी बन पाती । वह न हो पाये तो सती भी होती । पति के वियोग में चारित्र्य का पतन हो जाय यह भय बना रहता । लेकिन ऐसे कलंकित लंबे जीवन को पसंद करने की अपेक्षा छोटा-सा लेकिन शुद्ध जीवन गुजारना अधिक पसंद किया जाता । सती का रिवाज दूर किया गया ।

अंग्रेजों ने तब शुरू में संमति लेकर सती होने का अपवाद रखा गया था। इस समय की यह कथा है। सती होनेवाली स्त्री के शौर्य की चमत्कृति, आपके हृदय में अनेक स्पंदनों की अनुभूति करायेगी।)

जब सती होने के रिवाज पर अंग्रेजों ने प्रतिबंधक कानून पसार किया, तब विभागीय अध्यक्ष की संमति के साथ सती होने की छुट्टी मिल पाती थी।

कानून का अमल होने के बाद, तीसरे साल लखनौ में २४ साल के नवजवान लक्ष्मणसिंह की मृत्यु हुई। उसके पीछे स्वरूपवती नामक उसकी पत्नी सती होने तत्पर हुई। उस विषय के विभागीय अध्यक्ष के सामने प्रार्थना करने पर विभागीय अध्यक्ष ने उसे अपने कार्यालय में बुलाकर उससे पूछा–" अरे बहनजी, तुम्हारी काया सुंदर, कोमल है। फूल–सी काया को तुम क्यों अग्नि के शरण कर रही हो ?"

स्वरूपवतीने कहा–" हमारे देश की संस्कृति की आपको जानकारी लेनी होगी। हमारी परंपरा में ऐसी पवित्र मान्यता है कि पति की मृत्यु के बाद, उसकी पत्नी की देह मुर्दे के समान है। उसमें से दुर्गंध ही निकल पाये। ऐसी हालत न आये इसलिये या तो वह महासती–साध्वी बन जाय, चाहे फिर वह सती बन पाये। महासती–साध्वी–सा कठोर जीवन गुजार ने की मेरी हैसियत नहीं, इसलिये मैंने दूसरे विकल्प का स्वीकार किया है।

स्वरूपवती के शब्दों में से व्यक्त होता अभय का नाद अंग्रेज अधिकारी के दिल को छू गया। भौतिक जगत की किसी भी शक्ति से भी ज्यादा शक्ति इस नारी की आत्मा में दिख पडती थी।

अफसर ने स्वरूपवती से पुनः पूछा–" बहनजी, मुझे तो ये सारी

बातें उपरी–उपरी मालूम होती हैं। इस प्रकार काया की आहुति दे देना मुझे योग्य–उचित मालूम नहीं होता।"

स्वरूपवती ने तपाक से उत्तर दिया–"तो आप भी सीमा के रक्षक सैनिकों को सीमारक्षा के लिये जो कुछ भी समझाते हैं, वे सारी बातें भी ऊपर–ऊपर की होगी, और कुछ नहीं!"

"महेरबान! अगर मातृभूमि की रक्षा के निमित्त किसी के युवान बेटों के बलिदान दिये जा सकते हों तो, देश की प्रजा के प्राणातिप्रिय उद्धारक माता संस्कृति के एक सर्वाधिक महत्त्ववाले–शील–की रक्षा के लिये नारी क्यों स्वैच्छिक न्योछावरी न करें?" स्वरूपवती के प्रत्येक शब्द में से निर्भयता फूट रही थी।

अधिकारी ने कहा–"ठीक है बहनजी! मुझे तुम्हारी कसौटी तो करनी ही होगी।" बाद में उसने नौकर द्वारा मशाल मँगवाई। उसमें तेल छिडक कर दियासलाई निकाल कर दिखाते कहा–"देखो, अब मैं दियासलाई जला रहा हूँ।" स्वरूपवती यह सब पूरी स्वस्थता से देख रही थी। जरा भी विचलित न हुई। आखिर मशाल जल उठी। सुलगती मशाल देखकर भी उसके के चेहरे पर कोई रेखा तंग न हुई।

अधिकारी ने स्वरूपवती से कहा–"अब इस मशाल पर तुम्हारा हाथ रखो। अगर जरा भी ग्लानि तुम्हारे मुँह पर दीख पडेगी तो तुम्हें सती होने के लिये मैं छुट्टी न दे सकूँगा, यह निश्चित समझना।"

स्वरूपवती ने मशाल पर हाथ धरा। ज्वाला को छुआ....जैसे जैसे हाथ जलता गया वैसे दिव्यातिदिव्य तेज उसके चेहरे पर निखर आया। उसकी आँखों में प्रचंड दीप्ति झलकने लगी। उसके मुँह पर शील का सौन्दर्य चमक पड़ा। अंग्रेज अधिकारी भी उसके साथ नजर न मिला सका। जलते हाथ को देख तुरंत उसने कहा–"रुक जाओ,

बहनजी ! रुक जाओ ! तुम्हारी कसौटी में तुम उत्तीर्ण हुई हो । मैं तुम्हें सती होने की छुट्टी देता हूँ ।"

ये शब्द सुनकर स्वरूपवती को अपार संतोष हुआ और....बड़ी धूमधाम के साथ एक रोज वह सती हो गयी ।

सती होना पसंद करने वाली शीलवंती स्त्रियों के प्रति घृणा व्यक्त करने वाली और 'न्यूवेव' की युवतियाँ ! सर्व प्रथम तो 'अभिनेत्री' होने का अल्हड जीवन जीने की तुम्हारी पसंदगी पर नफरत व्यक्त करना । यदि यौवनखंड कुशीलता की आग में जलनेवाले हो तो, बेहतर यही होगा कि, वे खंड पहले ही पृथ्वी पर से अपना अस्तित्व नामशेष कर ले ।

(११२) एक छोटी–सी भूल !

www.yugpradhan.com

(जीवन की एक छोटी–सी गलती कैसा खतरनाक परिणाम ला सकती है, यह बात आप लोगों को इस छोटी–सी धर्मकथा से अवगत होगी । लेकिन सावधान ! किये गये सत्कार्यों की पुण्यकमाई उस हालत में भी निष्फल बनी नहीं रहती । यह बात भी इसी कथा से अवगत होगी ।)

वे थे जैनाचार्य ! देश–देशान्तर में विहार कर प्रजा के मानसपट पर जैनधर्म का अमीट प्रभाव स्थायी बनाने की जोरदार कोशिशें कर रहे थे । कई शिष्यों के वे गुरुवर थे ।

साधना के विषय में हर तरह से सर्वोत्तम इस आचार्यभगवंत के जीवन में एक विचित्र आदत बनी हुई थी ।

बहुत छोटी–सी, दूसरे को हानि न पहुँचानेवाली वह आदत थी; लेकिन कुटेव बन गयी थी ।

बात ऐसी थी कि, जब भी वे बैठते तब दोनों पाँव ऊँचे उठाकर बैठते और दोनों पाँवों के आसपास पीठ पर लपेट कर एक कपड़ा बाँधे बैठते थे। इस कपडे को वे 'योगपट्ट' कहते थे। छोटे-से और बिलकुल मामूली वस्त्र पर जैनाचार्य की ममता अनहद थी।

वस्तु कैसी है? यह गौण बात है, इस अध्यात्म की दुनिया में।

ममता कितनी है? यही मुख्य बात है। मामूली कपडे की अनहद ममताने जैनाचार्य के दिमाग का पूरा कब्जा कर लिया।

लेकिन अफसोस....! उसी की मूर्च्छा में उन्होंने देहत्याग किया! किसी अनार्य जैसे देश के राजा के यहाँ राजकुमार के रूप में वे अवतरित हुए।

धर्माचरण ज्यादा किया था, अतः राजकुमार ही बनता! लेकिन मूर्च्छा के कारण देश अनार्य मिला। जहाँ सुरा-सुन्दरी आदि का संग सहज माना जाता था।

फिर भी एक बात वहाँ की अच्छी थी। वहाँ के लोग भी धर्म जैसे तत्त्व को स्थूल रूप में माननेवाले थे। कुरान जैसे ग्रंथ को भी अपना प्रिय ग्रंथ समझते थे।

दूसरी ओर उस जैनाचार्य के शिष्य, गुरुजी के विरह के कारण तप, जप और संयम की साधना में अधिक लीन हुए। उस अध्यात्मके बल पर उन्हें विशिष्ट उच्चकोटि के 'अवधि' और 'मनःपर्यव' नामक दो ज्ञान प्राप्त हुए। उस ज्ञानबल के प्रताप से उन्होंने अपने गुरुदेव का राजकुमार के रूप में समग्र जीवन के दर्शन किये और भारी वेदना की टीस मुँह से निकल पड़ी।

उपकारी का उपकार कभी निष्फल नहीं होता, सिवा उसका

पतन.....इस समय उपकारी धर्मगुरु के उपकार का बदला देने का मौका था। पतन की गति में से उन्हें बाहर निकालना था।

मुनियों ने यथासमय विहार किया। अनार्य देशकी सीमा शुरू होते ही, तमाम मुनियोंने अ-प्रासुक-अन्नजल की असंभवितता के कारण, अन्नजल का त्याग किया। मुनिजीवन के वेशको छिपा रखा। विहार का काम आगे चला।

प्रत्येक नगर में कुरान की पंक्तियाँ पर विद्वान मुनि बोध किया करते थे। उससे हजारो लोग उनके प्रति आकृष्ट हुए। ऐसे उपवासी मुनि राजकुमार के नगर में आ पहुँचे। राजकुमार को भी उसी प्रकार आकृष्ट किया। जन्मांतरके संस्कारवश राजकुमार ज्यादा आकृष्ट हुआ।

एक रोज उन मुनियोंने राजकुमारको, मुनिजीवन की सामग्री-ओघ, तरपनी, पात्र, आदि-बतायी।

www.yugpradhan.com

राजकुमार को इस सामग्री के दर्शन मात्र से अपने पूर्व जन्मका ज्ञान हुआ। उनका अज्ञान दूर हुआ। योगपट्ट ऊपर की मूर्च्छा ने जो सत्यानाश किया था, यह उसने प्रत्यक्ष देखा।

ज्ञानी-प्रतिबुद्ध हुए राजकुमारने, मुनियों से प्रार्थना की कि सीमा पर वापस लौटकर वहाँ उपवास छोडे और भोजन लें। मुनि देशकी सीमा पर आये। भोजन किया। राजकुमार भी सीमा पर पहुँच गये।

जन्मान्तर के अपने ही शिष्य, अब अपने ही गुरु बन गये हैं।

इतिहास का यह अजीब प्रसंग था। राजकुमार ने मुनिजीवन का स्वीकार किया और उसी मानवजन्म में बिगडी बाजी सुधार कर अपना आत्मकल्याण कर लिया।

(११३) मुझे दौलत नहीं; पुण्य चाहिए।

(आर्य देश की धरती का कैसा प्रभाव है कि इस देश के राजा, श्रीमंत और विद्वान भी, संपत्ति के पीछे दीवाने हो तो भी पुण्यप्रसंग सामने आएँ तो, संपत्ति आदि के मोह को ठुकरा देते। पाटन के राजाधिराज सिद्धराज की यह कथा, तुम्हें प्रेरणा देगी, ऐसी श्रद्धा के साथ यहाँ पेश है।)

पाटन का वह राजाधिराज सिद्धराज जयसिंह। उसके ख्यातनाम मन्त्रियों में एक मंत्री था सज्जन। जैनधर्म के वे कट्टर अनुयायी थे। राज्य का महसूल विभाग उनके अधिकार में था।

एक बार किसानों के लिये वर्ष अच्छा रहा। तब सज्जन मंत्रीने एक साथ कर के रूप में बारह करोड़ सोनामुहरें इकट्ठी कर लीं। महसूल इकट्ठा कर, मन्त्री गिरनार तीर्थ की यात्रा के लिये गये। तीर्थस्थान को देख, अपने आपको दुत्कारने लगे। वे मन ही मन सोचने लगे—"मेरे जीते जी यदि ऐसे पवित्र स्थान की बरबादी हो तो मेरा जीवन जानवर से भी बदतर है।"

कुछ ही क्षण में मन्त्रीने तीर्थ के जीर्णोद्धार का निर्णय कर लिया और देखते ही देखते चंद रोज में तीर्थ स्थान निखर आया। साढे बारह करोड सोनामुहरों का व्यय इस जीर्णोद्धार में लगा दिया। उन्हें विश्वास था कि बाद में यह रकम दानवीर जैनों के द्वारा इकट्ठी कर, राज्य के खजाने में जमा कर दी जायेगी।

लेकिन किसी द्वेषी ने सिद्धराज को सज्जन मंत्री के विरुद्ध भडकाया। राज्य की रकम का, अपनी बिना किसी सूचना के व्यय किया गया, उसे सिद्धराज ने प्रजाद्रोह—विश्वासभंग समझा। राजसभा में सरे—आम सिद्धराज ने, सज्जन मंत्री से स्पष्टता करने को कहा। मन्त्री ने

बताया—" सात ही दिनों में सारी रकम राज्य के खजाने में जमा कर दी जायेगी।"

बाद में अधारोही हो, रूपये इकट्ठे करने के लिए गाँव-गाँव को छान मारा। घुमते-घुमते गिरनार के पास वंथली गाँव पहुँचे। गाँव के सेठियों को इकट्ठे किये। फंड के बारे में विचारणा जारी थी। उस समय बीच में ही, जिसे सभी 'साकरिया' से संबोधित करते थे, उन्होंने खड़े होकर प्रार्थना की कि—" रकम इकट्ठा करना छोड़ दें और सारा मौका श्रीसंघ मुझे दें। और मंत्रीश्वर मेरे यहाँ भोजन करने पधारें।"

उटपुटांग से लगते बनिये की यह बात सुन, सभी चकित रह गये।

www.yugpradhan.com

लेकिन साकरिया बनियेने मंत्रीश्वर का ठाठ-माट से स्वागत कर उन्हें घर के नीचे भोंयरे में ले चला और तैयार रखी साढे बारह करोड सोनामुहरों की थैलियों को ले जाने की प्रार्थना की।

सज्जन मंत्री तो यह सुन, देखते ही रह गये।

सातवें दिन सज्जनने सिद्धराज से कहा—" एक बार नवनिर्मित गिरनार तीर्थ के दर्शन के लिये पधारें। बाद में और सब कुछ।"

सिद्धराज गिरनार गये। देव विमान-से गगनचूँबी जिनमंदिरों को देख राजा दंग रह गये। " मेरे राज्य का ऐसा सर्वोत्तम गौरव चिह्न!" उनका मन आनंदविभार हो ऊठा।

मंदिरों की परिक्रम्मा कर, दोनों बाहर आये। आसमानमें उड़ती ध्वजाओं का इकटक दर्शन करते हुए महाराजा सिद्धराज से मंत्रीश्वर सज्जन ने कहा—" राजन्! यह है आपके राज्य के गौरव—

शिखर ! अनेक भाविक जन यहाँ आऐंगे और परमात्मा की भक्ति में ओतप्रोत हो विपुल पुण्य का संचय करेगा। इस मंदिर के निर्माता—भाग्यवंतों और उसका जीर्णोद्धार करनेवाले दाताओं को पुण्य का भारी हिस्सा नसीब होगा।"

"राजाधिराज ! साढे बारह करोड सोनामुँहरों की संपत्ति, अमानत के रूप में पड़ी है। राज्य के खजाने में उसे जमा कर देने से पहले, मुझे आप से इतना ही पूछना है कि आपको सोनामुहरें चाहिए या पुण्यलाभ ! राजन् दोनों का लाभ होना असंभव है।" हँसते हुए मंत्रीश्वर ने कहा।

यथा—समय मंत्रीश्वर का हुआ सूचन सफल रहा। "सज्जन ! पैसे लेकर, पुण्य गँवाये ऐसा बेवकूफ यह सिद्धराज नहीं हो सकता। नहीं...सज्जन ! मुझे पुण्य दे दो, पैसे मुझे नहीं चाहिए।" महाराज सिद्धराजने तुरंत ही कह दिया।

"तो जैसी आपकी भावना ! आपकी आज्ञा शिरसावंद्य करता हूँ।" मंत्रीश्वर सज्जनने जवाब दिया।

नवनिर्मित धवलशिखर और उनके ऊपर लहराती पताका को, सिद्धराज आत्मीय भाव से देखते रहे। वे स्वगत बोले—"धन्य दिन !"

"पैसा इस संसार के लिये !"

"पुण्य परभव के लिये !"

पैसे दिये, पुण्य—कमाई की। मंत्री मिले तो ऐसे ही मिलो।

राजा और मन्त्री दोनों घुडस्वार हुए और घोडों को दौडाते हुए पाटन की ओर चल पडे।

www.yugdhan.com

(११४) गुणानुरागी बनें !

(अजैन इतिहास पर आधारित)

रामचंद्रजी के समकालीन दो ऋषि थे । वसिष्ठ और विश्वामित्र । वसिष्ठ थे ब्रह्मर्षि, विश्वामित्र थे राजर्षि ।

क्या पता, कई दिनों से राजर्षि विश्वामित्र को 'ब्रह्मर्षि' पद प्राप्त करने की लालसा जगी थी । उसके लिये वसिष्ठ को खुश करने की अनेक कोशिशें उन्होंने की । लेकिन वे महसूस कर रहे थे कि वसिष्ठ कदापि उन्हें ब्रह्मर्षिपद देंगे नहीं ।

पदवी लेने की लालसा बढती चली, वैसे चित्त में अशान्ति भी उमडती चली । विश्वामित्र की नींद हराम हो गयी । इन्हीं विचारों में विश्वामित्र मानसिक स्वस्थता भी गँवा चुके । रात में भी आश्रम में चक्कर काटते हुए प्रलाप करने लगे ।

www.vgpradhan.com

एक रात उन्होंने भयानक विचार किया । वे झल्लाये, " मनुष्य की सहन शक्ति की भी एक मर्यादा है । कब तक मैं पदप्राप्ति की प्रतीक्षा किया करूँ ? ठीक है, वह अनाडी बूढा मुझे ब्रह्मर्षि की उपाधि दे, यह असंभव है । अब उसे खत्म कर देना ही उचित होगा । यदि मैं 'ब्रह्मर्षि' नहीं, तो दुनिया में कोई और ब्रह्मर्षि भी न रहेगा । "

ऐसा दृढ संकल्प कर, एक रात हाथ में खंजर उठाकर, वसिष्ठ ऋषि के आश्रम की ओर चल पडे ।

पूर्णिमा की चाँदनी रात थी । चाँद पूरा खिल पाया था । ब्रह्मर्षि वसिष्ठ की कुटिया के पास आकर विश्वामित्र खडे हो गये । कुटिया में देखा तो बाहर के बरामदे में वसिष्ठ और अरुन्धती दोनों सोते बातें कर रहे थे ।

दोनों की बातें सुनने के लिये विश्वामित्रने कान लगाये ।

माता अरुन्धती ब्रह्मर्षि से पूछ रही थी कि आसमान में चाँद कैसा चमक उठा है ?

ब्रह्मर्षिने कहा–" हाँ....हाँ....मुझे भी वैसा ही दीख रहा है । कितना आह्लादक वातावरण है ?"

कुटिया की दीवार को टेक कर खडे विश्वामित्र यह वार्तालाप सुन रहे थे । थोडी देर निःस्तब्ध शान्ति फैली ।

पुनः अरुन्धतीने कहा–" मुझे यह तो बतायें कि, इस चाँदनी की चमक बराबरी किससे की जा सकती है ?

तुरंत ही महर्षि वसिष्ठने कहा–" राजर्षि विश्वामित्र के उग्र तपस्याके साथ ! जैसे राजर्षि विश्वमित्र की तपस्या चमक रही है, ठीक वैसी यह चाँदनी है ।"

www.yugpradhan.com

और यह क्या ? ये शब्द सुनते ही विश्वामित्र के हाथों में पकड़ा खंजर सननन....से जमीन पर आ गिरा । विश्वामित्र दौडते वसिष्ठ पास पहुंचे । पोंवों में गिरकर रुदन के स्वर में बोले–" मुझे क्षमा करें, ब्रह्मर्षि ! मुझे क्षमा दें । मैं ब्रह्म–हत्यारा हूँ, अपराधी हूँ । मुझे खत्म कर दें ।"

खँजर की आवाज से ही सब कुछ अवगत करनेवाले ब्रह्मर्षिने आँखों में से प्रेमवर्षा करते हुए कहा–'राजर्षि ! जरा भी विचलित न हो, कुछ भी नहीं बन पाया है । इस संसार में ऐसा ही चलता रहता है !'

" ब्रह्मर्षि ! क्या आप यह नहीं जानते कि मैं यहाँ आपकी हत्या करने आया हूँ । ब्रह्मर्षि–पद प्राप्त नहीं होता था इसलिए हाय, मैं कितना अभिमानी हूँ !"

"राजर्षि ! आज ही मैं आपको ब्रह्मर्षि–पद पर प्रतिष्ठित करूँगा। मैं इसी धन्य क्षण की प्रतीक्षा में था। जिस क्षण आपकी ब्रह्मर्षि होने की वासना जल कर भस्मीभूत हो चुकी हो।"

"राजर्षि ! जो जिसकी अभिलाषा कर रहा है, वह उसके लिये नालायक–अपात्र है !"

और उसी समय विश्वामित्रको वसिष्ठने "ब्रह्मर्षि" पद पर आरूढ कर दिये।

वाह ! गुणानुराग का कैसा वशीकरण है !

(११५) पुण्य का आकांक्षी राजा।

www.yugpradhan.com

पाटन के राजा सिद्धराज ! उनके जीवन में दोनों रस दीख पड़ते हैं। भोग और रंग–राग के वे आशिक थे और धर्म के चुस्त पालक भी।

सुख के वे आकांक्षी और पुण्य के भी चाहक थे।

एक समय राजकाज ज्यादा न था। तीर्थयात्रा करना सोचा। मंत्रीश्वर सान्तनु को बुलाकर राज्य का सारा कारभार उसके हाथों सौंप, राजा तीर्थयात्रा के लिये चल पड़े।

मालवपति को गुप्तचरों के जरिए मालूम हुआ कि सिद्धराज तीर्थयात्रा करने चले हैं और हाल में पाटन निराधार स्थिति में हैं। पाटन पर आक्रमण करने का ऐसा सुवर्ण-अवसर मालवनरेश क्यों गँवा देता। तुरंत ही युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो चुकी।

यकायक मालवपति ने पाटन के किले को घेर लिया। मंत्रीश्वर सान्तनु अत्यंत विचक्षण मंत्री थे। गुप्तचर द्वारा दुश्मन की शक्ति का

उन्होंने अंदाजा लगा लिया। महाराजा सिद्धराज के नेतृत्व के बिना, पाटन का सैन्य शत्रु के साथ खुलकर मुकाबिला करे यह असंभव था।

'तो क्या शहीद बनें?' मंत्री के दिल में इस बातने जोर किया।

लेकिन उसका दयालु अंतर पुकार उठा—"ऐसा करने से क्या फायदा? घोर पराजय हो और खून की नदियों में पाटन के प्रजाजनों की असंख्य लाशों के ढेर लग जाय....नहि....! नहि...! महाराजा सिद्धराज के आने के बाद ही युद्ध का आखिरी निर्णय किया जाय। हाल में तो रक्तहीन संधि किसी भी हालत में कर लेना अच्छा होगा। उसी में प्रजा का हित निहित है।"

सान्तनु ने मालवपति से संधि—संदेश भेजा।

www.yugpradhan.com

मालवपति ने बताया कि—"मुझे तुम्हारी संपति से वास्ता नहीं। मुझे चाहिए सिर्फ महाराजा सिद्धराज ने किये असंख्य धर्मकार्यों का सारा पुण्यलाभ! यदि वह सारा पुण्यफल मुझे प्राप्त हो जाय तो मै बिना रक्तपात किये अपने देश में वापस लौट जाऊँगा।"

चालाक सान्तनु ने मालवपति की माँग का स्वीकार किया। संधि का श्वेत ध्वज लहराया गया।

मालवपति सान्तनु के यहाँ महेमान बने। पूरे आदर—संमान के साथ आतिथ्य किया गया। भोजनादि से निपटने पर मालवपति ने सान्तनु से सिद्धराज के पुण्यफल की माँग की।

सान्तनु ने कहा—"लीजिए, हमारे राजेश्वर के सारे पुण्य को तुम्हें समर्पित किये देता हूँ।" प्रसन्न होकर, मालवपति बिदा हुए।

इस बात का तीर्थभूमि में सिद्धराज को पता चला।

सिद्धराज सान्तनु पर आगबबूला हो गये। जब पाटन वापस लौटे, तब स्वागत करने आये सान्तनु के मुँह पर नजर तक न डाली।

दूसरे ही दिन, सान्तनु ने मंत्रीपद से राजीनामा पेश किया। थोडे ही महिनों में राज्य में अराजकता फैल गयी। उसे काबू में लेने के लिये विवश होकर, सिद्धराज ने सान्तनु को बुलाये।

भूतकाल की आलोचना हुई। राजा ने सान्तनु से कहा– "सान्तनु! तुमने मालवपति को सारा राज्य धर दिया होता तो भी मुझे दुःख न होता जितना तुमने मेरे किये सारे धर्म कार्यों का पुण्य बल का फल सारा का सारा उसे दे दिया–उससे हुआ है। इसी कारण मैंने तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार किया था।"

www.yogpradhan.com

सान्तनु कहा–"यह बात मुझे उसी समय बतानी चाहिए थी। खैर, आज मैं आप के चरणों में आप की धर्मप्रेमी प्रजा का सारा पुण्यबल अर्पित किये देता हूँ। आप उसका स्वीकार करें।"

हँसते हुए राजाने कहा–"अरे ऐसे किसी के कह देने मात्र से थोडा ही दूसरे का पुण्य मिल जाता है? तुम भी कैसी अनाडी–सी बातें बता रहे हो?"

'तो फिर आप का सारा पुण्य मैं मालवपति को 'सौंपा" इतना कह देने मात्र से मालवपति को मिल जायेगा क्या? कभी नहीं।" सान्तनु ने हँसते हुए, सिद्धराज से कहा।

और सिद्धराज की आँखें खुल गयीं। सान्तनु उपर का उसका क्रोध शान्त हो चुका। यकायक उठकर वे सान्तनु से लिपट गये। में उसकी अंगुलियों मंत्रीमुद्रा पहना दी।

(११६) आज करे सो अब

(धर्माचरण तो दृढ़ निर्णय के साथ शुभस्य शीघ्रं जैसी बात है। 'आज से शुरू करें या कल?' ऐसी दुविधा में पड़े जीवात्मा, कभी धर्माराधन कर नहीं पाते। वह तो कल भी नहीं आज भी नहीं, अभी इसी समय उपयोग में लाने की बात है। कल क्या जाने क्या हो?

इस शाश्वत सत्य का परिचय, आप को इस छोटी-सी घटना से अवगत होगा।)

इस अवसर्पिणी काल में, इस भरतक्षेत्र में जो चोवीस तीर्थंकर प्रादुर्भूत हुए, उनमें से तीसरे तीर्थंकर परमात्मा संभवनाथ स्वामीजी के धर्मशासन के समय में घटित यह घटना है।

www.yugpradhan.com

कैवल्यज्ञानी किसी भगवंत की देशना सुनकर, नगर के धनाढ्य किसी सेठजी का बालपुत्र संसार से विरक्ति ले बैठा। जैसे जैसे धर्म कथाएँ सुनता चला, वैसे वैसे विरक्ति की आग धमकने लगी।

एक दिन उस बालक ने अपने पिताजी से कहा कि "मुझे संसार त्याग कर दीक्षा का अंगीकार करना है। आप मुझे हार्दिक रूप में, आशीर्वचन के साथ दीक्षा दिलाये।"

पुत्र की इस धर्मिष्ठ भावना से अवगत हो, धर्मिष्ठ पिता की आँखों में से हर्षाश्रुकी बूँदें टपकने लगीं। वे मन-ही-मन बोले-"मेरे वंश का उजागर एक दीपक चमका तो सही।"

इस बात को सुन माता भी रोमहर्षित हुई। वह कहने लगी कि-"अब मैं रत्नगर्भा माँ सही अर्थ में हुई।"

पिता ने पुत्र से कहा-"बेटा! तुम्हारा संकल्प सुन हमें इतना आनंद हुआ है कि जिसका वर्णन अशक्य है। लेकिन तुम्हारे लिये

दीक्षामहोत्सव धामधूम से हम पार करेंगे। अतः थोडे माहों के लिये रूक जाओ। तब तक में हम भव्य महोत्सव की तैयारियाँ कर पायें।"

लेकिन हृदय में उद्वेलित वैराग्य-भावना यह विलंब कैसे गुजर करती। पुत्र ने कहा-"पिताजी! पिताजी! अब एक दिन तो क्या, पल मात्र के लिये मोह की आगमें जलते इस संसार में रहना नहीं चाहता। फिर भी उस ज्ञानी गुरुदेव के पास हम जाएँ और इस बात का निर्णय करें।"

विचक्षण पुत्र की प्रार्थना का स्वीकार कर, उसके सभी अभिवाचक सर्वज्ञ-भगवंत के पास पहुँचे। वंदनादि विधि कर, पिता ने अपने बेटे की दीक्षा लेने की अभिलाषा व्यक्त की, साथ ही महोत्सव-आयोजन के लिये थोडे समय की प्रतीक्षा करने की भावना भी व्यक्त की।

www.yogpradhan.com

सर्वज्ञ भगवंत ने, अपने निजी ज्ञानप्रकाश के द्वारा यह अवगत कर लिया कि, इस बालक का थोडे घंटों के लिये ही आयुष्य अवशिष्ट है।

उन्होंने बच्चे के पिता से कहा-"मा पडिबंध कुणाह।" भाग्यवंत जीव! जब तुम्हारे पुत्र के दिल में, वैराग्य की भावना सहज रूप में उत्पन्न हुई है तब पुण्यशाली जीवात्मा को ही सुलभ सौभाग्यप्राप्ति के अवसर पर विलंब उचित नहीं है। महोत्सव निमित्त विलंब करना, यह बालक के लिये हितकर नहीं!"

कैवल्यज्ञानी भगवंत के ये वचन सुनते ही, मुमुक्षु पुत्र तो अपनी अभिलाषा की पूर्ति होती देख, फूला न समाया पिताने भी गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य की।

दूसरे दिन भागवती दीक्षा की भव्यातिभव्य दीक्षायात्रा संपन्न हुई।

दीक्षायात्रा समाप्त होते ही, बाल-मुमुक्षु सुशोभित दीक्षामंडप में प्रविष्ट हुआ।

दीक्षाप्राप्ति का क्रियाकाण्ड शुरू हुआ। मंत्रोच्चार के साथ कैवली भगवंत महोदय ने बाल-मुमुक्षु के हाथ में रजोहरण वस्त्र दिया। मुनिजीवन-साधुजीवन के प्रतीकरूप इस रजोहरण को लेकर, मुमुक्षु आनंदविभोर हो झूम झुठे। नृत्य के समय, सहसा वे नीचे गिर पडे और गिरते ही उनके प्राणपंखेरू चल पड़े।

इस अकल्प्य परिस्थिति से उसके मातापिता हतप्रभ हो, बेहोश हो गिर पडे।

जलसिंचनादि द्वारा उन्हें शुद्धि में लाये गये। तब वे दोनों फूट फूट रोने लगे।

www.yugpradhan.com

कैवली भगवंत ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि-"ऐसा कल्पान्त न करें। अप्रत्याशित कुछ भी नहीं हो पाया। आपके इस सुपुत्र के आयुष्य की अवधि इतनी ही थी। उपरान्त उसने तो शुभ भावों के उद्रेक की स्थिति में प्राणत्याग किया है। वह देवात्मा हो चूका है और चंद मिनटों में ही यहां आ दर्शन देगा।"

यह वार्तालाप जारी था, वहीं देवात्मा आकर खडे हो गये। कैवली भगवंत ने उन्हें वंदनादि किया। पूर्वजन्म के अपने मातापिता से उन्होंने कहा-"आप जरा दुःख न मनाएँ। मेरी सद्गति हो पायी है। यदि आपने इन कैवली भगवंत की प्रेरणा से प्रेरित हो, यथाशीघ्र दीक्षादान में विलंब किया होता तो किसी अन्य चित्तवृत्ति की दशा में प्राणत्याग कर मैं कहीं का न रह पाता! इन भगवंत ने मुझ पर असीम कृपा की है!"

यह सुन मातापिता आश्वस्त हुए।

(११७) जैनाचार्य अभयदेवसूरिजी

आचार्य भगवंत श्रीजिनेश्वरसूरिजी के वे सुविनीत प्रिय शिष्य थे। धारानगरी के निवासी किसी धनाढ्य जैन वणिक के वे पुत्र थे। रूप, गुण, मेधाशक्ति, तीनों का उनके जीवन में सुभग समन्वय हुआ था। वह भी सविशेष रूप में, न कि सामान्यतया।

गुरुदेव की वैराग्यसभर देशना–उपदेश सुन उस नवयुवक ने दीक्षा ली। गुरुभक्ति को अपने जीवन का गुरुमंत्र बनाकर तप, जप और स्वाध्याय की साधना में दत्तचित्त–एकाग्रचित्त हो बैठ गये। परिणामस्वरूप, थोडे ही समय में प्रकाण्ड विद्वानों की पंक्ति में स्थानापन्न हुए। उनकी व्याख्यान शैली और शक्ति की चारों ओर भारी बोलबाला रही। कई मुनियों को भी वे प्रवचनसार सिखाते रहे।

www.yugpradhan.com

एक रात की घटना है। प्रतिक्रमण की क्रिया के बाद, मुनियों को वे अजित शान्ति स्तवनों के अर्थ समझा रहे थे। उसमें प्रसंगोपात्त शृंगाररसके वर्णन का अवसर भी आया। पास में ही अन्तःपुर था। राजरानियों और राजकुमारियों का उसमें निवास था। इस बातका खयाल किसी को न रहा। मुनिवर अभयदेवने तो शृंगाररसका विशिष्ट ढंग से वर्णन शुरू किया। साथ ही मृदु कंठ से उस स्तवन का गान भी किया। अन्तःपुर में रही एक राजकुमारी तो इस स्तवन से आकृष्ट हो, अन्तःपुर छोड उपाश्रय में ही आ बैठी।

शृंगार के समर्थ वेत्ता उन मुनिवर को ही अपना प्रियतम मन–ही–मन समझ बैठी। उसके आगमन का पता चलते ही, अभयदेव मुनि शीघ्र ही सावधान हो गये और तुरंत ही काया के बिभत्सरस का ऐसा कुत्सित वर्णन किया कि, राजकुमारी वहाँ से उठ भाग खडी हुई! मुसीबत टल गयी, देख सभी मुनियों को आत्मसंतोष हुआ।

एक बार व्याख्यान में वीररसका अभयदेवसूरिजीने प्रभावोत्पादक वर्णन किया कि क्षत्रिय श्रोताजन वहीं तलवार खींच खडे हो गये।

इन दो प्रसंगों के कारण गुरुदेव चिंतातुर हो गये। उन्होंने देखा कि इस मुनिके संयमी जीवन पर खतरा उपस्थित हुआ है।

एक दिन अपने हृदयकी व्यथा–चिंता से परिचित कर, उसकी कुशाग्रबुद्धि की तीव्रता कम करने के लिये, ज्वार और दहीं के अतिरिक्त, भोजन में कुछ भी न लेने की प्रेरणा दी।

दूसरे ही क्षण सुविनीत शिष्यने, उस प्रेरणा को, आजीवन प्रतिज्ञा में उसे परिणत कर ली। गुरुदेव को भारी प्रसन्नता हुई। उन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये गये।

www.yogpradhan.com

थोडे समयके बाद, गुरुदेवका अवसान हुआ। दूसरी ओर ज्वार और दहीं के सेवन के कारण आचार्यदेव श्री अभयदेवसूरीजी के सारे शरीर में कुष्टरोग फैल गया। उतना ही न सही, उनकी शारीरिक स्थिति विषम और व्याकुल बन पड़ी।

एक रोज उन्होंने सोचा कि जब काया से कोई काम अब संभव नहीं रहा, तो उसे निभाते रहने से फायदा क्या? वैद्य लोग औषध-सेवनका लगातार आग्रह करते रहते हैं, जिससे रोग की शान्ति हो; लेकिन मेरी प्रतिज्ञा का क्या? गुरु की आज्ञा कहाँ? इन सबके अपेक्षा तो, अनशन के द्वारा देहत्याग करना ही उचित माना जाय।

आखिर, खंभात के पास समुद्र से जुडती शेढी नदी के तट पर अनशन करने के लिये चल पडे। वहाँ पहुँच, जैसे ही अनशन की प्रतिज्ञा करते है, वहीं देवी पद्मावतीजी प्रत्यक्ष हुई और उन्हें प्रतिज्ञा करने से रोकते हुए कहा–"सूरिजी! इस प्रकार देहत्याग न करे।

आपकी मेधाशक्ति तीक्ष्ण है। पूज्य शीलगुणसूरिजी चरित ११ अंगों की टीका–टिप्पणी के दो ही ग्रंथ उपलब्ध हैं। अतः अवशिष्ट नव अंगों की टीका की रचना आप करें। जहाँ समझ में मुश्किली हो, वहाँ मुझे तुरंत याद करें। मैं तुम्हारी सहायता करूँगी।"

"लेकिन मेरी यह शारीरिक व्यग्र स्थिति, मुझे सहजरूप से ग्रन्थ रचना कैसे करने देगी?" आचार्यदेवने प्रश्न किया।

देवीने बताया–"उसकी आप चिंता न करें। परमेश्वर पार्श्वनाथ के प्रक्षालजल के सिंचन से आपकी वह व्याकुलता दूर हो जायेगी। आपको कोई औषधोपचार की भी आवश्यकता न रहेगी! अबाधित रूप में की गुरु की आज्ञा का पालन करने में आपकी भावना जरा भी विचलित न होगी।" इतना कह देवी अदृश्य हो गयी। उनके कथनानुसार सर्व संपन्न हुआ।

www.yogpradhan.com

गुरु की आज्ञाका पूर्णतः पालन करने का आनंद अभयदेवसूरिजी के अन्तःकरण में उद्वेलित हो उठा। प्रचंड मेधाशक्ति के मंथन द्वारा, उन्होने नवों अंगों को लक्ष्य कर अनुपम टीकाओं का निर्माण किया। यदि आज वे सारी टीकाएँ सुलभ न होती तो क्या हालत होती हमारे ग्रन्थों की?

यदि उन्होंने गुरुकी आज्ञा का अखंड रूप में पालन न किया होता। तो टीकानिर्माण की क्षमता और देवसान्निध्य की प्राप्त की संभावना ही कैसे होती?

(११८) वे हाथी को मार सकते हैं, चींटी जिला नहीं सकते।

भारती संस्कृति की भरपेट प्रशंसा करते स्वामी विवेकानंद के वक्तव्यों से हैरान हो, कुछ अंग्रेजों ने उन्हें, सबक सिखाने का तय किया।

आधुनिक पद्धति से बना एक यान्त्रिक कतलखाना दिखाने ले गये।

एक भैंस तीन ही घंटों में काट दी गयी। उसके शरीर के १४ अवयव बाँट दिये गये और देखते ही देखते उनके चौदह पेकेट्स तैयार हो गये।

अब वे सभी विवेकानंद की ओर घूर घूरकर देखने लगे। उन्होंने पूछा—"कहिए, केवल, भारत के पास ही सारी टेकनिक रिजर्व है या हमारे पास भी थोड़ी है? हमारी इस टेकनिक पर आप हमारी सराहना करेंगे या नहीं?'

गंभीर, हो, विवेकानंदजी ने कहा—'मैंने यहाँ एक भैंस को चौदह पेकैटों में विभाजित और परिवर्तित होते देखी। इसकी मैं क्या प्रशंसा करूँ? किसी को खत्म करने में कला कहाँ रही? इसके बदले में आप लोग चौदह पेकैटों में से एक भैंस को जिन्दा कर दें तो, आप की प्रशस्ति करने में तत्पर रहूँगा। आप के पास हाथियों को खत्म करने के शस्त्र हैं, हमारे पास चींटी तक को जिलाने के शस्त्र हैं।"

बेचारे अंग्रेज! सुनते ही ठंडे हो गये।

www.yugpradhan.com

(११९) जोगीदास

वह था नामी डकैत। भावनगरके शासन के विरुद्ध उसने विद्रोह का झंडा उठाया था। नाम था उसका जोगीदास खुमान।

किसी बात पर उससे अन्याय किया गया था। भावनगर नरेश के पास जा उसने सही न्याय कराने भरसक कोशिशें की। लेकिन नसीबने उसे ठुकराया। और जोगीदास विद्रोही-बंडखोर बन पाया।

लेकिन वह था आर्यत्वसे सभर तेजस्वी माता का आर्यपुत्र। अत·

एव बंडखोर होने पर भी उसने अपने साथियों को, उसने एक आचार-संहिता निश्चित कर दे रखी थी।

"अबला को लूटें नहीं।"

"ब्राह्मणों को परेशान न करें।"

"किसान को त्रस्त न करें।"

"परायी स्त्री मात्र को माता–भगिनी समझें"

कडी सख्ताई के साथ, इन आचारनियमों का वे विद्रोही लोग पालन करते थे। भले ही भूखों मरे, लेकिन नियमभंग कर विलासी जीवन अमान्य ही रहा।

"जोगीदास! धन्य है तुम्हारे विद्रोह के नीति–नियमों!" सभी अहोभाव पूर्वक एकसाथ बोल ऊठते।

www.yugpradhan.com

जोगीदास के एक हाथ में रहता था तमंचा और दूसरे हाथ में सुहाती माला! लोग कहते कि यदि उसके हाथ में बंदूक न रहती तो, जोगी सचमुच सही अर्थ में "जोगी" बन पाता।

एक रात की घटना है। भावनगर के पास ही डेरा डालकर जोगीदास अडा है। शासन के खजाने पर टूटने की उसकी तमन्ना थी। रात के बारह बजे। सभी साथी गहरी नीद में डूबे थे। केवल जोगीदास सावधान बना रहा था। उसके हाथ माला घुमा रहे थे। भगवद्भक्ति में जोगी मग्न बना हुआ था।

वहीं किसी युवती के नुपूर की झनझनाहट सुनायी पड़ी। जोगी सावधान हो गया। अरे, इस समय किसी स्त्री का पगरव।

इतने में ही तंबूके पर्देको उठाकर, एक नवयुवती जोगीदास के पास आ पहुँची। वह क्षत्रियाणी जान पड़ती थी। चाँदनी के उजाले में जोगीने उसके मुह पर एक हल्की–सी नजर डाल दी। यौवन की

मस्ती देख वह सारी परिस्थितिको समझ गया। कोई पगली अपने चारित्र्यके गौरवको भूल यहाँ दौड आयी है। कोई चिंता नहीं। अभी उसे ठीक रास्ते पर ला देता हूँ। जोगी स्वगत बोला।

जरा कडक हो कहा—"कौन हो तुम ? क्यों आयी हो ? बहनजी !"

"मुझे बहन से संबोधित न करें। मैं तो तुम्हारी "वीरता" पर मुग्ध हो, तुम्हारी प्राणप्रिया बनने चली आयी हूँ।"

"तुमने मुझमें केवल वीरता ही देखी ? अरे उससे भी बढीचढी पवित्रता ही देख न पायीं। जाओ, वापस चली जाओ ! मेरे एक हाथमें बंदूक है और दूसरे हाथमें यह माला !"

"मुझे भी कहीं भी अपनाकर रख लो। मुझे चाहे बंदूक बनाओ या माला बनाओ।" युवती ने तुर्त ही कह दिया। उसकी आवाज में कातरता भरी थी।

www.yugpradhan.com

"अरे पगली ! यह सारा तूफान छोड दें। यह जोगीदास खुमान डाकू है। लेकिन अपनी माँका उसने स्तनपान किया है। अनाचार में वह कभी डूब नहीं सकता।

"याद रहें कि जोगीदास को भी परलोक की चिन्ता है। उसके परभव को वह सुधारना चाहता है। जाओ, तुम चली जाओ, वर्ना घिसट कर बाहर कर दूँगा।"

फिर भी युवती न गयी। आखिर एक साथी को जगाकर उसे जानवर की तरह खींच बाहर निकला दी।

जोगी सही अर्थ में 'जोगी' था।

(१२०) श्रेष्ठीपुत्र इलाती

उस बच्चे का नाम था इलाती। सभीका वह लाड़ला था। उसके गोल भरे चेहरे को देख, नगरभर की स्त्रियाँ बेहद खुश हो जातीं।

थोड़ा समय गुजरा। इलाती युवक बना। जैन कुलमें जन्म प्राप्त करने के कारण, धार्मिक संस्कारों से जीवन पूर्ण था। संतोंके समागम के कारण उसके जीवन में वैराग्य की भावना बलवत्तर थी। संसार-त्याग करने के लिये उसका मन अधीर हो उठा।

लेकिन अफसोस! मातापिता धर्मिष्ठ होने पर भी, उसके पर मोह का प्रभुत्व आ बैठा। दुराचारी लड़कों के साथ इलाती का मेलजोल बढ़ा दिया गया।

बेचारा इलाती! संत–समागम के कारण वह थोडा सज्जन बना हुआ था; लेकिन अब वह पूरा कमीना बन गया। उसकी हरकतों की कोई मर्यादा न रही। मातापिता भी, उसकी सरजोरी से परेशान हो उठे।

www.yogiradhan.com

बात आगे बढ़ गयी। यौवनसभर इलाती एक नटी के प्यार में डूबा। यह जान मातापिता व्याकुल हो उठे। माँ तो फूट फूट रोने लगी और बोली–" हमारे करतूतों के फल हमें भुगतने पडे हैं। इलाती को, सत्संग छुडाकर हमने ही उसे संसार की मायामें भुलाया था। अतः आज वह कुलकलंकी बन पाया है।

दूसरी ओर इलाती ने नटी के पिताके पास जाकर उसकी पुत्री की माँग की। लेकिन उसके पिताने कहा–" किसी नगर के राजा को खुशकर, पर्याप्त धन प्राप्त करो। उसे तुम मेरे हाथ धर दो, बादमें कन्यादान करूँगा।"

" नटराज " की ख्यातिप्राप्त इलाती ने उसे मंजूर रखा। किसी एक नगर के राजाको खुश करने के लिये उसने अजनबी कई

प्रयोग किये। लेकिन अफसोस। राजा प्रसन्न तो नहीं हुआ। ऊपर से नटीके रूपमें वह भी लुब्ध हो उठा। चाहता था कि–नटराज ऊपर से नीचे गिरे और मर जायँ तो अच्छा भला। फिर तो यह कन्या मेरे नसीब ही हो जाय।

नटराज बारबार बाँस परसे ऊतरता रहता है। राजा को वंदन करता है और राजा को प्रसन्न न होते देख, पुनः बाँस पर चढ़ जाता है।

आखिरी दाँव आजमाने के लिये, थका–हारा नटराज एक बार फिर बाँस पर चढ़ता है। खतरनाक खेल दिखाता है। उस समय उसे, पासवाले मकान की खिडकी से अंदर एक दृश्य दिखाई दिया। वह सन्न–सा रह गया। बेहद लज्जित भी हुआ।

एक रूपयौवना, नवयुवान किसी मुनिराज को पूरे भक्तिभाव से मोदक दे रही हैं। वहाँ और कोई न था। फिर भी, उस मुनिराज की नजर में कहीं वासनाकी झलक तक दिखाई न देती थी।

www.yugpradhan.com

"धिक्कार है मेरे जीवन को। मैं एक सामान्य नटी से संबंध जोड़, मैं अपनी सारी उत्तम जिंदगी को बदनाम–बरबाद कर रहा हूँ और दूसरे ये महात्मा हैं...." इतना कहते कहते उसका कंठ भर आया। बाँस पर स्थित नटराज के दिलमें भारी पश्चात्ताप होने लगा। कर्मों के बंधन देखते ही देखते जलने लगे।

एक भव के, दो भव के, दो सौ भवके....नहीं....नहीं....थोडे ही क्षणोंमें जन्मजन्मान्तर के सारे काले–कलूटे कर्म भस्मीभूत हो गये।

मोहान्ध बना इलाती थोडे ही समयमें मोहविजेता हो पाया। नटराज इलाती मुनिराज बन पाये। अधमात्मा परमात्मा हो चुके।

वंदन हो, उन इलातीपुत्र को!

(१२१) बाल अतिमुक्तक

" अरे मुनिराजजी ! आइए, आइए....मेरे घर भिक्षा के लिये पधारें । मेरी माताने मुझे यहाँ भेजा है ।

श्रेष्ठीपुत्र अतिमुक्तक दौडता जाकर मुनिराज से कहने लगा । केवल आठ ही सालकी उम्र थी उसकी ।

श्रमणभगवान महावीरदेव के प्रथम शिष्य गणधर भगवान गौतम भिक्षाचर्या के लिए निकले थे । बालक के मुँह पर उभरे भक्तिभाव को देख, वे उस बच्चे के साथ, उसकी बताई राह पर चलने लगे ।

गौचरी ले मुनिराज आगे बढे । बाल अतिमुक्तक ने गौतम गणधर की ऊँगुली पकड ली । दोनों साथ साथ चले जा रहे हैं ।

बच्चे का नाम जानकर, उसके चमकते ललाट को देखकर महर्षि ने संवाद शुरू किया ।

www.yogpradhan.com

" अतिमुक्तक ! हमने तो इस संसार का त्याग कर दिया है भाई ! हम तुम्हारी तरह घरमें नहीं रहते । रसोई आदि पकाकर कभी भोजन नहीं करते । व्यापार आदि भी नहीं करते ।

" क्यों, ऐसा जी ? " चकित अतिमुक्तक ने कहा ।

" यह संसार पापमय है । संसार में रहना, कई पापों का सर्जन होता है । अन्य जीवों की हिंसा कर, अपना गुजारा करना पड़ता है । झूठ बोलना, अनीति करना, दिल न मानें फिर भी अन्य जीवों के अशुभ की कल्पनाएँ करते रहना; आदि होता रहता है ।

" भाई, पानीमें भी जीवनतत्त्व है । पृथ्वी और अग्नि में भी जीव है । वनस्पति के पन्ने पन्ने पर चेतन बैठा हुआ है । संसार में रह, कितने जीवों की हिंसा करते रहना । हिंसा तो घोरतम पाप माना गया है । " महर्षि गौतम ने बच्चे को समझाया ।

" तब तो मुझे पापाचरण नहीं करना है ! संसार में रहने से यदि पापाचरण होता हो तो मुझे संसार में भी रहना नहीं है। गुरुजी ! मुझे आपके साथ ले चलें ! । अतिमुक्तक ने लगातार कह डाला ।

" हाँ, अवश्य ले जाऊँ । लेकिन तुम्हारी माताजी की बिना संमति मैं ले जा नहीं सकता । तुम यदि पाप करना ही नहीं चाहते तो बिना संसार छोडे और कोई चारा नहीं है। तो तुम तुम्हारी माता से पूछ कर हमारे उपाश्रय में आ जाओगे न ? "

" अरे गुरु महोदय, अभी आया "... कहते हुए अतिमुक्तक अपने घर की ओर दौड़ा । उसके मनमें पापका डर तो था ही। धर्मनिष्ठ माताने उसे पुण्य-पापकी कई कहानियाँ सुनायी थीं ! और तो सारी बातें साफ नजर आ पायी हैं।

www.yogpradhan.com

" माँ...माँ....मुझे इस संसार में रहना ही नहीं है । यहाँ तो केवल पाप ही पाप फैला पड़ा है । हिंसा, जूठ, प्रपंच...कितने सारे पाप ! कितने सारे दुःख ! माँ, तू ही बता दे न कि पापाचरण तो हम कर ही नहीं सकते । तो फिर इस संसार में रहा भी कैसे जायँ ? " अतिमुक्तक, एक ही श्वाससे कहता चला ।

बच्चे की पापभीरुता एवं सरलता देखकर माता तो फूली न समायी। ऐसे पुत्र की जननी होने के गौरव से वह अघाती न थी ।

बच्चे के सर पर हाथ पसारते हुए माँने कहा शाबाश बेटा ! मेरे प्यारे दुलारे ! धन्य है तुम्हारी विचारशक्ति को । धन्य है इस महर्षिको ।

" मेरे प्यारे बेटे ! यह बात बिलकुल सही है कि यह संसार पापों से लदालद-भरा पड़ा है । मैंने भी तुम्हें कई बार ये बातें बतायी हैं । बेटे, पापों से सभर इस संसार में न रहना हो तो तुम जाओ बेटे !

संसारत्याग की पुनित राह पर तुम्हारी जननी तुम्हें आशीर्वचन देती है कि, तुम धर्ममार्ग पर चल कर, कुलदीपक बनो। तुम्हारे जीवन को उजागर बनाओ। कभी पापाचरण न करो। इस दुनिया के कई जीवों को उपदेश देकर पापाचरण से बचा लेना। जाओ बेटे! जाओ। तुम्हारी माँ तो उस मार्ग पर चल न पायी, लेकिन तुम अवश्य जाओ।"

माता की आज्ञा पाते ही, बाल अतिमुक्तक खुशी का मारा मचल उठा। शुभ दिन पर भव्य महोत्सव के साथ अतिमुक्तकने दीक्षा ग्रहण कि। पापभीरु को संसार कैसा? थोडे ही समय की साधना में वह जीवात्मा, परमात्मा स्वरूप बन पाया।"

www.yugpradhan.com

(१२२) कढीप्रिय साधु

वह साधु था। लोग उसे 'खाखी साधु' के नाम से पुकारते थे। निश्चित था। प्रतिदिन एक बार भोजन कर लेता। न था कोई व्यसन और न थी कोई ममता।

लेकिन न जाने क्यों, इस साधु पर कर्म भी क्रुद्ध हुए? उनके कौन से अपराधने उन्हें साधु मिटा दिये।

बात ऐसी है कि एक दिन, एक भक्त के आग्रह वश हो साधु उनके घर भोजन करने गये। भक्तने स्वादिष्ट कढी और पूडियों का भोजन कराया। साधु को कढ़ी के स्वाद का रंग लगा।

जिन्होंने आज तक मिठाइयों की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं, वे साधु मधुर, स्वादिष्ट कढी पर मुग्ध हो उठे।

बाद में वह भक्त जब भी भोजन का निमंत्रण देने आता तब भोजन में कढी अवश्य बनायी जाय ऐसा निश्चित करा देते।

कई दिनों तक ऐसा चलता रहा। अब लोग भी 'खाखी बाबा' के बजाय 'कढीवाले बाबाजी' के नाम पुकारने लगे। सारे संसार का त्याग करने वाले बाबाजी कढ़ी के कटोरे के चक्कर में फँस गये। सारा हाथी निकल पाया, पूँछ ही फँस गयी। सागर का तैराक, छोटे से गड्ढे में डूब मरा।

एक रोज ऐसा हुआ कि बाबाजी को कहीं से आमंत्रण ही नहीं मिला। पूरे दिवस का उपवास हो चुका। रात हुई। भूख के मारे नींद ही न आ पायी। क्यों आने लगे? बाबाजी सोचने लगे। भव्य भूतकाल की यादें सताने लगी और खतरनाक वर्तमानकाल की परेशानी देखी। फिर भी वे 'खाखी बाबा' थे। वर्षों के दृढमूल संस्कारों के कारण वे बच पाये।

www.yugpradhan.com

कढी के प्रति मोह ने उनके जीवनको कितनी हद तक बरबाद कर दिया, यह बात उनके सामने प्रत्यक्ष हुई। बाबाजी की आँखों में से आँसू बहने लगे। "अरे, मैं 'खाखी बाबा' भी न रह पाया!"

रात्रि के चार बजे। बाबाजी पारावार पश्चात्ताप कर रहे थे। मन ही मन दृढ निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन, ग्यारह बजते ही वे सीधे उस भक्त के घर पहुँचे, जहाँ कढी के प्रति मोह जन्मा था।

खुले आम, निर्लज्ज हो, बाबाजीने अपने उस पुराने भक्त से 'पतीली भर कढी बनाने का आग्रह–प्रार्थना की। अनमने भक्तने कढ़ी बनायी। बाबाजी भोजन करने बैठे।' भोजन में और क्या लेना था? केवल कढ़ी ही पीनी थी जो पास में ही खाली बालदी रखवाकर बाबाजी एक एक कर एक...दो....तीन....चार...पाँच....छ....कटोरे कढी के पी गये। फिर से एक कटोरा लगाया। तुरंत ही कै हो गयी।

बालदी तैयार थी ही। उस कै को उठाकर डाली कढी की पतीली में। पुनः भद्दी कढी को पीने लगे। पुनः कै हो गयी। बाबाजी गालों पर तमाचे जडते गये और कहने लगे—'कमीनी जीभ! कढ़ी नहीं पीना है क्या? अच्छी लगी है न, तो अब पीनी ही पडेगी। तुमने मेरा सारा जीवन ही बरबाद कर दिया है। साधु को साधु मिटा दिया! अब जायेगी कहाँ? ले पी ले, पीना ही पडेगा।' फिर कढी पी और फिर से कै हो चली। फिर कढी पी....फिर कै चालू ही रही। आखिर यजमान भक्त ने मामला सम्हाल लिया। कढी का मोह हमेशा के लिये खत्म हो गया।

बाबाजी पुनः 'खाखी बाबा' के रूप में आ पाये।

www.yugpradhan.com

(१२३) गटागट, गटागट....गटागट....!

मंछाराम के छोटे भाई गौरीशंकर ने लगातार बारह साल तक काशी में विद्याभ्यास कर, प्रथम पंक्ति के पंडित के रूप में नाम कमाया।

अभ्यास पूरा हुआ। ग्रंथ की गठरियाँ बाँधकर, गाडी में बैठ कर अपने गाँव की ओर निकल पडे। रास्ते में जितने गाँव आये, वहाँ गौरीशंकरजी शास्त्रार्थ करने लगे। एक ही शर्त रखी गई—"हार खाऊँ तो सर्वस्व अर्पण कर दूँ। जीत जाऊँ तो सवा तोले सोने की एक पूतली मुझे भेंट की जाय।"

क्रमशः पंडितजीने बावन शास्त्रार्थ कर बावन पूतलियाँ प्राप्त की।

अब अन्तिम गाँव आया। वहाँ उमियाशंकर नामक एक तथा-कथित पंडित रहते थे। क्रमानुसार शास्त्रार्थ शुरू हुआ। पाँच किसान पंच बनाये गये। पहले उमियाशंकर ने पूछा—'कहिए गौरीशंकरजी? गटागट, गटागट, गटागट यानी क्या?

प्रश्न सुनते ही काशी–पंडित तो हडबडा गये। थोडी ही देर में पसीना–पसीना हो गया। पडे कई ग्रन्थों का मन में चिन्तन करते रहे, लेकिन 'गटागट' का अर्थघटन न हो पाया। आखिर गौरीशंकर के पराजय की घोषणा करते हुए गाँव के लोगों ने आनंद के पुकारों के साथ जयघोष किया कि–"उमियाशंकर पंडितराज का जय।" साथ ही बावन पूतलियाँ और ग्रंथों की गठरियाँ सारी की सारी उमियाशंकर के हवाले कर दी गयीं।

म्लान मुख और व्यग्र मन गौरीशंकर अपने गाँव की ओर चले। गाँव के बाहर प्रतीक्षा करता हुआ बड़ा भाई मंछाशंकर तो देख चकित रह गया। छोटेभाई से दोडते हुए आ मिले और सारी बात समझ ली।

www.yugpradhan.com

भाई को महादेव के मंदिर में बिठाकर अब मंछाराम खुद शास्त्रार्थ करने चले।

शास्त्रार्थ शुरू हुआ। आज उमियाशंकरने सर पर दाढ़ी–मूँछ चढाये जटाजुट को चढाये रखा था। ले आये होंगे किसी रामलीला मंडली में से।

पुनः वही प्रश्न किया गया–"गटागट, गटागट, गटागट यानी क्या?"

जवाब देने के लिये तत्पर मंछाराम तो तुरंत ही खडे हो गये। आँख और मुँह आगबबूले से हो गये। पूरी ताकात के साथ उमिया-शंकर को एक जोर का तमाचा जड़ दिया। उमियाशंकर उलट गये और उनकी डाढ़ी–मूछ और जटा उछल कर दूर जा गिरे। भारी होहल्ला मच गया।

सभी को शान्त कर मंछाशंकरने रोब के साथ कहा–"यह तो

पंडित है या पलित ? तुम लोग तो किसान हो। तुम लोग इतना भी नहीं जानते कि सीधे ही 'गटागट' कभी हो ही नहीं सकता।"

'अरे पहले तो बीजंबोजा, बाद में उगंउगा, फिर पत्रंपत्रा, उसके अनन्तर फलंफला, पीछे रसंरसा और बाद में जब वह रस पीने का समय हो तब "गटागट, गटागट, गटागट" ऐसा कहते पीया जाता है। यह तुम्हारा पंडित पहले बीजंबीजा तो पूछता ही नहीं।

"बोल पंडित मंछारामजी की जय।" सभी ने एकसाथ जय-घोषणा की। बावन पूतलियाँ और गाडी वापस लेकर मंछाराम पुनः महादेव के मंदिर में आये।

और बड़ी धामधूम के साथ गौरीशंकरजी का ग्राम-प्रवेश किया गया।

www.yugpradhan.com

(१२४) पपीताभीरु फूलचंद शेठ

पुराने समय की बात है।

एक छोटा सा गाँव था। गाँव में एक सेठजी थे। नाम था उनका फूलचंदभाई।

एक दिन पेट में भारी वेदना हुई। एकसाथ सैकडों सूइयाँ शरीर में घुस गयी है ऐसी पारावार वेदना असह्य हो उठी। सेठ वेदना से चीखने लगे और पलँग में इधर से उधर उलटते हुए तडपने लगे—'वैद्यजी को बुलाओ, जल्दी से कोई पासवाले गाँवमें से तरभाशंकर वैद्य को बुला लाओ। सेठजी की चीखें सुनकर बड़े लडके जीवचंदभाई ने ताँगा तैयार कराया और तुरंत तरभाशंकर वैद्य के यहाँ पहुँचे।

वैद्य रहे अनुभवी। आसपास के सौ गाँवों में उनका भारी बोल-बाला था। लोक कहते कि एक बार साक्षात् यमराज आ जाय तो

उसे भी भगा दे ऐसे तरभावैद्य पूरे अनुभवी थे। मानों इस युग के दूसरे 'धन्वन्तरि' ही हो।

बनठनकर वैद्यराज ताँगे में बैठे। बातों ही बातों में रास्ता कट गया! घर में आते ही, फूलचंद सेठ तो फूटफूट कर रोने लगे। बचाईए वैद्यराज, अब तो रहा नहीं जाता।'

नाडी द्वारा रोगपरीक्षा हो गयी। वैद्यराज ने पुडकियाँ बाँध दी। सारी विधि चंद मिनटों में ही पूरी हो गयी। दवाकी एक पुडकी दे, उसके संभवित उसर को जाँचने के लिये वैद्यराज वहीं बैठे। दस ही मिनटों में सेठकी वेदना शान्त हो गयी। सभी स्तब्ध हो गये। वैद्यराज ने स्मित करते हुए कहा—"सेठजी, अब दहीं या उससे बनी किसी चीज का भोजन में इस्तेमाल न करें। अगर स्वाद में फिर फँसे तो आप जाने और आपकी बला जाने। मामला एक साथ पूरा हो जाएगा।"

फूलचंद सेठने सारी बातें मान ली। तरभावैद्य अपने गाँव लौट आये।

इस घटना को आज तीस साल गुजर गये।

एक दिन सेठ के यहाँ श्रीखंड बनाया था गया। सभीने आग्रहपूर्वक सेठजी को भी श्रीखंड खिलाया। 'अब क्या होनेवाले है?' ऐसा सभी मानने लगे।

रात हुई और भारी शोरगुल मच गया। सेठकी वेदना की आहें सुन सभी हडबडा गये।

बडा लड़का जीवचंद भागा तरभावैद्य के घर। सौभाग्यवश वैद्यराज जीवित थे। वातरोग से पीडित वैद्यराज को घर उठा लाये। वैद्यराज ने आते आते ही कहा—"अब भगवान का नामस्मरण करें। मैं

www.yugpradhan.com

अब कुछ करने–धरनेवाला नहीं हूँ।" लेकिन बहुत से अनुनय–विनय के बाद थोडी सी दवाई दे दी। साथ साथ कहा भी–"अब कभी पपीता–पपैया–तक भी मत खाना।"

"मंजूर....मंजूर....मंजूर....!" सेठने कहा। पुनः वेदना शान्त हुई। रोग मिट गया। कहा जाता है कि सेठने कभी पपैया नहीं खाया। उतना ही नहीं स्वप्न में भी यदि पपीता देख लेते तो होहल्ला मचा देते। पके पपीतों की लारी देखते ही दूसरी गली से भाग छूटते।

ऐसे थे फूलचंद सेठ। और ऐसे तरभाशंकर वैद्य।

(१२५) धिक हो ऐसे धनको, जिससे पापाचरण हो।

www.yugpradhan.com

छोटा सा गाँव था। वहाँ जगमोहन और मनमोहन नामक दो भाई बसते थे।

एक–दूसरे के अलावा एक दिन भी अकेले रह न पाये, ऐसा उनके बीच प्रेम था।

बाल्यावस्था में से वे दोनों किशोर हुए।

मातापिता की मृत्यु हुई। सारा उत्तरदायित्व दोनों भाइओं पर आया। चार छोटी बहनों को जिम्मेवारी का सोचविचार करते हुए दोनों ने निर्णय किया कि "हम देशान्तर करें। वहाँ कोई धंधापेशा करें और इस प्रकार कौटुम्बिक जिम्मेवारी अदा करें।"

एक रोज दोनों निकले। घर छोडा, आँगन छोडा और देखते ही देखते गाँव की सीमा भी छोड दी।

एक गाँव से दूसरे गाँव, दूसरे गाँव से तीसरे गाँव...इस प्रकार आराम कर लेते हैं और आगे बढ़ते चले जा रहे हैं।

एक दिन की बात है। जगमोहन और मनमोहन रास्ते पर चले जा रहे हैं। वहाँ सामने से एक बाबाजी दौडते घबराये चले आ रहे हैं। पास आते ही हाँफते हाँफते ही जगमोहन से कहा–" अरे भाई। इस ओर आगे मत बढ़ो। रास्ते के बीच ही एक लाल डाईन बैठी हुई है।"

छोटा भाई मनमोहन तो यह बात सुनते ही हँस पड़ा। जगमोहन ने बाबाजी से सस्मित कह–" भले, डाईन होगी तो हम उसे खा जाएँगे। आप जरा भी चिंता न करें।" बाबाजी फिर से दौडने लगे।

दोनों भाई आगे बढे। दोनों में जवानी का जोस था। बाबाजी की ऐसी बात की वे क्यों परवाह करें?

थोडे दूर गये वहाँ रास्ते में बीचोबीच लाल गठरी पड़ी हुई देखी। कुतूहलवश उसे खोला। दस हजार रूपयों की नकद सोनामुहरें उसमें से निकली।

www.yogpradhan.com

दोनों खुशी के मारे नाच उठे। अब आगे जाने की जरूरत क्या थी? यहीं से घर वापस लौटने का निर्णय किया। थके बड़े भाई जगमोहनने, मनमोहन से पूछा–" भाई, यहाँ से दूर कोई गाँव दीख पड़ता है। वहाँ जाकर थोडी मिठाई ले आओ। पेट भर खा लें। बादमें घर लौटें।"

मनमोहन मिठाई लाने के लिये चला। दोनों भाई अलग हुए।

दोनों के अंतःकरण में कलियुगी वृत्ति पैदा हुई।

" क्यों धन का बँटवारा किया जाय! क्यों न सारी सोना-मुहरों का मैं अकेला मालिक न बनूँ?"

मनमोहन ने मिठाई में जहर मिला दिया। भाई के पास आकर बहाना बताते हुए कहा–" मैं भारी थक गया हुँ। अतः पूरा आराम

कर, बादमें मिठाई खाऊँगा। आप अभी खा लें।" मनमोहन पेड के नीचे ही करवट लेकर सो गया। उसी समय जगमोहनने छोटे भाई के गले पर हथियार से घाव कर दिया। एक ही घाव पर दो टुकडे हो गये।

बाद में जगमोहनने ठाठ से मिठाई खायी। दस ही मिनटों में वह वहीं बेहोश हो गिर पड़ा। थोडी ही देर में उसके भी प्राण चल बसे।

(१२६) आहार-शुद्धि

कई समय पहले की बात है। अहमदाबाद के एक मुहल्ले में एक संत रहते थे। सरयूदासजी उनका नाम था। उन्हें जो ज्ञान प्राप्त था, उसकी अपेक्षा में वे सच्चे संत थे।

उनका भक्तसमुदाय विशाल था। एक दिन किसी श्रीमंत भक्तने, उन्हें और उनके भक्तों को अपने बंगले पर भोजन के लिये आमंत्रित किये।

भोजन का सु-दिन आ पहुँचा। निश्चित समय पर सभी आ पधारें। फिर भी वे संत नहीं आ पहुँचे थे। तीन सौ संन्यासी भोजन की पंक्ति लगाकर बैठ गये।

"अभी महात्माजी आ पहुँचेगे" ऐसा सोचकर, तीन सौ संन्यासियोंने भोजन की सामग्री परोसने के लिये यजमान को सूचना दी। परोसना शुरू हुआ। लापसी का भोजन था। सारा भोजन परोसा गया। लेकिन क्या जाने क्यों संन्यासी अधीर होकर, औचित्य-भंग कर बैठें। संत महात्माजी के आने से पहले ही भोजन शुरू कर दिया। और उसी समय संत पधारें। एक सूचक नजर फिरा कर, अपने लिये रखे सुशोभित आसन पर बैठ गये। उनका मन उद्विग्न था।

योग्य सत्कार के साथ भक्त यजमान ने घी से भरा–पूरा लापसी का भोजनथाल मंगवाया। उसकी ओर नजर डालकर संत पुरुषने कहा–"मुझे यह नहीं चाहिए। सुखे दो रोटे हों, तो केवल उन्हें लायें।"

ये शब्द सुनते ही यजमानश्री और तीन सौ संन्यासी स्तब्ध हो गये। लेकिन क्या करते? काम करनेवालों के लिये बनाये गये मोटे–सूखे रोटे उनके थाल में परोसे गये। बड़ी प्रसन्नता से रोटे को चबाते संत का मुँह भी यजमान देख नहीं सकते थे। उनका अन्तःकरण तो रुँआ–सा हो गया था। हृदय पुकार रहा था कि–"लेकिन क्यों लापसी को छोडकर ऐसे सूखे रोटों का भक्षण किया जाय?" भक्त के मन का भाव का पता लगाकर, एक रोटा खा लेने के बाद संतपुरुष बोले–"आप उदास क्यों हैं? मैं रोटा खाऊँ, यह तुम्हें पसंद नहीं क्या? लेकिन मेरी बात सुनो! जिन्हें आत्मा की शुद्धि करनी है, उसे मन पर लगे काले दागों के दर्शन कर लेने होंगे और उन दागों को दूर करने ही होंगे। संसार–त्यागियों का यह असाधारण कर्तव्य है।" संत पुरुष की बातों का रहस्य समझने के लिये सभी संन्यासी भोजन करते रुक गये। लेकिन कुछ न समझाया। सही बात समझा कर, सभी की आँख खोलने के लिये, संतपुरुषने आयना मंगवाया और उसके उपर घी से लदी लापसी चिटका कर, यजमान से कहा–"देखें, इस आयने में तुम्हारा मुँह दीखता है क्या?" आयना तो घी से लदी लापसी से पूरा रंगकर चीकना हो गया था। यजमानने कहा–"नहीं भगवंत! जरा भी मुँह दीख नहीं पड़ता।" स्मित करते हुए संतने अपने पास पड़े सूखे रोटे को आयने पर घिसा। पुनः आयना स्वच्छ होकर चमकने लगा। पुनः मुँह देखने के लिये संतने यजमान से कहा। अब तो मुँह साफ तौर से दीख पड़ता था। अभी भी किसी को यह भेद

www.yugpradhan.com

समझ में आ नहीं रहा था। संतपुरुषने कहा–"जिसे आत्मदर्शन करना हो उसे हमेशा रूखासूखा भोजन ही लेना चाहिए। घी आदि पदार्थों के स्निग्ध चीकने–चुपडे भोजन से कभी चित्तशुद्धि हो नहीं पाती। चित्त के दोष खाने भी नहीं देते।"

महामूल्यवान संतदेशना को सुनकर, सभी के दिल पश्चात्ताप से भर गये।

(१२७) मोक्ष कैसे प्राप्त हो ?

एक था राजा।

राजा अपनी प्रजा को दिल से चाहता था।

प्रजा भी राजा को अपना देव समझती थी।

एकदूसरे के सुख–दुःख में, अन्योन्य सहानुभूति से जीवन सुखमय गुजार रहे थे। प्रजा के लिये राजा सब कुछ न्योछावर करने के लिये तत्पर रहता और प्रजा भी राजा के लिये किसी भी प्रकार का बलिदान देने के लिये कटिबद्ध रहती थी।

और क्यों न हो ? उस राजा को प्रिय न थे वैभव और प्रिय न थे विलास। उसे एक ही लगन लगी थी कि मोक्ष कैसे प्राप्त किया जाय ? आत्मा के स्वरूप का दर्शन कैसे हो ? ऐसे उदासीन राजा को संपत्ति का लालच छूता ही क्यों ? सुन्दरियों के सौन्दर्य में उसे स्वर्ग कैसे दीख पड़ता ?

ऐसा निःस्पृही राजा, प्रजाको परेशान क्यों करता ? उसके पर अत्याचार करने का कोई प्रयोजन ही न रहता। फिर यदि प्रजा के लिये राजा सर्वस्व और राजा के लिये प्रजा ही सब कुछ बन बैठे तो उसमें आश्चर्य किस बात का ?

परार्थरसिक की तो बातें ही न्यारी हैं। स्वार्थियों को तो उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती।

यह राजा हररोज धर्मसभा बुलाता। भिन्न भिन्न धर्मों के प्रचार को आमन्त्रित करता। सभी से एक ही प्रश्न पूछता—"मेरा मोक्ष कैसे हो? मुझे कोई मोक्ष की राह दिखलायें।"

अपने अपने ढंगसे सभी समझाते—समाधान करते। राजा सभी के उपदेश सुनता। इस प्रकार कई साल गुजर गये, लेकिन फिर भी राजा का मोक्ष हो नहीं पाया।

राजा की व्यथा चरम सीमा पर पहुँची। राजा प्रतिदिन कृश होने लगा।

किसी संत को इस बात का पता चला कि राजा को मोक्षकी तीव्र लालसा है; लेकिन अभी तक उसे उसकी प्राप्ति हो नहीं पायी।

www.yogpradhan.com

उसी रात बारह के डंके बजने पर वह राजमहल की अगासी पर गये। मध्यरात्रि के समय भी राजा तो उसी विचार में डूबा हुआ था।

अगासी में किसी के पगरव को सुन राजा खड़ा होकर आगे बढ़ा और आह्वान करते हुए कहा—"कौन हो?"

संतने कहा—"राजन् मेरा ऊँट खो गया है, उसकी खोज करने के लिये यहाँ आया हूँ।"

ठहाका मारकर हँसते हुए राजा ने कहा—"अरे मूर्ख आदमी! ऊँट कभी क्या इतनी ऊँची अगासी पर, चढ़ आ सकता है क्या?"

ऐसी खड़खड़ाती हँसी के साथ संतने कहा "तो महाराजा मोक्ष कभी क्या राजमहल में बैठे बैठे पाया जो सकता है? आप भी कैसी मूर्खता कर रहे हैं?"

"सुज्ञेषु किं बहुना ?" राजाको यह बात समझने में देर न लगी। सुबह होते ही राजाने राजमहल का त्याग कर दिया और निकल पड़ा।

(१२८) लौकैषणा का लालच

"अरे बोझ ढोनेवाले बूढे पालखी ठीक से क्यों नहीं उठा रहा ? क्यों, बोझ ज्यादा लगता है क्या ? हाँ बुढापा भी स्पष्ट झलक रहा है तुम्हारे मुँह पर ! पेटकी खाई पूरी करने के लिये इतना उद्यम ! अरे वृद्ध जीव, सचमुच तुम्हें इतना त्रास उठाना पड़ रहा है।"

जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकरसूरिजी के ये शब्द थे। जबर्दस्त पुण्यतेज उनके ललाट पर चमक रहा था। महाराजा विक्रमादित्य के वे बहुमान्य धर्मगुरु–प्रकाण्ड विद्वान थे।

राजा की ओर से मिलनेवाले आदर–सत्कार ऐसे ज्ञानी पुरुषको भी छू गये। राजाने पालखी भेंट की, उसका उन्होंने स्वीकार कर लिया। पालखीवाहक दिये। उन्होंने उनका भी स्वीकार कर लिया। हाय, असंभव संभव हो चूका।

ऐसे धुरंधर महापुरुष को चेतावनी देने की हिंमत करे भी कौन ? खुशामतखोर अपनी खुशामत में मग्न रहते हैं। अमीरों को उनकी परवाह नहीं होती। सामान्य जन अपनी हैसियत से बाहर समझ लेता है।

कौन समझाये कि साधु तो अपने सत्यबल पर जीवित रहता है और सभीको जीवनदान करता है।

कौन उनसे बताये कि, परकल्याण के फल का बीज तो स्वकल्याण में ही निहित है और स्वकल्याण, शास्त्राज्ञाओं के यथाशक्ति पालन में और चुस्ती में ही स्थिर बना रहता है।

www.yugpradhan.com

साधु के सामने अमीर और गरीब के भेद क्या ? मान और अपमान क्या ?

बड़े से बड़े तैराक भी छोटे पोखर में डूब मरा था। हाथी सारा का सारा पार हो चुका, पूंछ में फँस गया।

छोटा-सा भी शिथिलाचार आग की चिनगारी ! भारी आग बनकर जला देने में देर नहीं।

सिद्धसेनसूरिजी के सद्भाग्य से उनके गुरुदेव जीवित थे। उन्हें इस बात का ख्याल आया ! गुप्त रूप में आकर, वे पालखीवाहक के रूप में जुड गये। वृद्ध वादिदेवसूरिजी उनका नाम रहा। अत्यन्त जर्जर उनकी देह थी।

गुरूने शिष्य को उठाया। लेकिन बोझ सहा नहीं जा रहा था। कैसी थी वह अपार भावकरूणा !

www.yogpradhan.com

अत एव अभिमानी शिष्य ने पूछा-" क्यों, कंधो में दर्द हो रहा है क्या ? " (स्कन्धो किं त्वां बाधति ?)

' बाधते ' की जगह ' बाधति ' का उच्चारण हुआ। तुरंत साफ उत्तर मिला-" जितना कंधे के दर्द से दुःख नहीं होता, उससे ज्यादा तुम्हारे ' बाधति ' प्रयोग से महसूस कर रहा हूँ। " (न तथा बाधते स्कन्धः यथा ' बाधति '।)

" मेरे गुरु के अलावा, मेरी क्षति निकालने वाला इस दुनिया में कोई जन्मा नहीं है। " दिवाकरसूरिजी मन ही मन बोल उठे और तुरंत उन्होंने पालखी को रुकवा ली। नीचे उतर पालखीवाहक को ध्यान से देखते ही-" ओह गुरुदेव ! " के साथ चीख उठे और उनके चरणों में लोटने लगे।

गुरु तो माता ! माताओं की भी मां। वात्सल्यसभर गद्गद् वाणी

से कहा—" वत्स, साधुजीवन के आचारों का त्याग कर कल्याण करने की भावना के चक्कर में जा फँसा। लोकैषणा का यह लालच तुम्हें बरबाद कर देगा।"

" क्षमा करें प्रभो ! क्षमा करें ! इतनी साफ साफ बात मेरी समझ में आज तक क्यों आ न पायी। लोकप्रख्याति के फटाखे थे, लेकिन मैंने उनमें प्रकाश देखा। गुरुदेव, फिर कभी ऐसा न हो पायेगा। मेरी ऐषणाओं के निमित्त, मैं नये झूठों को सत्य की ओटमें छिपाना नहीं चाहता। ओह, उसमें तो कई लोगों के हितोंका सर्वनाश हो जाय।" दिवाकरजी की आँखों में से अश्रुधारा अनवरत बहती रही। कुतर्क, दलीलबाजी और झूठे व्यर्थ दृष्टांतों का वह कनिष्ट काल नहीं था।

पछतावे से बढ़कर और कौन—सा दूसरा प्रायश्चित्त हो सकता है ?

मार्गच्युत आत्मा पुनः योग्य राह पर आ पहुँची। गुरुदेव ने अपनी राह ली।

www.yogpradhan.com

(१२९) आदर्श राजा योगराज

महाराजा मूलराज की ११० साल की उम्र के बाद मौत हुई। उनका राजकुमार योगराज राजा बना।

योगराज का जीवन पूर्वभूमिका के एक योगी के समान प्रोज्ज्वल था ! क्षेमराज जैसे उनके चार पुत्र थे। एक दिन की बात है। उस दिन एक ऐसी घटना घटी, जिसके परिणाम स्वरूप महाराजा योगराज चिता जलाकर जीते जी भस्मीभूत हो गये।

घटना कुछ इस प्रकार घटी थी। संध्या का समय था। कोई विदेशी जहाज ने डेरा डाला था। क्षेमराज आदि चारों भाई घूमने

निकले। घूमते घूमते वे बंदरगाह पर आ पहुँचे। उस विदेशी जहाज को देखकर कुतूहल से उस ओर गये। जहाज में चढ़कर देखा तो उनकी आँखें चकाचौंध हो उठीं। असंख्य कीमती और मूल्यवान चीजों से जहाज सारा लदा हुआ था। मूल्यवान रत्न, तेजंतूरी, कस्तूरी, आदि पदार्थों की ओर चारों भाइयों की नजरें जम गयीं।

कुविचार की काली बदरी उनके अंतर परसे गुजरने लगी। थोडे दूर जाकर, चारों भाइयों ने सलाह–मशविरा शुरू किया–एक ही खयाल रहा कि प्रजा की आबादी के लिये और देश की सूरत पलट देने के लिये इस जहाज को लूँट लिया जाय।

कई विचार आये। लूँट के पाप को भी समझ लिया, लेकिन अंत में शयतान की विजय हुई। तय किया गया कि जहाज लूँटा जाय और उसकी सारी समृद्धि देश और प्रजा की सुख–शान्ति के लिये उपयोग में लायी जाये। एक फूटी कौडी भी अपने चैन के लिये उपयोग में ली न जाय, उसका पूरा खयाल रखा गया।

लेकिन पिताजी का क्या किया जाय? उन्हें चोट पहुँचे तो! यह सोचकर सभी अकुलाये; लेकिन अंत में यह तय किया गया कि उन्हें सारी बात समझाये। रात हुई। चारों भाई महाराजा के पास गये। सारी बात समझायी! पिताजी क्या उत्तर देते हैं, यह सुनने के लिये सभी तत्पर थे। महाराजा योगराज का मुह गंभीर हो उठा। स्पष्ट शब्दो में उन्होंने साफ साफ बताया–"बेटे! अच्छे से अच्छे कार्य को बुरे साधनों की सहाय से करने में पूरी सफलता नहीं मिलती। देश और प्रजा की आबादी का खयाल बड़ा सुंदर है, लेकिन उसके खातिर आश्रित बने हुऐ विदेशी जहाज की लूंट का उपाय अत्यन्त अधम है। भले ही हम भूखां मर जायँ, बरबाद हो जाय; लेकिन अन्याय के मार्ग पर कदम उठा नहीं सकते।

www.yuvadhara.com

"मेरे प्यारे बच्चे ! ऐसा विचार भी तुम्हारे दिल में पैदा हुआ, यह जानकर मेरे दिलको चोट हुई है। आर्य देश के निवासी तुम मानव। ऐसे बुरे विचार के शिकार कैसे बन पाये ! दुःख की बात है कि शायद दोष मेरा होगा या तुम्हारी माता का।

पिताजी की बात सुन, चारों पुत्र लज्जित हो उठे। बिना कुछ कहे चुपचाप शयनखंड में से बाहर हो आये। आर्यभूमि की कम-नसीबी के कारण महाराजा योगराज की उस गंभीरवाणी के मर्म का कोई स्पर्श न हो पाया। सर्वानुमति से तय किया गया कि जहाज को तो अवश्य लूंटा जाय। आधी रात के समय दो बजे शस्त्रसज्ज सैनिकों के साथ क्षेमराज ने जोरदार धावा बोल दिया।

रक्षक भक्षक बन पड़ा।

www.yogpradhan.com

सुबह हुई। महाराजा योगराज को रात्रि की घटना की सारी जानकारी हुई। उनके दिल पर भारी चोट लगी। पुत्रों के पापों का प्रायश्चित्त कौन करे ? ऐसे पुत्रों को जन्म देनेवाला पिता भी अंशतः पापी है ही।" महाराजा योगराज मन ही मन बड़बडाये।

शाम हुई। हुक्म के जोर पर चिता तैयार करा कर महाराजा योगराज उसके उपर चढ गये। क्षेमराज आदि चारों पुत्रों के और हजारों नर–नारियों के करुण विलाप और भारी कल्पान्त के बीच एक पिताने–एक राजाने न्यायतोलन अदा किया।

उसी समय आकाश में से एक सितारा बुझ गया।

(१३०) हाय अभिमान ! तुम्हारे ये पराक्रम ?

उसका नाम था रुक्मी।

पिता की इकलौती लाडली बेटी थी। पिता नगर के राजा थे। एकचक्री शासन था।

राजा की मृत्यु होने के बाद, रुक्मीने साम्राज्य की बागडोर अपने हाथों ली। थोडे ही समय में महारानी रुक्मी का चारों ओर बोलबाला हो गया।

रुक्मी महारानी तो थी ही; साथ साथ महासती भी थी। बाल-ब्रह्मचारिणी थी। शादी के लिये दिलमें कोई तत्परता न थी। अतएव महारानी की अपेक्षा महासती के रूपमें उनकी ख्याति विदेशों में फैली हुई थी। कई लोग उनके दर्शनार्थ आते। लोग कहते कि ऐसी महा सती के दर्शनमात्र से इस भव के क्लेश दूर हो जायें और जन्म-जन्मान्तर के पाप धुल जायें।"

लेकिन क्या जाने धर्मराजा को क्या हुआ? उसकी गति निराली है। संसारी जीव उसका रहस्य कैसे पा सकता है!"

www.yogpradhan.com

एक दिन की घटना है। कोई विदेशी राजकुमार महासती रुक्मी के दर्शनार्थ आया। राजसभा के कार्यकी समाप्ति हुई थी। महासती रुक्मी धर्मगोष्ठी कर रही थी। उसी समय सभा के प्रवेशद्वार पर कोई राजकुमार आ खडा हुआ। महारानी के मुँह पर प्रकाशित सतीत्व के ओजस को देखकर, राजकुमार पत्थर की तरह वहीं जड़ सा रह गया। उसी समय महारानी रुक्मी की नजर उस राजकुमार पर पड़ी। क्या जाने किस जन्म के महापाप वहाँ धँस आये। नजर मिलते ही रुक्मी के आँखों में वासना चमक पडी। उसने तीरछी नजर से सूचक कटाक्ष फैंका।

एक ही पलमें राजकुमार ने पलटी हुई परिस्थिति को भाँप ली। आँख के पलक मात्रमें उसने मन ही मन निर्णय कर लिया। "नहीं.... नहीं...मैं सचमुच भूल गया। सारी दुनिया की नजरों में इस स्त्री ने

તપોવન ચિત્કોષ (જ્ઞાન ભંડાર)
તપોવન સંસ્કાર ધામ (પ્રભાવક ટ્રસ્ટ)
મુ. ધારાગિરિ, પો. કુર્બાલધોર
ઝપસાહી - ૩૯૬ ૪૩૪
ફોન: ૦૨૭૬૬ ૪૩૪

वशीकरण प्रयोग कर दिया है। यह महारानी नहीं, महासती नहीं, लेकिन महादंभी स्त्री है।" इतना मन ही मन बोलकर राजकुमार चल पडा।

उसके अंतःकरण में विचारों का मंथन चालू था ही। ऐसा दंभी संसार! ऐसी धूर्त स्त्री! ऐसे संसार में सुख मिले तो भी, उसमें रहना पाप है।

संसार से विरक्त बने राजकुमार ने दीक्षा ली। महारानी रुक्मी के जीवन में जैसे वह पहला पाप था, उतना ही वह आखिरी पाप था। बड़ा तैराक एक ही बार पोखर में डूब मरा था।

थोडे समय के बाद रुक्मी ने दीक्षा ली। अनुपम कक्षा की साधना के मार्ग पर वे चल पडी। कई शिष्याओं की वे गुरुणी बनी। वृद्धा हुई। अन्तिम क्षणों में जा पहुँची। एक नगरी में रुकी हुई थीं। साध्वी-गण उनकी सेवामें हाथ जोड खडा था।

वे मुनि बने और बाद में आचार्यपदवी प्राप्त राजकुमार कर्मवश उसी नगर में आये। साध्वी रुक्मी को, आचार्य भगवंत के दर्शन करने की इच्छा हुई। आचार्यश्री पधारे। रुक्मी को देखते ही भूतकाल उनकी आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो उठा। अपने कर्तव्य के अनुसार, आचार्यश्रीने, जीवन में ज्ञान–अज्ञानवश हुए सर्व पापों का प्रायश्चित्त कर लेने की प्रेरणा दी। आखिर में उस कलंकित क्षणकी याद दिलायी। साध्वी रुक्मीजी चमक पडीं। "ओह! वह अधम विचार! यही वे राजकुमार होंगे! महासती के रूपमें ख्यातनाम मुझे उस राजकुमार का परिचय प्राप्त कर क्या बदनाम होना है? नहीं, यह कभी नहीं होगा। अहंकार रूपी अजगर ने भारी फूत्कार किया। मामला बिगड़ गया। रुक्मीजी ने कह दिया–"यह तो मैंने, वह राजकुमार कौन है? यह

www.yugpradhan.com

जानने के लिये मैंने टकटकी लगाकर देखा था। सिवा इसके और कुछ नहीं था।"

पुनः बोध कराने के लिये अपात्र समझकर, आचार्यश्री वहाँ से तुरंत बिदा हो चुके।

अहंकार के उस अजगर ने उस पापको वैसा ही जीवंत रहने दिया और साध्वी रुक्मी का दुःखद भवभ्रमण अत्यधिक बढ़ गया।

(१३१) सहनशील बनें

उस युवक का नाम था प्रियकान्त। संसार के सुखों की दृष्टि से उसके जीवन में किसी बात की कमीना न थी। केवल पत्नी हेडिम्बा जैसी मोटी थी। साथ ही कर्कशा गुस्सैल और मनस्विनी थी।

www.yugpradhan.com

धन–यश–मान सभी दृष्टि से सुखी संतुष्ट प्रियकान्त के संसार को, इस अंगारे ने आग भड़का कर सुलगा दिया था।

कैसा है यह संसार! भारी से भारी बूट पहनने का सौभाग्य दे दें तो साथमें दो चार कंकड़ अंदर इस खूबी से डाल दें कि चलने का मजा किरकिरा हो जाय।

एक रोज किसीने प्रियकान्त से बताया कि, फलों गाँव के पास जंगल में 'मस्तबाबा' के नाम से प्रख्यात साधु रहता है, उससे भेंट करने पर शायद यह दुःख दूर हो जायें।

दुःखार्त प्रियकान्त दूसरे ही दिन वहाँ पहुँचा। प्रणाम कर के बैठा। बातचीत के दौरान उसने बताया कि "स्वामीजी! मैं हर तरह से प्रसन्न हूँ; लेकिन एक ही उपाधि है। वह है भी ऐसी कि मेरे सारे सुखों का मजा किरकिरा कर देता है। मेरी पत्नी बेहद कर्कशा है। आप कृपा कर बचाएँ।"

मस्तबाबा मन ही मन हँस रहे ! थोडी देर मौन हो उठ खडे हुए। कुटियामें से गर्मागर्म दूध ले बाहर आये । दूध का प्याला प्रियकान्त के हाथ में दिया और तुरंत जमीन पर से धूल उठाकर प्याले में डालते हुए कहा कि–"बेटे, इस दूध को पी जाओ । तुम्हारा कल्याण होगा । " बडी श्रद्धा के साथ प्रियकान्त दूध पी गया । मस्तबाबा ने पूछा–" दूध कैसा लगा ? उसमें डाली धूलने कोई तकलीफ तो नहीं दी ? "

प्रियकान्त ने कहा–" स्वामीजी ! ऐसे मीठे दूध में एक चुटकी भर धूल की क्या बिसात ? "

मस्तबाबा बोले–" तो बेटा ! जिंदगी के अन्य सुखों के बीच चुटकी भर पत्नी के दुःख को सह्य बना लो। अन्त में तो वे आखिर मनके तरंग ही है ना ?"

www.yogpradhan.com

(१३२) परार्थरसिक गुरुजी

नगर के महाराज पलायन हो चुके। शत्रुसैन्य विजयी बना। हर्षोल्लास के साथ उसने नगरप्रवेश किया। जिसके हाथ जो लगा, उसकी लूँटमार शुरू हो गयी ! शीलवती स्त्रियों पर बलात्कार किये गये। नगरभर में त्राहि त्राहि हो गया। इस लूँटमार को देख कई युवकों के खून उबल पड़े। छोटी सी फौज बना, वे युवक उन्मानी राजा की मुठभेड करने लगे।

लेकिन उन वीर युवकों की हैसियत क्या ? थोडे ही क्षणों में सभी वीर मौत के शिकार हो गये।

राजा आगबबूला हो उठा। सारे नगर की कत्ल कर देने का हुक्म फरमाया। एक भी जिंदा न रहे, उसकी सख्त पाबन्दी की गयी।

अब क्या किया जाय ? किस की मजाल है कि इस खूंखार कत्ल से नगर को बचाये ? लेकिन एक ही ऐसा नागरिक था, जिसमें यह शक्ति थी। उसने राजा को बाल्यावस्था से ही शस्त्रविद्या सिखाई थी। राजा को भी अपने 'गुरुवर्य' के प्रति भारी आदर था।

क्रोध में जलता राजा कत्लेआम के एक एक कर हुक्म देता जा रहा था। हजारों लोगों के समूह को भेद कर 'गुरुजी' राजा के पास पहूँचे। उन्हें देखते ही राजाने नमस्कार किया।

'मेरी एक बात मानोगे ?' गुरुने स्पष्ट रूप में पूछा।

'गुरुजी ! आप की बात का उल्लंघन कभी हुआ है। आज्ञा दें।' राजाने कहा।

www.yugpradhan.com

'तो सारे नागरिकों को अभयदान दो।' गुरुजीने कहा।

'अवश्य गुरुजी ! आप इस तालाब में स्नान कर बाहर आऐं, तब तक का अभयदान अवश्य होगा। राजा बोले।'

एक ही पल में सोचकर, पीठ पर पत्थर बाँध, गुरुजीने जलसमाधि ले ली। राजा प्रतीक्षा करता ही रहा। गुरुजी बाहर निकले ही नहीं।

सारे नगर को हमेशा का अभयवचन मिल पाया। ऐसे थे हमारे देश के परोपकार–परायण महापुरुष। आज लाखों में एक भी शायद ही नजर आयें !

(१३३) भूख : पेट की या वासना की ?

सम्राट सिकंदरने तुर्कस्तान पर चढ़ाई की। सारा सैन्य दुश्मन पर धावा बोलने भागा जा रहा था। तुर्कस्तान के बादशाह समझ गये थे कि उस के विरुद्ध टकरा कर देश के सर्वनाश के सिवा और कुछ

लाभ न होगा। उन्होंने दीर्घदर्शी बन, पहले से ही अपना दूत भेजकर शरणागति का एलान कर दिया।

रक्तविहीन उस विजय से सम्राट सिकंदर फूला न समाया। तुर्कस्तान के बादशाह ने सिकंदर का बहुमान कर नगरप्रवेश कराया।

भारी रसाले के साथ सिकंदर ने तुर्कदेश के लोगों का मान स्वीकार किया। तोपों की आवाजों के साथ बादशाह सिकंदर ने राज-महल में प्रवेश किया।

भोजन का समय हुआ। राष्ट्र के बड़े बड़े प्रतिष्ठितों को भोज-समारंभ में आमंत्रित किये थे। सभी आ पहुँचे। सम्राट सिकंदर भी आ पहुँचे। यजमान बादशाह ने रसोई परोसने का आदेश दिया। एक एक कर परोसने वाले निकले। किसी के पात्र में मोती थे तो किसी के पात्र में हीरे। चम्मचों के द्वारा सभी सिकन्दर की थाली में भी हीरे–मोती आदि परोसने लगे।

राजा सिकंदर तो देखते ही आगबबूला हो उठा। तेवरियाँ बदल गयीं। यह कैसा अपमान। उसने तुर्क के बादशाह के सामने देखा। चालाक बादशाह स्थिति समझ गये। खड़े हो, हाथ जोडकर उन्होंने कहा–' नामदार ' जिसकी आपको भूख थी उसी का भोजन परोसा गया है। मैं इतना तो समझ सकता हूँ कि चाह सामान्य भोजन के लिये सम्राट यहाँ तक नहीं खींच आते। उनके प्रदेश में इस बात की कहाँ कमी है ? अतः पेट के खाद्य पदार्थ के बजाय मैंने तृष्णा का भोजन परोस कर आप का सन्मान किया है।"

सिकंदर स्तब्ध हो गया। बादशाह को राज्य सुपरद कर, स्वदेश वापस चला गया।

www.yugpradhan.com

(१३४) भले बने रहो

पचास मील की रफ्तार से ट्रेन दौडी जा रही थी। एक स्टेशन आया। गाडी रुक गयी। तीसरे वर्ग के डिब्बे में एक लड़का घुसा। सीटी बजी। गाडी सरकने लगी। रफ्तार तेज होने लगी।

तीसरे वर्ग के डिब्बे में, एक कालिज के सारे विद्यार्थी मुसाफिरी कर रहे थे। रविवार की छुट्टी मनाने के लिये, सभी मौज–मजा करने कहीं जा रहे थे। कहीं अनुशासन न था, शान्ति भी न थी। अलबत्त वहाँ केवल थी वानर–सुलभ चीख पुकारें, मूर्खजन–सुलभ हासमजाक! सोचा, क्या हुआ है इस यौवन को! उन्माद के ही विविध प्रकारोंने अतिरेक कर रखा है।

उस भिखमंगे लडके ने सभी का ध्यान अपनी ओर खींचा। मधुर कंठ से उसने कवि सूरदास का पद ललकारा–"जसोदा बार बार यह भाखे...." वहाँ एक नेरोकट पेन्ट पहने कालिजियनने भिखारी से कहा– 'अरे बेवकूफ! यह तूने क्या कर रखा है? यहाँ थोडी भक्तों की जमात बैठी है! कोई अच्छा खासा सिनेमा का गीत सुना दो।"

भूखे भिखारी ने एक निःश्वास डाला। और मजबूर हो कालिजियनों की फरमाईश पेश करने लगा। एक....दो... तीन....गीत....! सभी के मन मचल उठे। सभी के दिल आनंद विभोर हो गये।

तुरंत ही एक कालिजियनने उसके सामने मुट्ठी भर पैसे धर दिये और कहा–"उठाओ, जितना चाहो उतना इस में से ले लो। उन हाथों में पूरे ९–१० रुपयों का चिलन था। लेकिन उसने तो दस पैसे के एक सिक्के को उठाकर मुँह फेर लिया। 'अरे, ऐसा क्यों?" विद्यार्थी ने कहा।

www.yugpradhan.com

भिखारीने सस्मित उत्तर दिया—" साहब, हम भिखारी हैं, छूटनेवाले नहीं ! "

(१३५) समाधान से काम लो

कई वर्ष पुरानी बात है ।

मरहठा सल्तनत की गद्दी पर, उस समय महाराणा बाजीराव बिराजे थे । उनके दरबार में नामवर निज़ाम के एक प्रतिनिधि (एलची) थे ।

एक रोज की बात है । राजकाज से निबट कर बाजीराव चैन से बैठे हुए थे । चारों ओर खुशामतखोर जमे हुए थे । इधर—उधर बातें चल रहीं थीं । बीच बीच में हंसी—मजाक हो रही थी ।

उसी समय यकायक, क्या जाने क्या हुआ, सो महाराजा बाजीराव के प्रियमंत्री, निज़ाम के प्रतिनिधि की ओर मुँह फेर बोले—' एक निजाम सौ हजाम ! '

वातावरण उग्र बन गया । निजाम के प्रतिनिधि से यह सहा न गया । उन्होंने अपने स्वामी के घोर—अपमान के दर्शन किये । भावि परिणाम की बिना परवाह किये, उन्होंने साफ साफ सुना दिया—" एक बाजी सौ पाजी ! "

' हाय रे ! ' सभी के मुँह से भय की चीख निकल पड़ी । बात बिगड़ बैठी । अब क्या होगा, उसकी कल्पना मात्र से सब बेचैन हो उठे । महाराजा बाजीराव का मुँह भी आगबबूला हो उठा ।

लेकिन पलकमात्र में बाजीराव के एक बुजुर्ग मंत्रीने बाजी पलट दी । ठहाका मार हँसते हुए उन्होंने कहा—' ओह, दोनों ही ने कितनी मजे की बात बतायी । महाराजा साहब, पहले आप मेरी बात

www.yogpradhan.com

सुनें। हमारे मंत्रीने यह बताया कि दुनिया में निजाम तो एक ही हैं, बाकी तमाम हजाम हैं। जब कि उसके प्रत्युत्तर में निजाम के प्रतिनिधिने बताया कि दुनिया में बाजीजी तो एक ही, बाकी सारे पाजी हैं!

सुनते ही सभी हँस पड़े। सभीने उस बुजुर्ग मंत्री की समयसूचकता पर धन्यवाद दिये।

(१३६) सही माँ

"बेटे, तू दीक्षा लेनेकी बात करता है; लेकिन यह कोई मामूली खेल नहीं। अरे! वह तो लोहे के चने चबाना है। कहाँ तुम्हारे सुनहरे बाल और कहाँ तुम्हारी यह कंचनवर्णी काया। ओ मेरे लाडले, तू इस बात को भूला ही दे।" माँ देवकी अपने लाडले पुत्र सुकुमाल को समजा रही थी। उसकी आँखों में से अश्रुधारा बह रही थी।

"लेकिन जिसने संसार दुःखमय देखा, पापों से लदालद भरा पूरा देखा, जिसने दुःख और पापों से मुक्ति दिलानेवाली साधना का मार्ग समझ लिया है, जिसने मानवजीवन के मूल्यों का समादर किया है, वह माया के बंधन में फँसा रह सकता है, भला?" सोलह साल के सुकुमाल, माँ देवकी से प्रार्थना करता रहा। जितने प्रश्न किये, उतने उचित उत्तर दिये।

ऐसा स्पष्ट और असंदिग्ध उत्तर दिया कि माँ भी चकित रह गयी। आखिर....माता देवकी परास्त हुई। इतना ही नहीं; मन ही मन अपने को धन्यवाद देती हुई बोली–

'ऐसे पुत्र को माँ होकर, नारीजगत का सर्वोच्च नारीपद मैंने प्राप्त किया है।'

'आओ, बेटे ! मेरे पास आओ !' माता देवकीने अपने लाडले को गले लगाया। कहा–'लो, अब तुम्हें तुम्हारी माँ दीक्षा लेने के लिये छुट्टी देती है, लेकिन एक शर्त पर।'

'माँ, अरे माँ, तब तो जल्द बताओ तुम्हारी शर्त को।' मैं जरूर मंजूर रखूँगा। दीक्षालाभ होता हो तो मैं सबकुछ उचित करने तैयार हूँ।

'तो....अब मुझे इस संसार की आखिरी माँ बनाना। अब तू ऐसी साधना कर कि तुझे दुबारा जन्म लेने की नौबत ही न आने पाये। बस, जाओ मेरे लाडले लाल ! मेरे अंतःकरण की आशिष सदा तुम्हारे साथ ही रहेगी।"

और आनंदाश्रु से माता देवकी का मुख प्रक्षालित होता रहा।

www.yugpradhan.com

(१३७) अनीति का पाप

देवाधिदेव त्रिलोकपति परमात्मा महावीरदेव के श्रीमुख से जो उच्चारित होता था, उस पुण्यशाली पुनिया की यह कथा है।

नीतिपूर्ण जीवन गुजारने की उसने प्रतिज्ञा की थी। अनीति के धनके ढेर कर, उससे धर्माचरण करने की बात वह कभी सीखा ही नहीं था।

इसी लिये शायद वह गरीब था, लेकिन बड़े बड़े अमीरों को जो प्रसन्नता प्राप्त नहीं हो पायी थी, करोडों सोनामुहरों के व्यय करने पर भी जो दुर्लभ थी, ऐसी अद्वितीय चित्तप्रसन्नता, इस गरीब–अमीर पुनिया को नसीब हुई थी। बिना धन वह अमीर बना हुआ था। बिना बंगले को वह मस्ताना महावीर भक्त था।

एक रोज की घटना है। आज सामायिक में बैठे पुनिया का चित्त विक्षिप्त था। लाख कोशिशें कीं, लेकिन व्यर्थ।

सामायिक विधि पूर्ण हो जाने के बाद उसने अपनी धर्मपत्नी से पूछा—"क्या आज हमारे घरमें अनीतिका—अनधिकार का कोई द्रव्य आ पाया है?"

पत्नी ने साफ इन्कार किया। पुनिये ने कहा—"आज सामायिक में मेरा चित्त एकाग्र हो नहीं पाया, अतः मुझे शंका हुई है। बिना कुछ घटित हुए मेरी चित्तप्रसन्नता खंडित हो नहीं पाती। तुम शान्ति से सोच—विचार कर बादमें मुझे जताना।"

थोडी देरके बाद, यकायक पुनिया की पत्नी ने कहा—"पडोसी की लकडियों के साथ हमारी भी जलाने की लकडियों पासपास थी। उनमें से एकाध लकडी हमारे घरमें शायद आ पायी हो, क्योंकि मैं जरा जल्दबाजी में थी।"

www.yugpradhan.com

"बस....बस...अब सारी बात समझमें आ गयी। जाओ, जल्दी जाकर—वापस दे आओ। नीतिके दुःख अच्छे, लेकिन अनीति के पाप खतरनाक होते हैं। वे तो घर बरबाद करे और, हमारा जन्म जन्मान्तर—बरबाद कर दें।"

धर्मपत्नी का शिर, अपने सावधान पति के चरणों में झुक गया।

(१३८) बापके कूएँमें डूबा नहीं जाता

कालसौरिक नामक कसाई का सुलस नामक लड़का था।

सुलस सही अर्थ में पापभीरु और धार्मिक था। क्या जाने कौन पाप के फलस्वरूप, ऐसी आत्मा का जन्म, कसाई के घरमें हो पाया है?

पिता कालसौरिक कुत्तेसे भी गये बीते थे, जो कुत्तेकी मौत मरे। अभी तो उनका शव पड़ा था और उनकी आत्मा चीखती पुकारती नरक के कुंभीपाक में आ पहुँची।

उत्तरक्रिया पूरी हुई। सारा परिवार एकत्र हुआ था। सभीने सुलस से कहा—" अब पिता का व्यवसाय शुरू कर दो। उलटा—उलटा कर सभी ने यह बात समझाने की कोशिश की, लेकिन सुलसने स्पष्ट रूपसे इन्कार कर दिया। वह सभी से यही कहता—" मुझे बाप के कूएँमें डूब नहीं मरना है।"

लेकिन सुलस के स्नेहीजनों ने अपना हठाग्रह नहीं छोडा। सभी ने कहा—" सुलस! पापों के फलका भोग तुम्हें अकेले ही करना होगा नहीं, हम भी उसके भोक्ता बनेंगे। कहो अब क्या हर्ज है?" सुलस मौन रहा। अंदर जाकर भाला ले आया। अपने पाँव टिकाकर, भाले की नोंक उसने इतने जोर से फैंकी कि दोनों पाँवों को आरपर बींध कर निकल गयी। जोर जोर से लगातार चीखने लगा। करुण स्वर से प्रार्थना सभी से करने लेगा कि—" अरे, कोई तो मेरा दुःख उठा लो, अरे, थोडा भाग तो भुगत लो।"

www.yugpradhan.com

हर एकने कहा—" सुलस, भाला तुम्हें घायल करे और उसके दुःख का अनुभव हम कैसे कर पाये? यह तो तुम्हें भुगतना पडेगा!'

भयानक पीडामें आकुल होने पर भी हँसते हुए कहने लगा कि—" तो...फिर मेरे पापकर्मों के भावि दुःखो में तुम लोग कसे हिस्सेदार बन पाओगे? अत एव मुझे अपने पिताजी का वह कनिष्ट व्यवसाय मंजूर नहीं है।"

(१३९) दया धरम का मूल है।

" अरे, कोई हाजिर है क्या? जरा मुनीमजी को बूलाओ तो....!" मृत्युशय्या पर लेटे मोतीशाह सेठने पुकार की।

सेठजी का सारा जीवन धर्ममार्ग में व्यतीत हुआ है। उनकी रग-रगमें धर्म व्याप्त था। जितने, सेठजी भगवान के भक्त थे ऐसे ही गरीबों के मित्र थे और पवित्र जीवनवाले थे वे।

देहत्याग करने से पूर्व थोडे बचे-खुचे समय में भी पुण्यकार्य करने को तमन्ना उनके दिलमें भरी पड़ी है। पुण्यकार्यों के ढेर लगा देने पर भी उन्हें संतोष हो नहीं पाया था।

थोडी ही देर में मुनीमजी आ पहुँचे। सेठजीने कहा—"मुनीमजी सामान्य—पीछडे—माने जानेवाले गरीब लोगों की उधार रकम हमारी खातावही में कितनी होगी?"

"अभी में वही देखकर आपको विदित करता हूँ।" मुनीमजीने कहा।

एकाध घंटा गुजरा। वही लेकर, सेठजी के पास आकर, मुनीमजीने कहा—"सेठजी, लगभग एक लाख रूपयों की उधार निकलती है।"

"मुनीमजी, सारी रकम माफ कर दो! उसे स्थगित कर दो। हाँ....हाँ....मेरी उपस्थिति में ही। मुझे रकम नहीं चाहिए। मुझे तो उन दीन—दुःखियों की दुआ—आशिष चाहिए। लाख रूपयों में जो मिल न पाये, ऐसी दुआ की मुझे कमाई करने दो। मैं बनिया हूँ.... सही बनिया हूँ। सौ—दोसौ गँवाकर भी मैं लाखों रूपयों की दुआ प्राप्त करूँगा।"

एक एक कर देनदार गरीब सेठजी के पास आता रहा। सेठजी की उपस्थिति में ही वही में रकमें रद की जाने लगीं। प्रत्येक मुँह पर अपार आनंद की लालिमा देख, मोतीशाह सेठ की आत्मा मचल उठी...!

धन्यवाद है, ऐसे दयानिधियों को....!

www.yugpradhan.com

(१४०) कल की चिंता करनेवाला मैं नहीं !

सुधीर के पिताजी का यकायक अवसान होने पर, पुत्र सुधीर ने एक बूढे मुनीमजी से मिलकत का अंदाजा निकालने कहा । दो दिन के बाद मुनिमजी ने कहा–" सुधीरभाई । तीन पीढियाँ अच्छी तरह खा–पी सके उतनी संपत्ति, आपके पिताजी पीछे छोड गये हैं ! "

यह वाक्य सुनते ही सुधीर को चोट सी लगी । " हाय, मेरी चौथी पीढी की हालत क्या होगी ? वह क्या खायेगी–पीयेगी ? भूखों मरेगी क्या ? "

इस चिंता के मारे सुधीर का शरीर कृश होता चला । माताने कई मनौतियाँ की । एक रोज किसी संन्यासीने सलाह दी कि–" हररोज सेरभर बाजरे के आटे का गरीब को दान कर, बादमें खाने–पीने से सब ठीक हो जायेगा । "

www.yugpradhan.com

आटे का दान शुरू हुआ । एक रोज किसी गरीब की भेंट न हुई । दोपहर के बारह बजे कोई गरीब उस रास्ते पर से दौडते–गुजरते दीखा । व्याकुल सुधीरने उससे हाथ जोड, आटे का दान लेते जाने की नम्र प्रार्थना की ।

लेकिन उस भिखारीने कहा–" सेठजी, ऐसे तो मैं स्वीकार न कर पाऊँगा । आप ठहरें । मेरी पत्नी से पूछ तुरंत वापस लौटता हूँ । "

घर पहूँच पत्नी से पूछा–" कितने दिन चल सके उतना अन्न घर में धरा पड़ा है ? "

पत्नीने बताया–" आज दिन पूरा हो उतना है । " पुनः सुधीर के पास आ, भिखारी ने कहा–" सेठजी ! आज दिनभर चले उतना अनाज हमारे घरमें है, अतः आपके आटे की मुझे जरूरत नहीं है । "

"अरे, लेकिन कल तो जरूरत होगी ? कल क्या करोगे ? क्या खाओगे ? लो, ले जाओ।" लगातार सुधीर कहता चला।

हँसते हुए भिखारी ने कहा—"साहब, कल की चिन्ता करनेवाला यहाँ है कौन ?"

यह सुनते ही सुधीर सहम—सा गया; मानों किसीने जोरों का चाँटा जमा दिया हो। "हाय रे अभागा मैं ! चौथी पीढी की चिन्तामें डूबा जा रहा हूँ !"

(१४१) गंगा माँ

जैनसंघ के अग्रगण्य हो गये लालभाई सेठ। उनकी माताजी का नाम था गंगा माँ।

www.yugpradhan.com

उस समय हिन्दुस्तान पर गोरे अंग्रेजों का शासन था। अंग्रेजों ने शिखरजी की पवित्र पहाडी पर 'गेस्ट हाउस' तैयार करने का तय किया। सारे जैनसमाज में खलबली मच गयी। अंग्रेजों के 'गेस्ट हाउस' में तो मद्य और मांस की महफिलें जमी रहें। उसके कारण तीर्थ की पवित्रता का सत्यानाश हो जाय। सभी एकत्र हो संघ के अग्रणी लालभाई के पास पहुँचे। और सारी बात समझायी। सेठजीने साफ इन्कार करते हुए कहा—"राज्यविरुद्ध हम कुछ कर नहीं सकते।" सभी को विदा करने तैयार हुए। अब क्या हो ? एक धर्मप्रेमी को सारी रात नींद नहीं आ पायी। बहुत सोचविचार के बाद एक उपाय ढूँढ निकाला। सुबह जगकर सीधा गंगा माँ के पास जाकर सारी बातें कह सुनाई।

गंगा माँ थी बड़ी धर्मचुस्त। धर्म की तेजस्विता उसकी रगरग में भरी थी।

शाम हुई। अपने बेटे लालभाई के भोजन के थाल में, भोजन के बदले साडी और चूडी रख दीं।

"माँ, यह क्या ?" लालभाईने पूछा।

"तू संघ का अग्रणी क्यों बना है ? अगर गोरों के बंगलों को उनके निर्माण होनेसे पहले अटकाने का सामर्थ्य तुझमें न हो तो, पहन ले यह साडी और चूडी। तुमने तुम्हारी माँ की गोद लजायी है।"

शब्दों में उग्रता थी। मानों गोलियाँ छूटी हों। दूसरे ही दीन 'गेस्ट हाउस' होता रूक गया। संघ में खुशी छा गयी। इसीका नाम है सच्ची माँ !"

(१४२) हाय रे जमाना !

www.yugpradhan.com

अंकारा में घटी यह घटना है।

माता–पिता को रोते बिलखते छोड कर, एक कालिजियनने, किसी युवती साथ 'सिविल मेरेज' कर दिया। अब छ मास ही पूरे हो न पाये थे कि वहाँ आंतरिक संघर्ष की आग दोनों को झुलसाने लगी। हाँ, तनबदन का गुलाबीपन, मांसलता, बाग्छटा आदि तो जैसे के वैसे ही थे; लेकिन वे सारे मिलकर भी इन टूटे दिलों को जोडने में असमर्थ थे।

एक रोज तो मामला बिगड़ बैठा। हाथापाई की नौबत आयी। क्रुद्ध पत्नीने वकील द्वारा पति के विरुद्ध अदालत में मुकदमा पेश कर दिया। वादी–प्रतिवादियों की साक्षियाँ–निवेदन आदि की परंपरा शुरू हो चुकी। आखिरी फैसले का दिन भी आपहुँचा। तैयार भरे तमंचे के साथ फैसला सुनने के लिये कालिजकन्या अदालत में आ पहुँची।

सारा अदालतखंड प्रेक्षक–श्रोतागण से खचाखच भरा हुआ था।

न्यायाधीश उपस्थित हुए। फैसला सुनाया कि–" सबूत के अभाव में आरोपी को निर्दोष बताकर रिहा कह दिया जाता है।"

तुरंत ही 'ठा....ठा... ठा' की आवाज के साथ तीन गोलियाँ चली। उस प्रियतमा युवतीने ही खून की धारा में तड़पते पति को हमेशा के लिये सुला दिया। सभी के मुँह से चीखपुकारें फूट पड़ीं। कई लोग गभराहट के मारे बेहोश हो चुके।

पुलीस की भगदड़ मच गयी। कालिजकन्या की गिरफतारी की गयी। निष्ठुर हास्य के साथ वह बोली–" अब चाहे कुछ हो; मैंने उसे खत्म कर दिया है। मेरा काम पूरा हुआ है। ऐसे बेवकूफ के साथ जीवन गुजारने की अपेक्षा उसका खात्मा बुला देना ही बेहतर था।"

अफसोस ! ऐसे जमाने की वकालत करने की आज अन्योन्य स्पर्धा जारी है।

www.yugpradhan.com

(१४३) अतृप्ति का भिक्षापात्र

जर्मनी में व्हीटेलियस नामक एक राजा था। माता–पिता ने बचपन में बडे प्यार से उसका लालन–पालन किया था। परिणामतः व्हीटेलियस का जीवन अत्यंत विलासी और रंगरागमय बन पाया था।

हर व्यसन के आदी व्हीटेलियस को खाने का भारी शौक था। जब राजा भोजन लेता तो उसके सामने २५–५० ढंगकी खाने की चीजें रखी जाती थीं। राजा का भोजन स्वादिष्ट हो, उसमें कोई शंका ही नहीं।

विविध स्वादिष्ट सामग्रियों से भरी तश्तरियों को देखते ही राजा फूला न समाता। वे अकुला कर भोजन करने बैठ जाते और डट कर खाया ही करते।

अब भी खा लूँ....अब थोडा और खा लूँ...पेट भर जाने पर भी खा लूँ....पेट पूरा भर जाता फिर भी भूख तो जैसी की वैसी बनी ही रहती। आकंठ भोजन कर लेने पर भी, राजा व्हीटेलियस गहरी उछांस छोडते–" हाय खाने का तो अब भी बाकी रह गया है।"

हररोज की यह समस्या थी। एक रोज राजवैद्य को बुलाकर, सारी बात समझाकर, राजाने पूछा–" है कोई उपाय? बस, केवल खाया ही करूँ?" राजवैद्य ने गोलियाँ देते हुए कहा–" पेट पूरा भर जाय फिर एक गोली खा लेना। तुरंत भारी कै होगी। सारी चीजें निकल जायेगीं। पेट खाली हो जाने पर फिर भरपेट खाते रहना। पुनः गोली खा लेना....पुनः भोजन!"

राजाने वैद्य का भारी सन्मान किया। वह कार्यक्रम हमेशा का बन पाया। जिंदगीभर खाता रहा। कै करता रहा। एक साथ तीन बार, चार बार....पुनः खाया...और आखिर जीवन पूरा हो गया।

मृत्युशैया पर पडे राजा व्हीटेलियस अन्त में प्राण छोडने की नौबत आयी तब भी कहता रहा–" अभी भी तृप्ति हो नहीं पायी!"

(१४४) आनंददायक मृत्यु

राज्यों की कूट षड्यंत्रों की तो बातें ही क्या करें? गुर्जरेश्वर महाराजा कुमारपाल भी ऐसे ही किसी षड्यंत्र के शिकार हो गये थे। कलिकालसर्वज्ञ सूरिभगवंत श्रीमद् हेमचंद्राचार्य का देहान्त हुआ और थोडे समय में ही महाराज कुमारपाल पर विषप्रयोग किया गया। सत्ता के मुलायम सिंहासन पर शीघ्र आरूढ होने की जल्दबाजी में अजयपालने उस पापी प्रयोग की आजमाईश की थी।

जहर उदर में फैल गया। थोडे ही समय में गुर्जरेश्वर को सारी स्थिति का अंदाजा हो गया। बिना अकुलाये–घबराये उन्होंने अंग-रक्षक से कहा–" जाओं, कोषाध्यक्ष से कहो, कि खजाने में सुरक्षित विषहरमणि भेजें।" वस्तुतः राजा कुमारपाल मौत से डरते न थे, साथ ही आसानी से वे मरना भी पसंद न करते थे। मानवजीवन बारबार प्राप्त कहाँ होता है? उसमें भी धर्मात्मा का उच्चतम जीवन तो दुर्लभ ही हैं? क्यों मरें? जी कर धर्माराधन क्यों न किया जाय?

थोडे ही समय में घबराये हुए कोषाध्यक्ष आ पहुँचे। मुँह उनका फिका था। राजेश्वर कुमारपाल ने एक ही क्षणमें परिस्थिति भाँप ली। उन्हों ने तुरंत पूछा–" क्या विषहरमणि की चोरी हो गयी?"

अकुलाहट के साथ कोषाध्यक्ष ने कहा–" जी हाँ," कुमारपाल बोल उठे–" तो अब मृत्यु के लिये मेरी उतनी ही तत्परता है।" और वीर नाम का स्मरण करते करते महाराजा ने प्राणत्याग किया।

www.yugpradhan.com

(१४५) भगवद्भक्त महाराजा

पेश्वाओं के जमाने की बात हैं। बड़े माधवराव पेश्वा मराठा राज्य के अधिपति थे। लोगों से वे कहते–" राज्य तो ईश्वर का हैं। मैं तो उनका मामूली सेवक हूँ। उनके ही नाम राज्यसंचालन करता हूँ।" हमेशा उनके मुँह में रामनाम बना रहता था। समय का चक्र चलता रहता है। समय कभी रुकता नहीं। समय कभी किसीसे प्रभावित नहीं होता। माधवराव पेश्वा मृत्युशय्या पर सोते अन्तिम दिन गुजार रहे थे। भगवद्भक्त के रूप में प्रख्यात इस महाराजा की दीर्घायु के निमित्त, सारा मराठा राज्य प्रभुप्रार्थना कर रहा है। फिर भी अन्तिम दिन आ पहुँचा....श्वासनलिका में कफ के अवरोध के कारण, माधवराय

आगे रामनाम का स्मरण न कर पाये । आँखोंमें से आँसू बह निकले । राजवैद्यों के कारण पूछने पर, कंपते हुए हाथों से लिखकर सूचित किया—" मुझे अपने मुख से रामनाम का स्मरण करना है। " वैद्यों ने एक-दूसरे से मंत्रणा कर औषध देने का निर्णय किया ।

" राजन् ! इस औषध से कफावरोध दूर हो जायेगा । लेकिन कच्चे मलको भी खींच ले ऐसा खतरनाक अतिसार बादमें हो जायेगा । क्या आप तैयार है ? "

वैद्यों ने पूछ लिया ।

अपार आनंद के साथ, राजा ने संमति दे दी। औषध दिया गया । अतिसार शुरू हो गया । बिना रोकटोक धाराप्रवाह के रूपमें। शय्या भी मलमय हो चुकी। 'राम ! राम ! राम' का नामस्मरण आनंद-विभोर हो शुरू किया गया । थोडे ही समय में, रामनाम के रटन के साथ प्राणत्याग कर दिया ।

www.yugpradhan.com

(१४६) परदुःखभंजन महाराजा

" भाई, तुम कौन हो ? तुम क्यों परेशान मालूम होते हो ? " संन्यासी के गुप्त वेशमें दरबदर भटकते पराजित कोशलनरेश ने कोशल-निवासी एक प्रजाजन से पूछा । काशीनरेश ने उन्हें पराजित किये थे, लेकिन उनके दिलमें प्रजाजनों के प्रति पारावार स्नेह भरा पड़ा था । इसी कारण, वे गुप्त वेशमें अपने प्रजाजनों की परिस्थिति से अवगत होने के लिये, कोशल में आये थे ।

" अरे महाराजजी ! क्या बतायें आप से ! हमारे कौन से पूर्व-जन्मों के पापों की बदौलत हमारे कोशलनरेश की पराजय हुई । हे भगवन् ! अब तो हमारे प्राण हर लो यही अच्छा होगा ! " हृदय-

विदारक ऐसे शब्दों को सुनते ही कोशलनरेश की आँखोंमें से अश्रु बह निकले। लेकिन अफसोस! अपनी प्रजाको भेंट करने के लिये उसके पास फूटी कौडी भी न थी। अब क्या किया जायँ?" यकायक उपाय सूझा। मेरे मस्तक के लिये, काशीनरेशने पाँच हजार रूपयों का ईनाम घोषित किया गया है। बस....बस....ठीक है! 'चलो भाई, मेरे साथ चलो। तुम्हारा सारा दुःख निपट जायेगा।' इतना कह, कोशलनरेश, उस निराश प्रजाजन को साथ ले, काशीनरेश के दरबार में पहुँचा।

जाते ही कहा-'महाराजा, इस मनुष्य को पाँच हजार रूपये दे दो। क्योंकि वह आप को कोशलनरेश का सर सौंप रहा है।' यह सुनते ही चकित हुए काशीनरेश कोशलराज से गले लिपट कर प्रजा के लिए प्राणाहुति करने तत्पर राजा को उनका राज्य वापस लौटा दिया।

www.yugpradhan.com

(१४७) सुखी, पागल हो चुका।

मुहम्मद गिजनीने सत्रह सत्रह बार सोमनाथ पाटन पर चढ़ाई की—हमला किया। वह मंदिरों का भंजक बना हुआ था। मूर्तियों का वह दुश्मन था। हिन्दुस्तान की सस्य—श्यामला धरती पर उसकी नजर बुरी हो चुकी थी। जितनी बार आया, संपत्ति लूँटकर चला जाता। कई रूपसुन्दरियों को भी उठा ले गया। कई ऐसे पुष्प, एक ही रात में मुरझाकर, मौत की प्रतीक्षा करते, उसके जनानखाने में तडपते रहते थे। लेकिन कालपुरुष से कौन बच पाया है? पापी पुण्योदयने किसे धोखा नहीं दिया? शक्ति किस की हमेशा के लिये सहचारिणी हुई है?

मुहम्मद बुढा हुआ। बीमार हुआ और मृत्युशय्याधीन हुआ। अब उसकी नजर के सामने हजारों मनों की सोने—चाँदी की ईंटे चक-

राने लगीं। हजारों चमकते हीरों के नजारे आँखों के सामने नाचने लगे। रूपसुन्दरियों के बढिया अंगोपांग नजर को लोलुप करने लगे।

'हाय, यह सर्वस्व छोडना पडेगा?' इस विचार मात्रने उसे पागल बना दिया। पागल की तरह वह बकने लगा। एक रोज उसने ऐक मैदान में सारी संपत्ति का ढेर खड़ा कर दिया। दूसरी ओर रूपसुन्दरियों को एक पंक्ति में खड़ी कर दीं। बाद में जैसे जैसे एक एक कर इकटक देखता रहा, वैसे वैसे चीखता रहा।

इन तमामों का एक साथ होनेवाले विरह की याद, उसे नख-शिख जला रही थी।

विजेता मुहम्मद! अब पूरा पागल बना था। इस सुख के योग-वियोगने क्या जाने कितने लोगों का बलिदान लिया होगा? इसकी अपेक्षा दुःख ही अधिक श्रेयस्कर होगा! दुःख का योग होने पर मानव दुःखी ही होता है, लेकिन उस का वियोग तो मनुष्य को सुखी बनाकर ही छोडता है।

www.yugpradhan.com

(१४८) पाप कौन करते हैं?

बगीचे के एक मालिकने दो नौकरों को नौकरी में धर रखे। एक अंध था। दूसरा दोनों पाँव लंगड़ा। नौकरों की ऐसी पसंदगी के लिये उसने पूरी समझदारी से काम लिया था। उसकी यह मान्यता थी कि अंध कभी फलों को देख न पा सकेगा और लंगड़ा कभी भी पेड़ पर चढ़ न पायेगा। इस प्रकार दोनों में से कोई फलों की चोरी कर न पायेगा। लेकिन ये दोनों बडे उस्ताद थे। थोडे दिन गुजरने के बाद, एक रात दोनोंने भर पेट फल खाये। बाद में मालिक की लापरवाही के कारण फल-स्वादन का कार्यक्रम रोजाना हो चला।

एक रोज सेठ बगीचे में आये। तब फलों की चोरी हुई जान चकित रह गये। लेकिन चन्द मिनटों में ही उन्होंने सारी स्थिति समझ ली।

बाग में बैंच पर बैठकर, दोनों नौकरों से भारी पूछताछ की। अंधने बताया—'मैं तो अंधा हूँ, जनाब! मुझे फल दिखाई ही नहीं देते तो भला मैं खा पाऊँगा कैसे?'

लंगडे ने कहा—'मैं फलों को देख पाता तो हूँ, लेकिन मैं पेड़ पर चढ़ता कैसे?' अतः आप ही समझ लें कि हम चोरी कैसे कर सकते हैं?"

सेठ ने कहा—बदमासो। यहाँ आओ! देखो, तुम दोनों ने इस प्रकार चोरी की है। ऐसा कहकर, अंध के कंधे पर लंगडे को बिठाकर, हाथ ऊँचा उठाकर एक फल तुडवाया।

www.yugpradhan.com

दोनों ने साथ मिलकर ही चोरी का पाप किया है। शरीर तो केवल जड़ है। चैतन्य स्वरूप आत्मा को हाथ, मुँह, पाँव कुछ नहीं। अतः दोनों में से एक भले ही पाप न कर पाये, लेकिन दोनों मिलकर, अवश्य पाप कर सकते हैं!"

(१४९) इन्द्रियदमन

एक था राजा। नरदेव उसका नाम था। बड़ा मजाकी था वह। राजकाज से निबट कर वह कुछ न कुछ मजाक का प्रसंग ढूँढ ही निकालता। नगरजनों को ऐसे चक्कर में डाल देता कि न पूछो बात!

एक रोज की बात है। राजकाज पूरा कर महाराजा नरदेव ने थोड़ी फुरसत पायी थी। यकायक उनके दिमाग में एक तुक्का उभरा। सभाजनों से उन्होंने कहा—"मैं एक बड़ा पुरस्कार देना चाहता

हूँ।" सभी सुन चौकन्ने हो गये। सभी को पुरस्कार प्राप्त करने का लालच लगा।

राजाने बात आगे बढायी–'तुम्हारी बकरी को मेरे पास लाओ। मैं उसके पास खाना रखूँ और यदि वह न खा पाये, तो मैं उसके मालिक को एक हजार सोनामुहरों की भेंट करूँगा।'

सभाजन फूले न समाये। सभीने अपनी बकरियों को भरपेट खिलाया और राजा के सामने ठीक समय पर खड़ी कर दी, लेकिन सभी बकरियोंने राजा के दिये खाद्य में मुँह डाल ही दिया। आखिर बकरियाँ जो ठहरीं! थोडा भी बिना खाये वे कैसे चैन से रह पातीं। सभी मालिक व्यग्र हो गये।

आखिर एक नटखट आदमी सात दिन के बाद आया। अपनी बकरी को सात दिन तक लगातार खाद्य पदार्थ धरता रहा और जैसे ही बकरी मुँह डालने की कोशिश करे कि तुरंत ही जोर से डंडा फटकारने लगता। आखिर भय की मारी बकरीने खाना ही छोड दिया। तब डंडा लेकर वह मालिक, बकरी से साथ राजा के पास पहुँचा। राजाने उसके सामने खाद्य पदार्थ रखा; लेकिन सामने ही डंडा लेकर खडे मालिक को देखा। अब बकरी खाती कैसे? और परिणामस्वरूप उस्ताद इनाम पा गया।

कभी कभी इस प्रकार की दमननीति से इन्द्रियों को भी वश करना उपयुक्त होता है।

(१५०) क्योंकि मैं उसकी जननी हूँ!

महारानी विक्टोरिया की पुत्री का लड़का दौहित्र दशवर्षीय एलिस, मृत्युशय्या पर था। फेफडे में रसी हो गयी थी। उसके श्वासोच्छ्वास

के कारण उस रसी के जीवाणु चौकोर फैले रहते थे। डाक्टरों ने उसकी माता को भी पास जाने का मना कर रखा था। यदि वह पास रहे तो वे जीवाणु उसके श्वासोच्छ्वास के द्वारा शरीर में प्रवेश पाकर प्राणहरण कर लें। अस्पताल के कमरे के प्रवेशद्वार पर ही एक रस्सी बाँध दी गयी थी। एलिस की माँ वहीं से खड़ी खड़ी समाचारों की पूछताछ कर लेती और प्यार लुटाती थी।

लेकिन तीसरा दिन हुआ। एलिस से रहा न गया। उसने पुकारा–'माँ, तू अब मेरे पास आयेगी ही नहीं? क्या मुझे चोकलेट भी न खिलायेगी?'

और....माँ का दिल हाथ रह न पाया। रस्सी काट वह दौड पड़ी। अपने लाडले–दुलारे एलिस को जा कर सीने से लगा दिया। नर्सें दौड़ आयीं। बड़ी मुशीबत के बाद दोनों को अलग कर पायीं। चार ही घंटों में उन जीवाणुओंने माता के शरीर पर अधिकार कर लिया। बीमारी बढ़ गयी। देहत्याग की नौबत आ गयी। खुद महारानी विक्टोरिया आ पहुँची। डाक्टर लोग चिकित्सा के लिये कटिबद्ध थे।

उस समय एक डाक्टरने पूछा–"बहनजी। आप इतनी सुशिक्षित होने पर भी, हमारे मनाईहुक्म की अवगणना कर, एलिस के पास क्यों गयीं?"

मोहावेश में डूबी, बुखार के कारण लाल आँखों के साथ माँ पुकार उठी–"क्यों गयी?" ऐसा पूछ रहे हो? क्योंकि मैं उसकी माँ जो हूँ।" और थोडे ही समय में उसके प्राण चल बसे।

तारक तीर्थंकरदेव भी ऐसे ही हमारे मातास्वरूप नहीं हैं क्या?

www.youpradhan.com

(१५१) अज्ञान ही अपराध

इण्डोनेशिया के दो प्रजाजन, एक स्त्री और दूसरा पुरुष। दोनों स्वतंत्र रूप में हज करने गये। दोनों की भेंट हो गयी। इण्डोनेशिया का ऐसा रिवाज है कि दो प्रजाजनों की भेंट हो जाय तो एकदूसरे के हाथ पर प्यार से चुंबन करते हैं। यह मिलन–विधि वहाँ का शिष्टाचार बन पाया है। मक्का में मिले उन दोनों स्त्री–पुरुषों ने शिष्टाचार की विधि की।

उस समय थोडी ही दूरी पर एक पुलीसमेन खड़ा था। उसने यह दृश्य देखा। तुरन्त दोनों की गिरफ्तारी की। जाहिर में खुले-आम जातीयता के प्रदर्शन करने के अपराध का मुकदमा अदालत में पेश किया।

www.yugpradhan.com

अदालत में मुकदमा शुरू हुआ। दोनों इण्डोनेशिया के निवासियोंने अपने वकील द्वारा कहा–" मेरे असील के देश इण्डोनेशिया नाम के देश में तो इस व्यवहार को शिष्टाचार माना गया है। इस देश में ऐसे व्यवहार को व्यभिचार के रूप में माना जाता है, ससका उन्हें लेशमात्र भी खयाल न था! अतः उन्हें क्षमा करें।"

अदालत ने उस प्रार्थना अस्वीकार करते हुए साफ कहा कि– (Ignorance of law is noexcuse) कानून का अज्ञान यह कोई बचावरक्षा नहीं है। इस देश में आने वाली व्यक्ति को यह चाहिए कि इस देश के शिष्टाचार क्या है, यह सब से पहले जान लें।"

अदालत ने भले ही मामूली लेकिन सजा की ही। पुनः वरिष्ठ अदालत में मुकदमा पेश किया गया। लेकिन मुकदमा रद कर दिया गया और निम्न अदालत के फैसले को ही यथावत् मान्य किया गया।

शास्त्रों में भी काम–क्रोधादि सर्व पापों की अपेक्षा अज्ञान के पाप को ही सर्वाधिक पातक माना गया है न ?

अज्ञानवश जहर खानेवाला क्या मर नहीं पाता ? अनजाने में आग को छूनेवाला जलता नहीं क्या ? अज्ञान भी अपराध ही है।

(१५२) व्यर्थ का झगडा

'बेटे राम !' अत्यंत व्यथित पिता दशरथने कहा। राम–लक्ष्मण को उन्होंने यकायक बुलवाये थे।

"तुम्हारी अपर माता कैकयी को मैं ने वचन दिया था, जिसे आज तक उसने अमानत के रूप में बनाये रखा था। लेकिन आज उसने यह वरदान मुझसे माँग लिया। उसने मुझसे कहा कि–'मेरे वचनदान के संदर्भ में मेरे भरत को अयोध्या की राजगद्दी सौंपी जाय!" राम। मैं अच्छी तरह यह जानता हूँ कि राज्य का सही उत्तराधिकारी सबसे बडे राजकुमार के रूप में तुम्हीं हो, लेकिन वरदान के ऋण में से मुक्त होने के वास्ते, मैं ने 'अयोध्या की गद्दी भरत को प्राप्त होगी।' इस प्रकार कैकेयी को विश्वास दिलाया है।"

पिताजी की बात सुनते ही रामचंद्रजी का मुख उदास हो गया। उस उदासीनता को महाराजा दशरथ, स्पष्ट रूप से देख न सकते थे। कुछ कहने के लिये तैयार हुए, उसी समय राम बोले "पिताजी ! आप के पुत्र के रूपमें मेरा जीवन व्यर्थ गुजरा। वर्ना अयोध्या का राज्य आपने भरत को सौंपा, यह बात आपको मुझे बताने की आवश्यकता ही क्या है ? अरे आप अपने पहरेगीर को भी, अपनी इच्छानुसार सौंपने के लिए मुक्त हैं। हमारे तक जताने की जरूरत ही क्या है ? सचमुच, पुत्र के रूपमें मेरी कोई कमजोरी होगी, जिससे मुझे सूचित करने का

आपको कष्ट उठाना पड़ा। पिताजी ! मैं और भरत अलग कब और कहाँ है ? कैकयी भी, मेरी दुलारी माँ ही तो है न ?"

रामचंद्रजी के इन वाक्यों को सुन, दशरथ हृदय से हर्षविभोर हो उठे।

अधिकार की प्राप्ति के लिये मारकाट करने पर उतारू लोग, "नाहक"–अनधिकार के इस लड़ाई का पाठ सीख ले तो, सभी का उद्धार हो जाता !

(१५३) कौन खराब, दुःख या पाप ?

दोपहर का समय था। अशोकवन उद्यान में महासती सीताजी उदास बैठी थी। रामचंद्रजी की कुशलता के समाचार प्राप्त न हो, तब तक उपवास लगातार जारी थे।

www.yogpradhan.com

राजा रावण ने सीताजी को मनाने की भरपूर कोशिशें की, लेकिन सारी कोशिशें व्यर्थ हुई। आखिर राम–रावण युद्ध छिड़ गया। उसकी गर्जनाओं से सीताजी की चौकीदार बाँदियाँ भडक उठीं।

राक्षसनियाँ घबडाकर सीताजी के पास दौडी पहुँचीं। उन्हों ने कहा–"महासतीजी, आपको अपनी जीद के कारण ही यह युद्ध घोषित तो हुआ, लेकिन आपको पता है कि महाराज रावण के सामने अपनी देह न सौंपने के कारण जो लड़ाई छिडकेगी उसमें लाखों स्त्रियाँ अपने स्वामियों को गँवाकर विधवा होंगी, और लाखों माताएं पुत्रों को गँवा पुत्रविहीन होंगी। अफसोस, वैधव्य की उपाधि आप खुद उनके पर थोपेंगी। लाखों माताओं को पुत्रविहीन करोगी। उसके बजाय आप अपना यह नाजूक बदन...."

"चूप रहो !" गंभीर होकर सीताजीने कहा–"मैं तुमसे पूछती हूँ कि यदि मेरा बदन रावण के हवाले कर दूँ तो इस आर्यदेश में

भविष्य में पैदा होनेवाली करोड़ों स्त्रियाँ मेरा दृष्टान्त आगे धरकर पर-पुरुष को अपनी काया सौंप कुलटाएँ बन पायेगी, उसका खयाल तुमने किया है? उसकी अपेक्षा, लाखों के वैधव्य एवं पुत्रवियोग के दुःख का विकल्प कम हानिप्रद नहीं है? तुम ही बताओ, लाखों विधवाएँ हों उसकी अपेक्षा लाखों कुलटाएँ हों, वह अधिक हानिकारक नहीं है क्या?"

राक्षसनियाँ चुप हो वहाँ से निकल भागी।

(१५४) पुण्यके बल पर प्रतीक्षा न करें!

"सुनो तो, आज तुम्हें मेरी आबरू निभानी ही होगी। तुम कहोगी तो तुम्हारे पाँव पकड़ूंगा। अरे, तुम्हारे पाँव धोकर, उस पानी को भी पी लूँगा, लेकिन आज मेरी लाज बचाये रखो।" अति आर्द्र स्वर में पतिने अपनी सरजोर पत्नी से कहा।

"लेकिन है क्या? यह तो बताओ जी! मैं क्या तुम्हारी बाँदी–लौंड़ी हूँ? स्पष्टता से जरा पहले समझाओ। बाद में अपना निर्णय करूँगी!" तुनक कर पत्नीने साफ साफ कह सुनाया।

"बात ऐसी है कि मेरे दस–बारह मित्रोंने मुँह चढ़कर मुझ से निमंत्रण पा लिया है कि आज शाम हम लोग तुम्हारे घर भोजन करने आने वाले हैं। तुमने कभी आज तक हमें भोजन के लिए निमंत्रित नहीं किये!'

"यह सुन मैं तो स्तब्ध हो गया; लेकिन मन मसोसकर मैंने उस निमंत्रण को मंजूर कर लिया है। अगर इस कार्यक्रम को तुम अच्छी तरह न निभाओ तो हमारी भारी बेईज्जती होगी।'

गरजकर पत्नीने कहा–'यह काम मुझ से न बन पायेगा।'

www.yugpradhan.com

लेकिन फिर भी पतिने किसी भी तरह पत्नी को समझा ही लिया। तब उसने एक शर्त रखी कि–'तुम्हारी पचास आज्ञाओं का ही पालन किया जायेगा। बाद में परेशान हो जायँ, ऐसी नौबत ला दूँगी।' और पतिने यह सब कुछ मंजूर कर रखा। शाम हुई। मित्र–समुदाय आ पहुँचा। 'पानी लाओ, नेपकीन रखो....' आदि फरमाइशें होती चलीं। जब भोजन आधा पूरा हुआ ही था, वहीं पचासवीं आज्ञा पूरी हो चुकी। अब इक्यावनवीं फरमाईश छूटी। 'रायता लाना' और उसके साथ ही मानो धमाके से साथ उनकी श्रीमती उबल पड़ी.... "यह न हो पायेगा! क्या मैं तुम्हारी लौंडी हूँ?" मित्र सुन स्तब्ध हो गये।

दोनों के बीच तूतू–मैंमैं की गुलछर्रियाँ छूटने लगी। यह देखते ही आये हुए मित्र तो बिना हाथमुँह धोये ही भाग छूटे।

पुण्यकार्य ऐसी बेहया स्त्री जैसा है। क्या पता कब धोखा दे दें!"

www.yugpradhan.com

(१५५) कोई कभी क्रोध न करे।

"अहमदाबाद की एक पोल में घटित यह सत्य घटना है। पोल में एक मकानमालिक अपनी पत्नी के साथ अपने ही मकान में पाँचवे मजले पर रहता था। सारे मकान में केवल तीसरे मजले पर पानी की चकलियों की व्यवस्था होने के कारण, तमाम स्त्रियों अपने पानी के बर्तन लाईन में क्रमशः रख छोडती।

एक रोज किसी एक किरायेदार की स्त्री क्रमशः बारी से आये अपने बर्तन में पानी भरती थी। उसी समय मकानमालिक की पत्नी भी वहीं आ धमकी। मालिकियत के रोबमें आकर उसने किरायेदार के

बर्तन को लात मारकर फेंक दिया और उस जगह अपना बरतन जमा दिया।

इस खुले आम अपमान से किरायेदार की पत्नी आगबबूला हो उठी। तूतू-मैंमैं की और गालीगलौज की नोबत आ गयी। मालकिन साफ साफ कह चुकी कि–"तुमसे जो बन पडे, कर लो।"

स्त्री जब आगबबूला हो उठती है तो बाघिन से भी बदतर हो उठती है। किरायेदार की पत्नीने, वहाँ से सीधी अपने कमरे में जा कर किवाड बंद कर दिये। अपने सारे शरीर पर केरोसीन छिडक कर दियासलाई जला दी। ज्वालाएँ भडक उठीं। ज्वालाओं में लिपटी वह स्त्री देखते ही देखते सरपट सीढी चढ़ने लगी। चारों ओर शोरगुल मच गया। मालकिन दौडती नीचे देखने आयी। दोनों ही बीचमें टकरायीं। किरायेदार की स्त्री जोर से झल्ला उठी–"अब तो मरूँगी और साथ तुझे भी खत्म करूँगी।" और वह उसे जोर से लिपट गयी। मालकिन के सारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए।

चंद मिनटों में ही दोनों स्त्रियों की देह जल कर कालीकलूटी हो गयीं। अस्पताल में तडप तडप कर दोनों ने तीन दिनों में प्राण छोड दिये।

(१५६) दीन कभी न बनें!

वे दोनों बहने थीं। संयोगवश बड़ी बहन की शादी श्रीमंत लड़के के साथ हुई थी, जब की छोटी बहन की एक गरीब लड़के के साथ हुई थी। एक ही माँ की दोनों बच्चियाँ होने पर भी दोनों की प्रकृति में आसमान–जमीन का फर्क था। बड़ी बहन छिछली थी जब की छोटी गंभीर स्वभाव की।

एक रोज किसी प्रसंगवश बड़ी बहन ने छोटी बहन को अपने घर भोजन के लिये आमंत्रित की। छोटी बहन भोजन करने आयी।

बड़ी बहन के सारे शरीर पर आभूषण लदे हुए थे। छोटी के पास तो इनेगिने थे और वे भी कल्चर–खोटे। फिर भी उसने जरा भी बुरा न माना।

बात ही बात में बड़ी बहन ने उससे पूछा–" अरी तू जरा मेरे गहनों की ओर तो देख! उसकी गढाई कितनी आकर्षक है! मैं तो प्रतिवर्ष उसकी डिजाइन बदलवा देती हूँ। है न मेरा दमाम! अब तू तो बता कि अपने गहनों की गढ़ाई कब बदलती रहती है?" छोटी बहन की लघुता दिखाने उसने दाव आजमाया।

लेकिन अपनी स्थिति में सदाबहार छोटी बहन ने, बिना प्रभावित हुए तुरंत प्रत्युत्तर दिया कि–" दीदी! सफाई–गढ़ाई की तो बात ही न पूछो, मैं तो हर साल पुराने गहने निकाल कर नये ही बसा लेती हूँ। (कल्चर–कृत्रिम–आर्टिफिश्यल गहनों की क्या किंमत!)

हर स्थिति का अपना सौन्दर्य होता है। सभी उसे देखने की अनोखी दृष्टि प्राप्त कर ले तो, जीवन की सारी दीनताएँ पूरी हो जायँ।

www.yugpradhan.com

(१५७) माँ हो तो ऐसी हो!

एक राजा था। राजा को एक पुत्र था। रूप का अम्बार था। मानों साक्षात् कामदेव! बड़ा सौभाग्यशाली था। माता–पिता का दुलारा था। प्रजा का प्यारा था। युवक होते ही, राजाने अनेक रूपवती राजकुमारियों के साथ; उसकी शादी करा दी। देवदुर्लभ सुख भोगने लगा। दिन, मास, वर्ष गुजरते चले। वैभव–विलास में मग्न राजकुमार का जीवन, तेजी से गुजरने लगा। समय कभी रूकता नहीं।

राजकुमार की माता के दिल में उसका भारी रंज था। "मेरा लाडला इसी प्रकार सारा जीवन खत्म कर देगा? उसके सारे पुण्य यहीं भोगविलास के सुखों में पूरे हो जायेंगे? अरे भगवन्! परलोक में उसकी फिर हालत क्या होगी?"

एक रोज की बात है। राजमहल के झरोखे में राजमाता खडी थी।

नीचे फरस पर बिठा कर राजकुमार की प्रियतमाएँ उसे स्नान करा रही थी। आनंद एवं मस्ती के साथ माँ यह सब देख रही थी। स्नान पूरा हुआ। शरीर पोंछा जा रहा था। उसी समय माँ की आँखोंमें से अश्रुधारा अविरत बहने लगी। आँसू की दो बूंदें पुत्र की पीठ पर गिरीं। गर्म आँसू के स्पर्श से चकित हो, राजकुमार ने आँख ऊपर उठायी.... देखा तो माँ रो रही है।

www.yugpradhan.com

तुरंत उठकर राजकुमार भागा। "माँ, क्यों रो रही हो!" कुमार ने गद्‌गद हो पूछा।

"यह सारे वैभवविलास मेरे पुत्र को खींच कर दुर्गति में—नरक में ले जायेगा, इस दुःख से।"

कुमार सन्न रह गया। उसी समय संसार का त्याग किया। गेरूए कपडे पहने। जंगल की ओर चल पड़ा। माँ देखती ही रही देखती रही....आनंद की अश्रुधारा बह चली।

(१५८) बहुमत या शिष्ट मत?

एक जंगल था। तरह तरह के पशुपक्षी का समुदाय उसमें बस रहा था। उनमें कबूतर भी थे। कतिपय युवान कबूतरों ने अपना संगठन बनाये रखा था। उन्होंने तमाम बूढे—बड़े कबूतरों के साथ

अपना रिश्ता तोड दिया था। लेकिन बूढे कबूतरोंने जब आग्रहपूर्वक उनसे जब यह बात बतायी कि–" तुम लोग अपने साथ किसी एक बूढे कबूतर को, अवश्य रखो। कई बार ऐसे विचित्र प्रसंग उपस्थित होते हैं; जब कि अनुभव–ज्ञान की जरूरत पडती है। तुम सब बिना अनुभव के हों, साथ ही मनस्वी हों। किसी समय मुसीबत में फँस जाओगे।"

बूढे कबूतरों द्वारा की गयी इस बात को युवा कबूतरों ने पूरी हमदर्दी से सुनी और उन्होंने एक बुजर्ग कबूतर को अपनी टोली में आने के लिये आमंत्रण दिया। युवा कबूतरों के हितार्थ उसने भी आमंत्रण स्वीकार लिया।

एक रोज की बात है। ये युवा कबूतर समूह में उडते जा रहे थे। वहाँ जमीन पर सुंदर ज्वार फैली देखी। सभी के मुँह में पानी उभर आया। सभी ललचाये। सभीने भारी बहुमत से यह तय किया कि– 'हम यहीं उतर जाय।' लेकिन उस समय बूढे कबूतरने भारी विरोध किया। सभी युवा कबूतर हँस पड़े और कहने लगे–" बूढे की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। ऐसा मजेदार चारा बिखरा पड़ा है, वहाँ भी इस बूढे को संशय–खतरा दीख पड़ता है? छोडो, जहाँ बहुमत वहीं सत्य। उसका सभी स्वीकार करें। युवा कबूतर भी उनके साथ नीचे उतरा।

सभी चारा चरने लगे। देखते ही देखते एक–एक कर सभी जाल में फँस गये। उस समय बूढे कबूतरने कहा–' देखिये यह है आपका बहुमत। और देख लो तुम्हारा सत्य। चलो अब, मैं लघुमत जैसा समझाउँ वैसा करो। एक साथ सभी पंख फडफडाओ और एक साथ उड भागो।' सभीने एक साथ वैसा ही किया। सारी जाल उठा सभी उड भागे। बेचारा पारधी, देखता ही रह गया।

www.yugpradhan.com

(१५९) किसी न किसी को तो तैयारी करनी ही होगी।

फ्रान्स के भाग्यविधाता नेपोलियन झंझावात की तरह चारों ओर अपनी आक्रमक सेनाओं के साथ आक्रमक बन दौडधूप कर रहा था। उनका नाम सुनते ही प्रजा त्राहि त्राहि पुकारती थी। शत्रुराज्यों की प्रजा का छोटा-सा बच्चा भी, उसका नाम सुनते ही चुप हो जाता था। ऐसे नेपोलियन की महान विशेषता थी उसका आत्मविश्वास। चाहे ऐसी विपरीत स्थिति में भी वह पूरे आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ता और अपने बहादुर सैनिकों के दिलों में जोश भर देता

ऐसे सम्राट से कौन भयभीत न हो पाये। एक समय का प्रसंग है। कई छोटे-बडे राजा, उनके आगमन से कंपित हो उठे। लेकिन अब करे भी क्या? सभी राजा एकत्र हुए। किसीने शरण में जाने का प्रस्ताव रखा। किसीने भाग छूटने की बात बतायी। किसी ने आत्म-हत्या भी निश्चित कर दी!

राजाओं के साथ बैठा एक युवा राजा इन सभी बुजुर्गों की बातें ध्यान से सुन रहा था। उसे किसी भी बात में भलाई न जँची। केवल निर्माल्यता का दर्शन उसके लिये असह्य हो उठा। यकायक अपनी बैठक पर से वह नवयुवान खड़ा हो गया। उसने कहा-" ऐसी निर्माल्य बातों का कोई अर्थ नहीं। शरण में जाने से, भाग जाने से या आत्म-हत्या करने से हमारी आबरू बनी रहेगी क्या? मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग उस महान् सम्राट से भयभीत न हो जाएँ। अगर हमें विजयी होना ही है तो जरा भी विचलित हुए बिना, किसी न किसी को तो, उस सम्राट से आह्वान देना ही होगा। और यहाँ आक्रमण करने से पहले उसे रोकना ही होगा। (Somebody must stop him Somewhere)

पाश्चात्य संस्कृति के झंझावात के सामने हम लोग भी स्तब्ध हो उठे हैं। हमें भी इसी वाक्य के अविरत स्मरण की आवश्यकता है। (Somebody must stop him Somewhere!)

(१६०) धन्यवाद हैं नारी! तुम्हारी चारित्र्य-दीप्ति को!

उसका नाम था हाडी राणी।

बडी धामधूम से एक राजा के साथ, मातापिताने अपनी लाडली को शादी कर दी। राजकुमारी हाडी को लेकर राजा रथ में बैठे। सभीने प्यार-करुणा के साथ हाडी को बिदा दी। शाम होते ही राजा अपनी राजधानी में आ पहुँचे। नवपरिणीता रानी को अंतःपुर में छोड, राजा राजमहल में आ पहुँचे।

www.yogpradhan.com

स्नानादि से निवृत्त हो, राजा हाडी के अंतःपुर की ओर निकल पड़े। हाडी राणी भी अपने पति की प्रतिक्षा करती झरोखे में बैठी थी। दूर से राजा को आते देख, वह हर्ष से रोमांचित हो गयी। आनंद की कम्पनों में वह झूम उठी।

लेकिन वह आनंद क्षणिक रहा। अंतःपुर की ओर आते राजा को बीच में ही एक युवान रूपवती दासी की भेंट हुई। राजा उसके रूप में लट्टू हो गया। उसे खींच पकडकर दूसरे रास्ते पर लपक गया। यह दृश्य देखकर, हाडी राणी तो अवाक् रह गयी। रोमरोम से क्रोधाग्नि धधक उठा। वे शयनखंड में चली गयीं। आधी रात गुजरे, राजाने शयनखंड के द्वार खटखटाये। रानीने द्वार खोले। राजा को देखते ही वह आगबबूला हो उठी बोली—"आपने यह बहुत बुरा काम किया है। मुझे छुओ नहीं। आप इसी समय वापस लौटे।"

राजा दंग रह गये। कई वर्ष ऐसे ही गुजर गये। राजा का अवसान हो चूका। अखंड शीलवती राणी हाडी, अपने पति का सर अपनी गोद में रख चिता पर बैठ गयी और जीते जी जल मर कर सती बन गयी।

सुनो ओ जमानावाद के पुरस्कर्ता लोग, क्या इस से आप लोग कुछ समझने की कोशिश करेंगे!

(१६१) इसे न्याय कहते हैं।

अंदाजन छःसौ साल पहले की बात है। जमाना के नाम जूठ, प्रपंच, छलकपट और आडंबर करने के वे दिन थे। नयी शिक्षा द्वारा सर्जित, न्याय-नीति सदाचार के सत्यानाश के दर्शन स्वप्न में भी दुर्लभ थे।

www.yogpradhan.com

समाज के अधिकांश लोग न्यायी, नीतिमान, सदाचारी और धार्मिक थे। उस जमाने के आदर्श न्याय की एक कहानी है यह।

दिल्ही के तख्त पर एक राजा गद्दीनशीन थे। उसके जीवन में निन्यानव्वे गुणों के सामने शिकार का एक दुर्गुण था। उसे स्वयं इस अवगुण का रंज था। लाख कोशिश करने पर भी वह छूट नहीं पाया था। एक बार राजा जंगल में शिकार करने गया। वहाँ गलतबाजी में बाण चलाने से, एक गरीब का निर्दोष लड़का पलक मात्र में मर गया। गरीब पिताने न्यायाधीश से न्याय पाने के लिये प्रार्थना की। वजीरने राजा के विरुद्ध मुकदमा पेश करने का निर्णय किया। उसने गरीब से कहा—"भाई, कल सुबह राजसभा में उपस्थित हो जाना। तुम्हारी बात सुन तुम्हें न्याय दिया जायेगा।"

थोडी ही देर में नगरभर में बात फैल पडी। सभीने वजीर की

मूर्खता पर हँसीमजाक छेडी। कहने लगे—"राजा के विरुद्ध मुकदमा पेश करनेवाले बेचारे वजीर की ही गरदन कट जायेगी।"

सुबह हुई। राजसभा खचाखच भरी हुई थी। वह गरीब बाप और महाराजा, दोनों राजसभा में हाजिर हुए। वजीर ने पूछा—"आपने इस गरीब आदमी के पुत्र की हत्या की है?" राजा ने कहा—"जी हाँ, मेरी वह गंभीर भूल थी। उसकी आप उचित शिक्षा फरमायें। साथ ही ऐसी गलती जीवन में फिर कभी न करने के वादे के साथ, एक बार मुझे माफी देने की नम्र प्रार्थना करता हूँ।"

"नहीं, मैं माफी दे नहीं सकता। वह तो इस गरीब बाप के हाथों की बात है।" वजीर ने कहा।

राजाने उस गरीब के पास जाकर क्षमा—प्रार्थना की। गरीब ने आँखों में आंसू के साथ क्षमा दे दी। सारी राजसभा आनंद की पुकारों—चीखों से गुंज उठी।

www.yugpradhan.com

राजा वजीर के पास दौडता आया। प्रेम से लिपटते हुए उसने वजीर से कहा—"वजीरजी! अगर आज आपने मेरी अदब रखी होती तो यह खड्ग मैंने सजा कर तैयार रखा था। सही न्याय न देने पर, आपका मस्तक इसी समय अलग कर दिया होता।"

वजीर ने कहा—"राजन्, यदि आपने उस गरीब से क्षमा—प्रार्थना न की होती तो, यह सोटी मैंने तैयार रखी थी। दिल्ही के चौक पर खडे कर अपने हाथों से मैं खुद फटकारता।"

कहाँ आज का रिश्वतखोर कानूनी—शासन और उस जमाने का प्रामाणिक न्याय—शासन।

(१६२) स्त्री के चरित्र !

थोडे ही वर्षों के पहले की यह कहानी है। एक स्त्री के जीवन पर लिखित कलंककथा अभी ताज़ा ही है।

एक अत्यंत गरीब आदमी था। किस्मत खूल गयी और देखते ही देखते वह श्रीमंत बन बैठा। सट्टा के व्यवसाय के कारण, नाथिया में से नाथालाल हो गया। और चंपाडी में से उन्होंने चंपा रानी बना दी।

लेकिन इस प्रगति को वह निभा न सका। लाभ का अजीर्ण हो गया। और लोभवृत्ति प्रतिदिन विकृत हो उठी। अमीरों की मैत्री कौन छोडे। कई असामाजिक तत्व उनका साथ निभाने लगे। एक दिन बुरा निकला। जुए के दाव में नाथालाल सेठने सर्वस्व गँवा दिया। हार की बाजी को जीत में पलट देने के लिये सेठ दुबारा खेलते गये और बाकी बचा हारते गये। अन्त में रूठ ५० हजार का कर्ज हो गया, तब निराश हो सेठ खडे हुए। लडखडाती चाल से वे घर पहुँचे। कर्ज अदा न करने पर आबरू गँवाने का भय, उनके दिल को कुरेद रहा था। अब क्या करें ? यकायक उपाय सूझा। पैरों में जोश आया। आत्मविश्वास बढ़ा। घर आ पहुँचा। पत्नी चंपकलता आये दिन कहती रहती कि—"तुम्हारे सिवा का घरसंसार मेरे लिये जहर—सा है। तुम्हारे लिये तो प्राणार्पण करना आसान होगा।" सेठजी के सामने ये वचन गूंजने लगे। इसी कारण सेठजी फूले न समाये। घर पहुँचते तुरंत सेठने चंपकलता से कहा—"अमीरी प्राप्त करने के बाद मैंने तुम्हें कम से कम ५० हजार रूपयों के नये गहने पहनाये हैं। आज मेरी इज्जत का सवाल है। मुझे सारे गहने उतार दो ! कल फिर एक लाख रूपयों के गहने पहनाऊँगा।"

www.yugpradhan.com

"नहीं, कभी नहीं। गहने कभी दिये जाते हैं क्या? आप को और जो व्यवस्था करनी हो सो करें। क्यों जुए की बदी में फँसे थे।" पत्नी ने साफ साफ जलीकटी सुना दी।

सेठजी के लिये ये बातें वज्राघात जैसी थी। उसी समय घर छोड निकल पड़े। उस प्रसंग को बीते आज तीस साल गुजर गये। सेठ का कोई पता नहीं। चंपकलता वैधव्य का अंगीकार नहीं करती। आज भी बनठन कर निकलती है। किसी के पूछताछ करने पर साफ साफ सुनाती है कि—"मेरे पति का मुर्दा प्रत्यक्ष मुझे दिखाओ; बाद में मैं अवश्य वैधव्य स्वीकारूँगी।"

(१६३) प्रथम झाड़ू या जेवर ?

www.yogpradhan.com

एक सुखी कुटुम्ब का लड़का। रमेश उसका नाम। मुसीबत से मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। आगे पढ कर प्रगति करना अशक्य मालूम होने पर, उसके पिता अपने जवेरी मित्र की दूकान पर जवेरी के कामकाज को शिक्षा लेने ले गये। भाउसाहब नाम से प्रख्यात उस जवेरी ने अपने मित्र के प्रस्ताव को बड़ी खुशी से स्वीकार लिया और कहा—"शुभ दिन देखकर अवश्य दूकान पर चले आओ।" रमेश ने भी सूचनानुसार वैसा ही किया।

मुहूर्त के समय पर भाउसाहब ने रमेश के ललाट पर तिलक कर, उसके हाथ में झाड़ू देकर कहा—"भाई सारी दूकान में झाड़ू लगा दो।" झाड़ू हाथ में लेते ही अकुलाये रमेश ने आज्ञा का पालन तो किया लेकिन दूसरे, तीसरे, चौथे रोज भी झाड़ू लगाने का ही हुक्म! अरे, इस प्रकार झाड़ू कब तक लगाता रहूँ? मैं तो झाड़ू लगाने आया हूँ या जेवर परखने के लिये? इस प्रकार सोचते सोचते रमेश व्याकुल बना रहा।

देखते ही देखते एक मास गुजर गया। अब तो रमेश तंग आ गया था। उसने पिताजी से अपनी मुसीबत बतायी। दूसरे दिन रमेश के साथ उसके पिताजी भी साथ आये। और रमेश की परेशानी भाउसाहब के सामने पेश की।

ठहाका मारकर हँसते हुए भाउसाहब बोले, "आज से ही मैं उसके हाथों से झाडू छिनकर जेवर में जडने के लिये किंमती नंग दे कर उसकी शिक्षा का प्रारंभ करनेवाला हो था। सही बात यह है कि जवेरी चाहे उतना उस्ताद हो जाय, फिर भी झाडू लगाने की कला में कुशल न बने तो, साल दो साल की कमाई एक ही कूडे में साफ हो जाय।" इतना कहकर भाउसाहब ने एक मास के इकट्ठे हुए कूडे को तिजोरी में से बाहर निकाला। उसमें से दस हजार रूपयों का एक नंग निकला। "देखो रमेशभाई, ग्राहकों को बताते समय, हजारों नंगों में से यह एक नंग बिखर गया था। झाडू लगाना न आता तो, क्या परिणाम आता? इसीलिये पहले झाडूविद्या, बाद में ही जवेरी की परखविद्या!"

पहले बाह्याचार–शुद्धि, बाद में ही चित्तशुद्धि हो सके। प्रथम व्यवहार, बाद में ही निश्चय हो सकता है।

www.yugpradhan.com

(१६४) मेरे ललाट की ओर देखो!

एक था मारवाडी का लड़का। फाकाकशी के दिन गुजर रहे थे। एक बार घुमते–घुमते राजस्थान की तीर्थभूमि की किसी धर्मशाला में जा पहुँचा। दयालु मुनीमजी ने उसकी रामकहानी सुनकर एक मास के आठ आने की तनख्वाह पर नौकरी में रख लिया। क्योंकि

वह बिलकुल अनपढ़ था। यात्रियों के गद्दे एवं बर्तनों की नोंध भी वह कर नहीं पाता था। फिर भी दयालु मुनीमने पूरे आठ आने देकर उसे विदा दे दी।

कई वर्ष गुजर गये। समयने करवट बदली। आज वह युवा मारवाडी लाखों रूपयों की हरराजी करता हुआ बम्बई का नामांकित श्रीमंत सेठ बन पाया है।

कर्ज से मुक्त होने के लिये उसने धर्मशाला को एक लाख रूपयों का दान कर, उसका जीर्णोद्धार कराया था।

फिर भी आज तक सेठजी अनपढ़ ही रहे थे। चैकबुक के पन्नों पर हस्ताक्षर करना बडी मुसीबत से वे सीख पाये थे, इतना सही था।

www.yugpradhan.com

एक दिन का प्रसंग है। सेक्रेटरी ने पच्चीस चैकों पर हस्ताक्षर करवाये लेकिन कमनसीबी से एक चैक पर हस्ताक्षर सही नहीं हो पाये। वह चैक अस्वीकृत होगा उसका डर बना रहा। लेकिन सेठजी से कहे भी कैसे कि "आपने इस पन्ने पर जो हस्ताक्षर किये हैं वे सही नहीं है।" शायद सेठजी आगबबूले हो जायँ तो कहीं नौकरी से हाथ धो बैठे।

सेक्रेटरी ने उपाय सोचा। वह पन्ना खोल कर उस हस्ताक्षरों को इकटक देखता रहा। पल मात्र में सेठजी को पता चला। उसकी ठुड्डी उठाकर उससे पूछा—"मूर्ख! वहाँ क्या देख रहा है? अरे मेरे ललाट की ओर आँख उठाकर देख। चैक तो मेरे पुण्यबल से स्वीकृत होगा!"

सेक्रेटरी शरमिंदा हो चला गया। चैक सचमुच स्वीकृत हो गया।

(१६५) मेरे भक्तों से सावधान बने रहें।

छोटा–सा कस्बा था। एक रोज एक संन्यासी वहाँ पधारे। उनकी धर्मोपदेशना सुनकर, गाँव के लोग प्रसन्न हो उठे। स्वामीजी से प्रार्थना की कि, "इस समय चातुर्मास इसी शहर में गुजारे। और भक्तजनों के समक्ष हमेशा कथा करें।"

निःस्पृही स्वामीजी ने उस बात का स्वीकार कर उस गाँव में चातुर्मास की कथा शुरू की। जैसे जैसे दिन गुजरते गये वैसे वैसे श्रोताओं की तादाद बढ़ती चली। दो दो हजार आदमी, नित्यप्रति उनकी कथा में आने लगे।

चन्द रोज में चातुर्मास की समाप्ति हुई। स्वामीजी ने शुभ दिन वहाँ से प्रयाण किया। भक्तजनों ने स्वामीजी को भावपूर्ण बिदा दी।

दूसरे दिन का प्रसंग है। स्वामीजी के कई वर्षों के धनिक भक्त आये। स्वामीजी को वंदना कर उस गाँवमें आये। गाँव की अग्रगण्य व्यक्तियों को इकट्ठे कर उनके हाथों में पाँच हजार रूपये देकर कहा– "इस गाँव में हमारे स्वामीजी ने सुंदर चातुर्मास किया है, उसकी स्मृति रूप में, गाँव के मध्य भाग में स्वामीजी की मूर्ति की स्थापना करें और उसके नीचे स्वामीजी का मनपसंद वाक्य अंकित करें।"

ग्रामजन तो फूले न समाये। स्वामीजी के पीछे दौडे। तेज रफ्तार से रास्ते पर चले जाते स्वामी से मिले। एक बरगद की घटाटोप छाया में स्वामीजी और भक्तजन बैठे। स्वामीजी ने पूछा–"बंधुगण! कहिए क्यों आना हुआ?"

"स्वामीजी! बात ऐसी है कि आपके कुछ धनिक भक्तजनों ने हमें पाँच हजार रूपये देकर आपकी मूर्ति प्रतिष्ठा करने कहा है। हमारी भी वैसी ही इच्छा है। तो उसके नीचे खुदवाने के निमित्त, एक

सुवर्णवाक्य आप सूचित करें। हम लोग इस निमित्त आये हैं।" एक अग्रणी ने आने का कारण बताया।

"अरे भाई साहब, मुझ–से सामान्य जन की मूर्ति क्यों हो? ऐसी मूर्खता क्यों कर रहे हैं?" स्वामीजी ने कहा।

लेकिन आज ग्रामजन अपनी बात पर अटल थे। खूब खींचातानी के बाद भी ग्रामजन न माने तब स्वामीजी ने कहा– "लिख लें मेरा मनपसंद सुवर्णवाक्य–"मेरे भक्तजनों से सावधान बने रहें।" यह सुनते ही ग्रामअग्रणी स्तब्ध हो गये।

(१६६) अतृप्ति का भिक्षापात्र!

(कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर का एक स्वप्न)

www.yugpradhan.com

मैं भिखारी था। मेरे फटे पुराने कपडे थे। क्या पता कई टुकडों से वे बने हुए थे। मेरे साथ मेरी प्राणातिप्रिय छोटी सी गठरी थी। उसमें किसी सेठानी द्वारा दिया जूठन का खाना रख छोडता। इच्छा होने पर थोडा खा लेता। बाकी बचा छोडता।

एक रोज श्रीकृष्ण के मंदिर में गया। क्योंकि उन से मुझे अपनी रामकहानी कहनी थी और दो सौ, पाँच सौ सोनामुहरें माँगनी थीं मंदिर में कोई न था, अतः मैं खुशी का मारा पागल हो उठा। आज मुझे अपने दुःखों को, जोरशोर से पेश करने थे। पुराने चावल से भरी गठरी बगल में मार मैं तेज रफ्तार से उनकी ओर झपटा! लेकिन अरे यह क्या....ओह....क्या वे मेरी बात जान गये। यकायक मूर्ति में से तेजपूंज प्रगट हुआ। साक्षात् श्रीकृष्ण मेरी ओर आने लगे। मैं बडी मुसीबत से अपना मन सम्हाल सका। अब मुझे हाथ फैलाकर उन से कुछ माँग लेना था। लेकिन अफसोस यह रहा कि ज्यों ही

मैं हाथ फैलाकर कुछ माँगने गया, त्यों ही खुद उन्होंने ही, हाथ फैलाकर मुझसे माँग की—"मुझे कुछ दो!"

अरे, क्या मुझे अपनी प्राणप्रिय गठरी में से निकाल कर कुछ दे देना पडेगा? मुझे यह असह्य लगा। आखिर काँपते हाथों से गठरी खोलकर, चावल के दो दाने मैंने उनके हाथों में रख दिये। "अब माँगने की बारी मेरी है," ऐसा समझ, ज्यों मैं माँगने चला वही श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये।

इस आघात से मैं बेहोश हो गया। सुबह हुई। मेरी गठरी मैंने खोली। मैंने देखा तो सोने के दो दाने लगातार चमक रहे थे और... मैंने चीखते हुए कहा...हाय!—सारे दाने दे दिये होते तो? दो सुवर्ण दानों की प्राप्ति का आनंद मेरे दिल में कहीं अनहद बन पाया था। ठीक....उसी समय मेरी आँखें खुल गयी।

www.yogpradhan.com

अनुपम गुरुभक्ति

कलिकालसर्वज्ञ आचार्यदेव श्रीमद् हेमचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा कालधर्म (मृत्यु) मृत्यु हुए।

गुर्जरेश्वर महाराजा श्री कुमारपालके वे अत्यंत संमाननीय गुरु थे। राज्यभर में शोक मनाया गया। सारे प्रजाजन कर्तव्यविमूढ बने रहे।

समस्त गुजरात में जीवदया के धर्म के भारी प्रवर्तक-समर्थक वे महापुरुष थे।

हजारों की तादाद में लोग स्मशान-यात्रा में शामिल हुए। मंत्रीगण, सेनापति, विद्वर्ग, और धनाढ्यवर्ग सभी उसमें शामिल हुए।

सबसे आगे गुर्जरेश्वर कुमारपाल थे। उनकी व्यथा का कोई ओर-

छोर न था। क्योंकि गुरु ही उनका सर्वस्व था। सुखदुःख की चर्चा-विचारणा का वे केन्द्र थे। राजनीति के मार्ग पर च्यूत–स्खलित होने से संरक्षण करनेवाले भी वे ही थे। धर्मचर्चाओं द्वारा जीवन को रसिक बनानेवाले भी वे ही थे।

अपना सर्वस्व छूट गया हो ऐसी गुर्जरेश्वर के मुख पर की व्यथा देख प्रजा भी द्रवित हो उठी थी।

अन्तिम क्रिया के लिये निश्चित स्थान पर स्मशानयात्रा पहुँची। चन्दन का काष्टों का ढेर लगाया गया।

रोते–बिलखते व्यथित जनों की साक्षी में अग्निदाह किया गया। लपकती ज्वालाओं के सामने इकटक देखते गुर्जरेश्वर को घेर कर बैठे राज्य के अग्रणी शून्यमनस्क बैठे थे। गुर्जरेश्वर उन अग्निज्वालाओं को इकटक देख रहे थे। यकायक उनकी आँखों में से अश्रुधारा बह निकली और चीत्कार सह रोने–बिलखने लगे। सभी अवाक् रह गये। अमरता का संदेश जीवनभर श्रवण करनेवाला आज इस प्रकार बच्चे तरह बिलखता है?"

अंतर की उस पुकार को गुर्जरेश्वर समझ गये। उन्होंने कहा– "नहीं, मैं मृत्यु को रो नहीं रहा, लेकिन मेरे दुर्भाग्य पर आँसू बहा रहा हूँ!"

आज मुझे यह महसूस होता है कि मैं राजा होने के कारण मेरे प्रिय गुरु को मेरा राज्यपिंड स्वीकार्य न था; तो फिर मैंने ही क्यों न पापकारक राज्य का परित्याग ही कर न दिया? फिर तो मुझे भोजन–पानी का लाभ तो मिल ही जाता न! अफसोस!

हाय रे! मैं अपना जीवन गँवा बैठा।"

www.yugpradhan.com

(१६८) पापी दस बूंदों के निमित्त....!

"ओ माँ ! तुम्हारा क्या विचार है ? कहा हो तो सही। बात ऐसी है कि हमारे राज्य की सीमा पर स्थित छोटे-बडे गाँवों पर जो राजकुमारी शासन करती है वह अभी मुसीबत में फँसी हुई है। उसके रूप पर मुग्ध मोहान्ध एक दूर देश का राजा उसे वश करने, बडी सेना के साथ हमला करने आ रहा है। ऐसी स्थिति में उस राजकुमारीने मेरी सहायता की भीख माँगी है। तो अब मुझे क्या करना चाहिऐ ? ऐसे झगडों से बचे रहें या उस राजकुमारी ही सहायता करें ?"

नवयुवा राजा विक्रम ने माँ का अभिप्राय जानना चाहा। थोडे दिन पहले ही महाराजा का अवसान हुआ था और उनके ज्येष्ठ पुत्र राजगद्दी पर आरूढ हुए थे।

www.yugpradhan.com

माँने दीर्घ निःश्वास छोडा। दुःखी माँका मुँह देख, राजा विक्रम ने उसका कारण पूछा।

"बेटे !" महारानी बोली। "तुम्हारी एक साल की उम्र में घटित दुःखद भूतकाल मेरे स्मरण में ताजा हुआ। अतः निःश्वास निकल गया।

"सुन बेटा, उस समय एक बार तुम्हें दासी के हाथों सौंप मैं स्नानगृह में स्नान करने गयी। थोडी ही देर में तुमने रोना शुरू किया। दासी को तुम्हारे पर तरस आया। तू भूख के कारण रोता है ऐसा समझ, तुझे स्तनपान कराने लगी। थोडी पलें गुजरीं और यकायक मेरा ध्यान उस ओर गया। मैं चिल्लाती बाहर दौड आयी। तुरंत ही मैंने तुम्हारे मुँह में उँगुलियाँ डालकर तुझे उलटाकर कै करवा दी। लेकिन, अफसोस। आज पता चला है कि इतनी कोशिश करने पर भी आज तुम्हारे पेट में उसकी दस बूँदें तो रह पायी हैं ही। वर्ना,

मित्रराज्य की आपत्ति के समय तू अभिप्राय लेने के बजाय, खड्ग लेकर कभी का रणमैदान में कूद पड़ा होता ! "

राजकुमार शरमिंदा हो गया और वहाँ से निकल पड़ा। चन्द मिनटों में रणभेरियों की तीखी आवाजें सुनकर माता आनंदविभोर हो उठी।

(१६९) हथौडी के प्रहार का मूल्य केवल एक रूपया

सैकडों मजदूरों को रोजीरोटी देनेवाली कपडे की एक मिल के सारे यन्त्र, एक रोज दोपहर के समय यकायक रूक गये। निष्णात इंजिनियर दौडधूप करने लगे। दो घन्टे गुजर गये, फिर भी इस बात की जड़ हाथ न लगी " यन्त्र कैसे रूक गये ? " मैनेजर ने तुरंत फोन कर सेठजी को सारी घटना से परिचित किये। सेठजी दौड़ आये। प्रति घंटे हजारों रूपयों का घाटा हो रहा था। रात हुई। दूसरा दिन गुजर गया। तीसरे दिन का प्रभात हुआ। सूर्य आकाश में चमक रहा था।

सेठ और मेनेजर उदास मुँह लिये हाथों में सर पकडे आफिस में बैठे हैं। शहरभर में बात फैलने के कारण कई लोग मिल में दोडे आ रहे थे।

उसी समय एक गँवार वहाँ आया। छुट्टी पाकर मिल में चक्कर काट वह सेठ के पास आया। उसने कहा—" साहब, सारी मशीने अभी चालू कर दूँ। लेकिन रूपये पूरे दस हजार लूँगा। वे भी पहले हाथमें रखने होंगे। "

उस गँवार की बातों को सेठ ने तुरंत मंजूर कर ली। तुरंत चैक धर दिया। छोटी—सी हथौडी ले गँवार चला। कुतूहलवश सेठ, मैनेजर और कुछ कामदार उसके पीछे हो लिये।

www.yugpradhan.com

एक यंत्र के पास जाकर निश्चित जगह पर उसने जोर से हथौडी लगायी और यकायक सारे यन्त्र एक साथ चालू हो गये।

सेठ ने चिल्लाकर कहा—" अरे ओ गँवार। एक हथौडी मारने के दस हजार रूपये! यह तो सरासर खूले आम लूट है!"

हँसते हुए गँवारने कहा—" नहीं सेठजी। हथौडी मारने का तो मैंने एक ही रूपये का चार्ज किया है, लेकिन कहाँ फटकारना, उसका चार्ज मेरा रू. ९९९९ का है।"

(१७०) त्यागी और संसारी की कथा

एक रोज बादशाद अकबर को बिरबल का मजाक करने का सूझा।

www.yugpradhan.com

राजसभा का काम पूरा होने के बाद, बिरबल से बादशाह ने कहा—" अरे बिरबलजी! आज मुझे रात एक सपना आया। बड़ा भद्दा स्वप्न था। तुझे शायद पसंद न आये।

" जहाँपनाह! आप स्वप्न की बात निश्चित होकर बताये।

सभाजन समझ गये कि बादशाह आज तो बिरबल की पतंग की धज्जियाँ उडा देंगे। सभी चौकन्ने बने रहे।

बादशाह ने सपने का जिक्र शुरू किया—" बात ऐसी है कि सपने में हम दोनों घुडस्वार बन कर घुमने निकले थे। रास्ते में संकडी राह आयी। हम दोनों सम्हल सम्हल गुजर रहे थे फिर भी रास्ते के दोनों ओर जहाँ दो कुंड थे वहीं हमारे दोनों के घोडों के पाँव फिसले और उसी के साथ हम दोनों एक एक कुंड में गिर पड़े। अब इससे आगे की बात तो बतानी ही मुश्किल है।

जब पुनः बिरबल ने बात पूरी बताने का आग्रह किया तब बादशाह ने बताया कि—" बिरबल, उन दोनों कुंडों में से एक था इत्र का और दूसरा था विष्टा का। मैं इत्र के कुंड में गिरा और तुम ..." इतना कहते कहते सारी सभा कहकहा लगाकार हँसने लगी।

धीरे से बिरबल खड़ा हुआ। उसने कहा—" मुझे भी ठीक वैसा ही सपना आया। लेकिन वह इससे थोडा आगे बढ़ा हुआ था। उसमे मैंने देखा कि जब हम दोनों बाहर निकले तब आप मुझे चाटने लगे और मैं आपको।

यह सुनते ही बाहशाह अकबर शरमिंदा हो गये।

अकबर जैसे मुनि निन्दनीय है, जब कि बिरबल जैसा गृहस्थ प्रशंसनीय हैं।

www.yugpradhan.com

(१७१) मनुष्य बरबाद हो गया !

(मनुष्य को जंग लग गया !)

वह स्पार्टा का राजा था। उसका नाम लायकरगज था। उसका दिमाग फलद्रुप था; आत्मा उस की जाग्रत थी। प्रजा के सर्वतोमुखी कल्याण की चिंता प्रतिपल उसके दिलमें बनी रहती थी।

एक रोज उसने सोचा कि इस दुनिया में सबसे बडा अगर कोई पाप है तो धनसंग्रह है; यद्यपि तत् निमित्त मेरी प्रजा को जाग्रत रखने के लिये संतपुरुष लगातार घुमते रहते हैं, परंतु केवल दूध की ओर लपकती बिल्ली को दूध के त्याग का उपदेश देना व्यर्थ है वैसे संतों का पुरुषार्थ भी निकम्मा है।

कुछ ऐसा करना चाहिए कि जिससे मनुष्य धनका संग्रह ही कर न पाये।

खूब सोचने पर, राजा लायकरगज को एक उपाय सूझा। दूसरे ही दिन उसने अमुक निश्चित दिनों में सारे चलनी सिक्कों को जमा कर बदले की रकम ले लेने का फरमान किया। राजाने अपने सिक्के जारी किये। लोगों ने अपने सिक्कों के बदले में लोहे के सिक्के पा लिये। थोडे ही महिने गुजरे तो लोहे के सिक्कों को जंग लगने लगा। लोग हडबडाये। यथाशीघ्र लोग उसका निपटारा करने लगे। फिर तो हुआ ऐसा कि जंग लगने के डरसे, लम्बे अरसे तक धनसंग्रह करना अशक्य हो गया। राजा की अभिलाषा पूरी हुई।

(आज के बुद्धिजीवियों को, जंग न लगे, ऐसे सिक्के बनाकर क्या पाया? उस जंग से बचने की कोशिश में भीतर (मानवता) को जंग लग गया!)

www.yugpradhan.com

(१७२) पाखानों के संगठन ! न चाहिए....

किसी एक नगर में एक धनाढ्य महात्मा बस रहे थे। उन्हों ने एक दिन सोचा कि एक ऐसा स्थान बनाया जाय, जहाँ सारा नगर आये, सभी प्रेमसे हिलेमिले और बिखर जायँ। उसके लिये उन्होंने राधे-श्याम का मंदिर बनाया। नगर के हजारों कृष्णभक्तों की वहाँ भीड जमने लगी, लेकिन अन्य धर्मों के लोग वहाँ आते न थे।

अतः उन्होंने एक बड़ा चर्च बनाया। तुरंत ही इसुभक्त वहाँ दौडे आये, लेकिन फिर अन्य धर्मी नहीं आये।

अब किया क्या जाय? कैसे सभी संगठित हों! यह प्रश्न उस धर्मात्मा को परेशान करने लगा। इस चिंता में एक रात तो सारी उजागर में ही गुजरी। सुबह के चार के डंके बजते ही एक विचार चमक पड़ा। वह बेहद खुश हुआ। दूसरे ही दिन सौ मजदूरों को बुलाकर सात ही दिनों में उसने दस पाखाने तैयार कर दिये।

ओह, फिर तो कहना ही क्या ? सारा गाँव दौड आया । एक भी बाकी न रहा । और....संगठन का वह सपना साकार हो उठा !

लेकिन... वह था पाखानों का संगठन ! (दुनिया कभी भी भलाई की बात में सुगठित हो यह अशक्य है....और दूसरी ओर स्वार्थी, कामचलाऊ और मतलब–परस्त संगठनों से कोई फायदा भी नहीं ।)

(१७३) घर की फूट बुरी !

एक जंगल था । हरियाली वनस्पति से सारा जंगल हराभरा था । बडे बडे घटाटोप वृक्षों से जंगल झूम उठा था ।

एक रोज की बात है । जंगल में घटादार वृक्षों में से एक वृक्ष का तना, छोटीसी टहनियों और कोमल पन्नों के साथ अलकमलक की बातें करने में मग्न था । सभी आनंदविभोर थे ।

थोडा समय गुजरा । वहीं एक आदमी छोटी–सी कुल्हाडी हाथमें लेकर वहाँ से गुजरा । उसे देखते ही टहनियों और पन्नों ने रो–धूप और शोरगूल मचा दिया ।

सभी को आश्वासन देता हुआ तना कहने लगा–" जरा भी गभराये नहीं ? यह बिना हथ्थे की लोहे की कुल्हाडी हमारा बाल भी बाँका न कर पायेगी । "

उस आदमी के गुजर जाने पर सभी शान्त हो गये ।

लेकिन दूसरे ही दिन, वही आदमी, हथ्था डाल कर उसी कुल्हाडी को कंधे पर उठाकर, उसी वृक्ष को ओर आ रहा था ।

उसे देखते ही तना बोल उठा–" बस अब आज हमारा सत्या-नाश हो जायेगा । हमारा ही कोई बन्धु कुल्हाडी का हथ्था बन पाया है । अब मौत के अलावा कोई चारा नहीं है ।

www.yogniradhan.com

और...सचमुच वह आदमी उसी वृक्ष के पास आ पहुँचा। उसने जोर से तने पर कुल्हाडी का प्रहार किया।

अपने जीवन के अन्तिम शब्द तने के मुँह से निकल पडे–"घर की फूट बुरी!"

(सभी से निबटारा हो सकता है, घर की फूट का मुकाबला मुश्किल होता मैं। अगर घर में एकता हो तो हिमालय के आक्रमणों का भी मुकाबिला कर सकते हैं, नहीं तो...!)

(१७०) नौकर ने सेठ को निकाला

एक आरब था। रेगिस्तानों में ही उस का जीवन गुजरा था। मुसाफिरी के लिये एक ऊँट पाल रखा था। और साथ में एक छोटा–सा तम्बू सम्हाले था।

www.yugpradhan.com

एक रोज की बात है। रेगिस्तान में मुसाफिरी करते करते यकायक भारी आँधी आ पड़ी। तुरंत आरब ने तंबू ठोककर डेरा जमा दिया। खुद अकेला समा सके ऐसे छोटे तंबू में घुस कर वह आरब आराम से सो गया। ऊँट बाहर ही खड़ा रहा।

आँधी का तूफान बढ़ता चला। अकुलाये ऊटने तंबू की खीडकी खोली। धूल उडकर भीतर घूसने पर भी आरब ने ध्यान न दिया।

धीरे से ऊँटने मुँह अंदर डाला; फिर भी दयालु आरब ने बुरा न माना।

फिर तो ऊँटने मौका देखकर अगले दो पाँव अंदर रखे। तंबू में ज्यादा जगह तो थी नहीं, अतः दयार्द्र होकर आरब ने तंबू से थोडा बाहर निकल ऊँट को जगह दे दी।

बादमें ऊँटने कूदकर बाकी दो पाँव भी तंबू में रख दिये तो आरब को समूचे बहार निकलना पड़ा ।

पहले सेठ अंदर, नौकर बाहर था ।

अब नौकर अंदर ! सेठजी बाहर !

(भोगवासनाओं ने क्रमशः मानव के अंतर में घुस कर कमाल कर दिया है कि जिस से मानव को ही अपने घर से बाहर निकलना पड़ा है ! मालिक की ही हकालपट्टी हो गयी !)

(१७५) सही भी गँवा दिया !

एक नगर था । उस में एक सुखी परिवार बसता था । घरमें तीन ही आदमी थे । उसके पडोस में ही एक स्त्री बसी हुई थी । उसे कोई संतान न थी । पडोसिन के तेजस्वी बच्चे को देख उसकी बुद्धि भ्रष्ट हुई । उसने उस बच्चे पर माँ का हक्क पेश किया । मामला राजा के पास पहुँचा । दोनों स्त्रियों को बुला मँगवाई । दोनों ने बच्चे की माता का अधिकार पेश किया । राजाने भारी कोशिशें की, लेकिन न्याय करना मुश्किल हो पाया ।

बहुत सोच-विचार करने पर राजा को एक उपाय सूझा । दूसरे दिन भरी राजसभा में कहा–'इस बच्चे की माँ के रूप में दोनों स्त्रियों का हक्क है । तो अब इस बच्चे के दो टुकडे कर, दोनों को बाँट देने का मैं हुक्म करता हूँ ।'

यह फैसला सुनते ही, सही माँ व्याकुल हो गयी । वह मन ही मन बोल उठी–" भले, मेरा बच्चा उस स्त्री के पास रहे; फिर भी वह जिंदा तो रहेगा । ओह, उसके टुकडे कैसे किये जायें ! "

सही माताने राजा से कहा–" महाराज, टुकडे कर बाँटने का हुक्म आप वापस ले ले। मेरे लाडले को उस स्त्री को सौंप देने की मैं मंजूरी देती हूँ।"

न्याय हो चुका। वह बच्चे की सही माँ बन गयी। बच्चा उसे ही सौंपा गया।

(जिस के निमित्त सत्य को बचाना है, वही यदि सत्य की लडाई में मरता हो तो, उसकी अपेक्षा सत्य को दुःख के साथ गँवा कर उसे बचाना, यही क्या उचित नहीं है ?)

(१७६) हिंसा में अहिंसा

www.yugpradhan.com

किसी छोटे से गाँव की सीमा पर एक रोज एक पारधी आ पहुँचा। उसने जाल बिछायी। उसके पर दाने बिखेर दिये। थोडी ही दूर पर एक बरगद था, वहाँ पेड के तने के पीछे जाकर चूपचाप खड़ा रहा। जरा भी न हिलता–न डुलता। जरा सी आवाज भी न निकालता।

भोले पंछी तो एक एक कर तेजी से आने लगे। अरे, देखते ही देखते सारी फौज उतर पडी। शान्ति से दाने खाने लगे। पारधी को तो मजा आ गया।

थोडा समय गुजरा। उस समय उस गाँव में से एक युवक पाखाने जाने के लिये सीमा की ओर आने लगा। पारधीने कई बार इशारों द्वारा सूचित करने की कोशिशें कीं कि 'इस ओर आने न पाये।' लेकिन युवक को सारी बात का पता चला। उसने तेजी से दौड लगायी। तालियाँ बजाता वह बिलकुल जाल के पास आ पहुँचा। सारे पंछी उड़ चले।

पारधी का प्रयत्न निष्फल हुआ । वह आगबबूला हो गया; लेकिन वह बेचारा करता भी क्या ?

(पंखियों को शान्तिपूर्वक दाने खिलाने की पारधी की अहिंसामय हिंसा थी; जब कि पंछी को दाने न खाने देने की युवक की हिंसा में भी अहिंसा थी । क्योंकि सभी को अभयदान देने का उसका जमा विभाग भारी उज्ज्वल था ।)

(१७७) कौन बलवान ? भाग्य या पुरुषार्थ ?

एक भील था । सभी बुरे व्यसनों का आदी और उपासक । क्रूर हत्या करना उसके लिये बायें हाथ का खेल था । किसी समय किसी महात्मा से भेंट हो जाय और उसे धर्माचरण का उपदेश दे तो ठहाका मारकर हँसते हुए वह कहता—" धरमबरम सब गप्प है—झूठ है । मैं धर्म में मानता ही नहीं । "

www.yugpradhan.com

एक रोज उस वनके पास ही कोई त्रिकालज्ञानी महात्मा पधारे । किसीने उस भील से कहा—" ये तो कोई निराले महात्मा है । तुम्हें उनके दर्शन करने ही चाहिए । उपरांत तुम्हें उनकी कोई कसौटी करनी हो तो जरूर करें । बाद में तुझे भरोसा हो तो उनके उपदेश का जीवन में अमल करना । "

परीक्षा करने की बात सुनकर, मजा की स्वभाव का भील खुश हो गया । तुरंत उसने एक कबूतर पकड़ा, हाथ में उठाया । छुरा कटि भाग पर लटकाया और पहुँचा त्रिकालज्ञानी महात्मा के पास ।

जाते ही उसने महात्मा से कहा—" तीन कालों का ज्ञान प्राप्त करने का ढोंग करते हो, तो महाराज ! कहें तो जरा कि इस कबूतर को मारूँगा या छोड दूँगा ? "

भीलने मन में निश्चय किया—" जो कहे उस से उलटा कर महाराज को गलत सिद्ध करना । बाद में शोरगुल मचाना । पूरी स्वस्थता से महात्माने कहा—कबूतर को मारना या जिलाना, यह तुम्हारे हाथों की बात है । "

भील अकुलाया । महात्मा के चरणों में प्रणाम कर बैठा । जीवन का धर्म समझ पाया ।

(कहिए, कौन बलवान ? ललाट के लेख या पुरुषार्थ ?)

(१७८) 'चाहिअ, धरमसील नरनाहु'

(तुलसी रामायण का प्रसंग)

रामचंद्रजी वन की ओर प्रयाण कर गये थे । भरत को अयोध्या की राजगद्दी सम्हाले बिना और कोई चारा न था । लेकिन वह भारी असमंजस में था ।

जिसने बडे भाई को वनवास दिलाया, वह खुद अपनी ही माँ थी । वह कैकयी । फिर भी भरत को उसके प्रति भारी नफरत पैदा हुई थी ।

वह समय संतशासन का उत्तम युग था । राजाओं पर भी संतों का आधिपत्य था । राज्य तो राजा लोग करते रहते, लेकिन योग्य समय उचित सूचन संत—महात्मा देते रहते ।

अयोध्या की गद्दी राजा के बिना खाली कैसे रहे ? उस से तो अराजकता फैले । वसिष्ठ ऋषिने राजसभा बुलाई । भरत भी उस में उपस्थित रहे । वसिष्ठ ऋषिने भरत से कहा—" अयोध्या के राजा के रूप में अब तुम्हारा अभिषेक करना ही होगा । प्रजा के हितार्थ आप उसका स्वीकार करें । "

अश्रुपूर्ण नेत्रों से हाथ जोड भरत बोले–' भगवन्, राजा तो धर्मशील होना चाहिए। पापिन माता के पापी पुत्र को आप राज्यारूढ करोगे तो उसके पापों के फलस्वरूप अयोध्या की धरती पर सातों समुद्रों के पानी ऊभर आयेंगे।' (रसा रसातल जाईही तबही।)

अतः लोकहितार्थ मेरी आप से प्रार्थना है कि, मेरे जैसे पापात्मा को अयोध्या का राजा न बनायें। राजा तो धर्मात्मा होना चाहिए (चाहिअ, धरमसील नरनाहु।)

(सिक्यूलरिजम के घातक विचारों से आक्रान्त बने और सर्वस्व का सत्यानाश करने पर उतारू बने आज के नये महाराजा इन बातों का गौर करेंगे?)

www.yugpradhan.com

(१७९) बलिदान

चीनी यात्री ह्यु–एन–संग के नाम से सभी परिचित हैं। उसके जीवन की यह घटना है। हिन्दुस्तान के अनेक विभागों को उसने पैदल यात्रा से छान मारे थे। बडे बडे ग्रन्थागारों में कई दिनों तक लगातार वे बैठे रहे और आर्यों की संस्कृति का परिचय करने के भारी प्रयत्न किये थे। जगह जगह हिन्दुस्तानी लोगोंने उनका भारी स्वागत किया था।

जब भारत में से विदा होने का समय आया। तब ह्यु–एन–संग अपने साथ अनेक मूल्यवान ग्रंथ लिये थे। एक बड़ी शिक्षा–संस्था के कुलपति ने अपने प्रिय शिष्य को उन मेहमान के साथ भेजा था। चीन की सीमा आ पहुँचे, वहाँ संग को विदा कर वापस लौट जाने का आदेश था। लेकिन रास्ते में नदी पार करते समय एक दुर्घटना घटी। भारी बोझ के कारण नौका डूबने लगी। नाविक ने मूल्यवान पुस्तकों

की ओर देखकर कहा—' इन पुस्तकों का बोझ कम किया जाय तभी नौका डूबने से बच सकती है। अतः यथा शीघ्र इन ग्रंथों को फैंक दें। प्राणों से अत्यंत प्रिय पुस्तकों को फैंक देने की बात सुनते ही चीनी यात्री की आँखें आँसु से भीग गयीं। उस दृश्य को देखकर, भारतीय विद्यार्थी ने पलभर में दृढ निर्णय कर लिया और नदी के अगाध जल में डूब मर अपने प्राणों की आहुति दे दी।

(संस्कृति की रक्षा के लिये भी आज तो जरूर है, ऐसे हुतात्माओं के लंबेचौडे कारवाँओं की !)

(१८०) अतिरागी राजा

एक राजा था। अपनी रानी पर उसे अनहद प्यार था। राजकाज में उसका दिल लगता न था। मंत्रियों का समझाना—बुझाना व्यर्थ रहा।

एक बार रानी को देखें, किसी आगन्तुक नैमित्तिक ने राजा से कहा कि—" आपकी रानीजी बारह मास से ज्यादा जिन्दा न रहेगी। " यह सुन राजा आगबबूला हो गया। आँखों में से क्रोधाग्नि फैंकता वह गरजा—" नालायक, इसी समय मेरा देश छोड दो। तुम्हारे जैसे धोखेबाज कई आये और चले गये। "

नैमित्तिक निकल पड़ा। ठीक बारह मास पर रानी गुजर गयी। अपनी भविष्यवाणी की सचाई परखने के लिये ही नैमित्तिक उस नगर में आ पहुँचा। रानी की शोकसभा में वह उपस्थित रहा। उसे देखते ही राजा क्रोध में पागल हो उठा। म्यान में से तलवार खींचकर, उसने कहा—" अरे सतवादी, अब बता तो सही कि मेरा आयुष्य कितना है ? कह दे, वर्ना यहीं पर तुम्हारे शरीर के दो टुकडे हो जाएँगे। "

पूरी स्वस्थता से साथ, नैमित्तिक ने कहा–'आप का आयुष्य मुझ से चार दिन ज्यादा है।' और सुनते ही राजाने तलवार म्यान में रख दी।

(अतिराग के पराक्रम कितने मूर्खतापूर्ण होते हैं।)

(१८१) मानवता झूम उठी !

थोडे वर्षों पहले ही घटी यह घटना है।

कच्छ में भाग आये सोढा राजपूत आदि निर्वासित लोगों की सहायता करने पूज्यश्रीने व्याख्यान–सभा में करुणाभरी प्रार्थना की और केवल बीस मिनटों में ही लगभग चालीस हजार रूपयों की सहाय एकत्र हो गयी। बहनें एक एक कर अपने गहने उतारने लगी। गहनें भी सौ को तादाद में हो गये।

व्याख्यान–सभा के एक कोने में जैन माँ–लडकी बैठी थीं। यह निवेदन सुन उनके अन्तःकरण भी आर्द्र हो उठे। लेकिन सहाय में दे भी क्या ? उस समय जीवन के सर्वस्व स्वरूप बीस रूपयों की एक छोटी–सी 'रिंग' लडकी की अंगुली पर माताने देखी। 'कहो बेटी, इस रिंग को दे दे !' माताने पूछा।

'माँ, इस मौके पर पूछना क्या ?' इतना कह, लडकीने रिंग निकालने की कोशिश की, लेकिन अफसोस ! कोशिश करने पर भी रिंग न निकली।

माँ बोली–'हम हतने अभागी हैं। हर तरह से अभागी ! ऐसे मौके पर हमें यह लाभप्राप्ति न हो तो क्या अर्थ ? माँ–लड़की दोनों रो पडीं। आसपास बैठी बहनें तुरंत दोनों के पास आश्वासन के लिये आ पहुँचीं। थोडी और कोशिश सभी के करने पर रिंग निकल गयी। रिंग तुरंत पहुँचायी गयी।

माँ और लडकी की आँखों में हर्ष के आँसू बहते रहे।

www.yogdrashtih.com

(करोडपति के दस लाख रूपयों के अनुकंपादान की अपेक्षा, यह मामूली प्रेमपूर्णदान अधिक मूल्यवान नहीं है क्या ? कैसा जीता-जागता आदर्श ।)

(१८२) कैसा अदम्य आत्मविश्वास !

वनस्पति में जीवतत्त्व सिद्ध करने का श्री जगदीशचंद्र बसु का आह्वान, तेजोद्वेषी अंग्रेजोंने उठा लिया ।

बसुने पोटेशियम साइनाईड का प्रवाही मँगवाया । अंग्रेजों ने तैयार कर मिश्रण पेश किया । उन्होंने एक पौधे पर उस द्रावण को छिडकते हुए कहा कि-" इस द्रावण-मिश्रण को मुँह में रखते हुए ही, मनुष्य उसी समय मर जाय । ठीक उसी तरह यह पौधा भी खत्म हो जाय तो समझ लें कि वनस्पति में जीवतत्त्व है ! "

www.yugpradhan.com

लेकिन अफसोस, पौधा तो जरा भी मुरझाया नहीं । अंग्रेजों ने भरपेट बसु की मजाक उडायी, लेकिन बसु का विश्वास अटल था । उन्होंने उसी मिश्रण का ग्लास मुँह-होठ पर लगा दिया और देखते ही देखते गले में ऊँडेल दिया । पाँच मिनट गुजर गयी, लेकिन बसु की आँखों में कोई व्याकुलता दीख न पड़ी ।

सैकडों उपस्थित आदमियों के समक्ष; अंग्रेजों की अधमता को खुले आम जाहिर करते हुए बसु ने कहा-" तुम लोगों ने यह बनावटी मिश्रण तैयार किया है । अगर वह पोटेशियम साईनाइड होता तो मैं उसी क्षण खत्म हो जाता । " अपराधी अंग्रेज लोग शरमींदा हो गये ।

(मिश्रण पीते समय बसु का जो आत्मविश्वास था, वैसा विश्वास हमारी संस्कृति की कल्याणकारिताके संबंध में आ जाय तो, भारत का उद्धार हो जायँ ।)

(१८३) महाजन की तेजस्विता !

अपनी प्रेयसी नन्नीजान को हाथी पर साथ बैठाकर उदयपुर—नरेश की सवारी, नगर के राजमार्ग एवं खुले बाजारों में गुजर रही थी, महाजन के अग्रणी नगरसेठ की दूकान के सामने से वह गुजरने लगी। नगरसेठ दूकान पर बैठा था। उनका मन आज बेचैन था जैसे महाराजा का हाथी पास आया कि तुरंत सेठ खातावही खोल कर, पढ़ने का ढोंग कर बैठे रहे। सभ्यता के निमित्त भी वे दूकान से बाहर न निकले और न महाराजा को नमस्कार किये।

महाराजा ने यह देखा। लेकिन उन्हों ने यह सोच लिया कि—"बिना किसी निमित्त महाजन के सेठ, ऐसी गुस्ताखी न करे।"

सवारीयात्रा पूरी होने पर, सेठने राजमहल में बुलाये गये। नरेश ने इस प्रकार के व्यवहार के बारे में पूछा।

मस्तक नमा कर सेठ ने कहा—"महाराजा ! आपके दर्शन करने में, मुझे उपवास करना पडे, ऐसी मुसीबत थी। क्योंकि मेरा मालिक अपनी रखैल को साथ लिये, भरबाजार, आबरू की हराराजी करने निकला था।"

यह सुनते ही राजा नीचे मुँह खड़ा रह गया।

(१८४) मुफ्त का न चाहिए !

राजस्थान के जेसलमेर विभाग के उस प्रदेश में, लगातार यह आठवाँ सूखा पड़ा था। ईश्वर के नामस्मरण द्वारा लोग जीवन पर विश्वास लगाये बैठे थे। अपने पूर्वजन्म के किये पापों का परिणाम समझकर, सूखे के दिन गुजार रहे थे।

www.yugdrashtan.com

एक दिन एक ट्रक आकर वहाँ खड़ा हुआ। बाजरे से खचाखच वह लदा था। उसमें से दो आदमी नीचे उतरे। आसपास के लोगों को बुलाये और कहा कि—"इस बाजरे को यहाँ ढेर के रूपमें छोडकर हम लोग आगे बढ़ते हैं। और कई काम बाकी हैं। सात दिन के बाद हम वापस लौटेंगे। उस समय आप लोगों के सुखदुःख की बातें सुनने के लिए एक दिन के लिये ठहर जायेंगे।"

बाजरे का ढेर लगाकर, ट्रक रवाना हो गया। सात दिनके बाद दो आदमी वापस आये। उन्होंने देखा तो बाजरे का ढेर वहाँ जैसा का वैसा पड़ा था। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। लोगों को इकट्ठे कर कारण पूछा। गाँव के अग्रणी ने आगे आकर नम्रता से कहा—"सेठ! आपका खूब खूब आभार! हमें काम दो और बदले में बाजरा दो। लेकिन एसा मुफ्त का खाना हमें कभी नहीं चाहिए!"

www.yogpradhan.com

(१८५) बडे लोग, अपना ध्येय नहीं भूलते!

(अजैन रामायण प्रसंग)

"ओ स्वामीनाथ! मेरे रूप-लावण्य में या मेरे सतीत्वमें भी आपको कोई कमी महसूस हुई क्या? सीता की अपेक्षा किन बातों में मैं कम हूँ? यह तो मुझे बताओ! क्यों आप मुझे छोड, उस परायी स्त्री के पीछे लट्टू हुए हों।" मंदोदरी ने रावण से पूछा।

रावण ने मंदोदरी से सस्मित पूछा—"पहले तो तू यह बता कि मेरी ताकात और मेरे बड़प्पन में तुझे जरा भी संदेह है क्या?"

"नहीं...नाथ! जरा भी नहीं।"

"बस, तो उसीमें हमारे वैमनस्य की जड़ गड़ी हुई है।" जरा गंभीर हो रावण बोला—"मंदोदरी मुझे मरते दम तक, दुनिया को दो

बातें जतानी हैं—एक तो यह कि बड़े होकर, राजा रावण की तरह जिद—अभिमान न करें। अगर बडे लोग जिद नहीं छोडेंगे तो राजा रावण की तरह पराजित होंगे और दूसरी बात, परायी स्त्री को ओर विकार की दृष्टि से न देखें, नहीं तो राजा रावण जैसे हालहवाल होंगे।"

और पतिके ये शब्द सुनकर, मंदोदरी लज्जित हो गयी।

(१८६) हम सब चोर हैं!

भारत पर खूनखार हमला ले आये सिकंदर को रास्ते में एक चोर मिला। चौकीदार उसके पाँवों में बेड़ियाँ डालकर और दोनों हाथों को रस्से से बाँधकर लिये जा रहे थे। घोडे पर बैठे सिकंदर ने पूछा—"अरे, तू कौन है?"

www.yogpradhan.com

चोर बड़ा चालाक था। उसने तुरंत कहा—"जो आप है, वहीं मैं हूँ।"

"अरे, मैं तो राजा हूँ। देख, मेरी चारों ओर कितने सरदार घेरे खडे हैं? और तू तो साफ चोर दीख पड़ता है। फिर भी ऐसा क्यों कहता है?" अगर हम दोनों एक समान होते तो, तू बंधन में है और मैं मुक्तरूप में घुडसवार बना हुआ हूँ। यह कैसे होता?"

गंभीर मुँह से चोर बोला—"महाराज! यह तो पुण्य की बात है। वर्ना सारे हिन्दुस्तान को लूटने आनेवाले राजा के रूप में आप घोडे पर होते ही कैसे? बाकी चोर—लुटेरे तो हम दोनों हैं ही। पकडे गये या बिन पकडे गये, यह अलग बात है।

(१८७) इसी को कहते हैं, तेजस्विता

मूलजी आशाराम। पुराने जमाने की नाटक कंपनी का नामी नट।

एक नाटक में राजा भर्तृहरि का पाठ लेकर, सौराष्ट्र के किसी गाँव में खेल जमाया। मूलजी का नाम सुनते ही, लोग दौड आये। राजा भी खेल देखने आये।

राजा भर्तृहरि की असली अदा देख प्रेक्षक अवाक् रह गये। पाँच गाँवों का मालिक राजा खुद भी फिका होता था। फिर भी मन में बडबडाया। 'चाहे जैसा हो, नकल सो नकल। मैं तो बिलकुल असल!' फिर भी उससे रहा न गया। उसने चिल्लाकर मूलजी से कहा–"एक बार इसी वेशभूषा में मेरे पास आकर मुझे दंडवत् प्रणाम कर ले....रूपये पाँच हजार का इनाम दूँगा!"

पूरी गर्जना के साथ प्रत्युत्तर मिला-"बयानवे लाख मालवपति मैं स्वयं भर्तृहरि! पाँच गाँवों के ठाकुर को प्रणाम करूं। यह कदापि संभव नहीं। और प्रेक्षकों ने तालियों की लगातार गडगडाहट कर दी। ठाकुर तो बेचारे भीगी बिल्ली बन कर बैठ रहे।

लेकिन नाटक समाप्त होते ही, भर्तृहरि की वेशभूषा उतारकर मूलजी दौडता आया और ठाकुर के चरणों में लौटने लगा।

ठाकुरने उसकी पीठ थपथपाकर धन्यवाद दिये।

(१८८) पुण्य समाप्त हो जाय, तब....

अरे भिक्षुक, तू इतना सारा रोटा क्यों खाता है? मैं खूब भूखा हूँ। मुझे भी थोडा टुकडा दो। भगवान तुम्हारा कल्याण करेंगे।"

पेड के नीचे बैठ, भीख माँगकर लाये दो रोटों की गठरी खोल खानेकी तैयारी करते भिखारी के सामने मेवाड का महाराजा प्रताप गिडगिडाती आवाज में प्रार्थना कर रहे थे।

दुनिया को कंपाते और दिल्ही के बादशाहों की नींद हराम कर

देते महाराणा प्रताप की एक दिन ऐसी हालत हो पायी थी। पेट की आग सम्हाले पहाडियों काटते भटकते महाराना प्रताप के लिये जान के लाले पड गये थे।

भिक्षुक को तरस आया। एक सारा रोटा उठाकर देने के लिये तैयार हुए भिखारी को देख प्रताप आनंदविभोर हो गया।

लेकिन अफसोस! उस रोटे का एक टुकटा भी राणा प्रताप के मुँह में जा न पाया। बात ऐसी हुई कि वहाँ भिक्षुक और राणा प्रताप दोनों ही केवल भूखे न थे, वृक्ष पर एक गीदड भी भूखा आकर बैठा था। भिक्षुक ने जैसे ही वह रोटा, राणा प्रताप के हाथों में रखा, त्यों ही तेज रफ्तार से आकर उस गीदड ने उसे उठा लिया।

महाराणा प्रताप की आँखों में से अश्रुधारा बह चली। उसके मुँह से शब्द निकल पडे कि–

"पुण्य समाप्त हो जाय, तब....!"

www.yogpradhan.com

(१८९) अनादि का बिगड़ा हुआ हिसाब

तीन तीन रातें और तीन दिन गुजर गये लेकिन एक पाई का हिसाब, महंतश्री के मंदिर के व्यवस्थापक पूजारी श्री एकनाथ को जम नहीं रहा था। आखिर उसके प्रयत्न सफल हुए। तीसरी रात डेढ़ बजे उसका हिसाब बैठ गया और जाजम पर से उठकर वह नाचने लगा।

संयोगवश महंतश्री भी उसी समय जगे थे। दोनों की खिड-कियाँ बराबर आमनेसामने होने से, एकनाथ को नाचते देख, महंतश्री आनंदविभोर हो गये और हँसते हँसते पूछा–"बेटा एकनाथ! क्यों नाच रहा है? क्या हुआ?"

"स्वामीजी ! उस एक पाई का हिसाब जम गया । मिल गया ! चुटकियाँ बजाते हुए एकनाथ ने खिडकी में से जवाब दिया । तब महंतश्री ने एकनाथ से कहा–"बेटा, एक पाई के कारण, बिगडे हुए हिसाब के मिल जाने से तुझे इतना आनंद आ रहा है तो अनादि काल से बिगडा हुआ जीवात्मा का हिसाब जब मिल जाय तो तू कितना आनंदविभोर हो जाता ?"

महंतश्री के इन शब्दों ने पूजारी एकनाथ के दिमाग पर चोट मार दी । उसके भव्य भावि की सुंदर जड इन्हीं क्षणों में जम गयी ।

(१९०) अमीर और गरीब

मद्रास के एक श्रीमंत सज्जन, कच्छ के लखपत तहसिल के गाँव गाँव घुमकर, अनाज और कपडों का वितरण खुद हाथोंहाथ कर रहे थे । उस समय एक गाँव के चौराहे के पास से मोटर गुजरने पर, पास में ही खडे गरीब आदमी को देख उन्होंने मोटर रोक दी ।

"लो, भाई ! इन थोडे कपडों की प्रसादी लें !" सज्जन ने कहा ।

"सेठ ! आप मुझे गरीब समझ कर, ये कपडे दे रहे हैं न ? लेकिन सेठजी ! उस बरगद के पेड के नीचे देखो, एक आदमी खडा है, वह मुझसे भी बदतर है । उसे ये कपडे दे दो ।" गरीब ने कहा ।

चकित हुए वे सज्जन उस बरगद के नीचे गये । और, अत्यंत दरिद्र ऐसे उस गरीब आदमी से वस्त्र को स्वीकार करने की प्रार्थना की ।

"अरे सेठजी ! मेरी बात बाद में करे । मुझ से ज्यादा तो गरीब है इस गाँव का काना । काना को ये वस्त्र दो, बेचारा खुश होगा ।" उस गरीब ने बताया ।

फटे–टूटे इन वस्त्रों से शरीर की लज्जा छिपाने की निष्फल कोशिश करते इस गरीब का प्रत्युत्तर सुनकर उस अमीर सज्जन की आँखों से अश्रुधारा बह चली।

अब वे अपनी ओर देखने की भी हिंमत नहीं कर सकते थे।

(१९१) अनपढ़ शिक्षित

छोटे–से स्टेशन पर लोकल ट्रेन आ कर खडी रही। "पानी पीओ पानी" एक स्त्री चिल्ला रही थी। और गाडी के प्रत्येक डिब्बे का चक्कर काट रही थी। गाँव के लोग, स्त्री के पास से पानी पी लेते और बदले में यथाशक्ति उसे कुछ दे पाते।

उतने में गाडी छूटने की सीटी बजी। फर्स्ट क्लास के डिब्बे की खिडकी में से सूट–पेन्ट में सज्ज एक शिक्षित ने बाहर झाँका। पानी-वाली स्त्री को बुलाई। भाई को पेटभर पानी देते हुए कहा कि–"सेठ साहब, इस अभागिन पर मेहरबानी करना। बहुत दूर से पानी ले आती हूँ।" जेब में से एक आनी का सिक्का निकालकर उस शिक्षित ने स्त्री से कहा–"लो बाई, यह एक आना। चलो जल्दी करो, दो पैसे वापस कर दो। सभी एक पैसा देते हैं। मैं तुम्हें दो पैसे दे रहा हूँ।"

आनंदविभोर बनी स्त्रीने झटपट दो पैसे निकाल के वापस किये। और गाडी धीरे धीरे चल पड़ी।

लेकिन अफसोस। उस स्त्रीने उस एक आनी पर नजर डाली। वह बिलकुल झूठी–खोटी थी। उसने अपना सर कूटा।

हाय रे शिक्षा! तू शिक्षितों को मूलभूत आवश्यक शिक्षा भी न दे पायी।

www.yogibadhan.com

(१९२) त्याग किसी को करना नहीं है....!

इष्टदेव के फोटू के सामने दीप जलाकर, पैसों की वसूली के लिये निकले सेठ को रास्ते में याद आया कि–" दीप बुझाने का छूट गया है। अरे, अब घी कितना जल जायेगा ?"

सेठ तेजी से घर की ओर वापस आये। घर की डेली अंदर से बंद थी। पुकारते हुए सेठने पत्नी से कहा–" जल्दी किवाड खोलो !"

किवाड बिना खोले पत्नी ने अंदर से ही आवाज दी–" पहले मुझे बताये कि क्यों वापस आये हैं ? बिना काम मैं किवाड खोलूँ तो उसकी कलें घिस जायें।"

सेठ ने कहा–" अरे कहता हूँ किवाड जल्दी खोलो। अभी दीया जलता होगा और उसमें निकम्मा घी जल रहा होगा।"

अभी बिना किवाड खोले पत्नी ने भीतर से ही जवाब दिया– " मैं तुम्हारी पत्नी ! क्या इतना भी समझ न पाऊँ ! आप गये तो तुरंत मैं ने दीया बुझा दिया था। अब आप बाहर से ही वापस चले जायँ। और मुझे दुःख इस बात का है कि इस प्रकार जल्दी में आने के कारण, आपने जूते के तलवे बेकार में घीस डालें।"

तुरंत जवाब देते हुए पूरे जोस के साथ पतिने कहा–" मैं भी पति तुम्हारा ही हूँ न ! क्या इतना भी समझ न पाऊँ ! जूते के तलवे घीस न जाय, इसलिये जूतों को सर पर धरकर यहाँ आया हूँ।"

(" कैसे धर्मी लोग हैं ये ! धर्म करना है, लेकिन त्याग जरा भी करने की तत्परता नहीं है। बिना त्याग के धर्म में दिखावा करना व्यर्थ है।")

www.yugpradhan.com

(१९३) कोसमें ही छेद हुए हैं !

एक किसान था ।

सारा दिन कोस चलाता था । हट्टेकट्टे दो बैलों की जोडी को बारी बारी जोड़ता और कोस खींचता ।

सारा दिन पानी खींच खींच कर थक जाता फिर भी चाहिये उतना पानी उसके खेत में जा नहीं पहुँचता, उसका उसे भारी रंज था । उसके लिये कोई जाँच–पड़ताल करने के बजाय वह, पानी खींचने के घंटों को बढाये जाता था ! इससे रात होते होते बैल और किसान थक कर चूर हो जाते ।

फिर भी खेत में पानी की खींचातानी बनी रहती । एक दिन कोई भजनिक उसके खेत पर आया । किसान ने आपबीती कह सुनायी ।

www.yogpradhan.com

भजनिक तो रहा भगवान का आदमी । वह कैसे निष्ठुर हो किसी की रामकहानी सुन लेता ?

उसने जाँच शुरू की । कोस के चमडे को देखते ही उसने ताली बजाकर किसान को बुलाया ।

" अरे भाई, इस कोसमें ही सौ सौ छेद बने हुए हैं । तुम पानी खींचते हो, लेकिन उपर आते आते बहुत–सा सारा पानी इस छेदों के जरिये कुएमें ही छूट जाता है । फिर कैसे तुम अपनी मेहनत का परिणाम देख सकोगे ?

किसान समझ गया । कोस दुरस्त कराया ।

(ऐसे ही मनुष्य की बेहद आमदानी भी आज दीख नहीं पड़ती । क्योंकि उसकी तिजोरी (कोस) को भी सौ सौ खर्च के छेद बने हुए हैं ।)

(१९४) जिसे हरि पर विश्वास नहीं !

कवि गंग से अपने मित्रों ने बार बार आग्रह कर रखा था कि– "वे बादशाह अकबर के निमंत्रण स्वीकार कर, उनकी राजसभा के 'कविरत्न' के रूपमें शामिल न हों"। लेकिन हिन्दू कविराज गंग ने उनके आग्रह की उपेक्षा कर, अकबर की राजसभा के राजकवि के रूपमें विभूषित हुए।

थोडा ही समय गुजरा था कि मुस्लिम कवियों ने ईर्ष्या प्रेरित हो, कवि गंग को स्थानभ्रष्ट करने के कूडकपट करने शुरू किये। अकबर तक ऐसी बातें पहुँचाने लगे कि कवि गंग जिनका नमक खाते हैं वैसे आप बादशाह सलामत की भी खुशामत करने तैयार नहीं। अकबर ने कसौटी करना तय किया। एक रोज कवि गंग को समस्या–पूर्ति के लिये एक चरण दिया–"आश करो अकबर की।"

www.yugpradhan.com

सात दिन गुजर गये। प्रतिदिन अकबर समस्या–पूर्ति की याद दिलाता। कवि गंग प्रतिदिन आगामी कल का वादा दे कर बचे रहते। क्योंकि ईश्वर पर अटूट विश्वास रखनेवाले इस कविवर को अकबर की खुशामत करना पसंद न था।

लेकिन आठवें दिन कठोर हो, समस्या–पूर्ति का आग्रह रखा तो तुरंत ही कवि गंग बोल उठे :–

"जिसे हरि पे विश्वास नहीं,
सोही आश करो अकबर की।"

हाय खुशामत ! कोई बचा नहीं उससे।

(१९५) मनोबल टूट गया !

राजा की अकाल मृत्यु होते, राजमाता ने शासन के सूत्र हस्तगत

किये । युवराज अभी नाबालिग था । उसे राजकाज के लिये तैयार करने में राजमाता को भारी कोशिशें करनी पडे ऐसा था । फिर भी राजमाता काबिल थीं । पति के साथ रहने से उन्हों ने शासन की सारी गति–विधियाँ समझ रखी थीं । थोडे ही वर्षों में युवराज तैयार हो गया । योग्य समय पर राजमाताने शासन के सूत्र उनके हाथों में सौंप दिये ।

एक बार यकायक किसी शत्रु–राजाने हमला कर दिया । युवराज और उसका सैन्य अनजानी में पकडा गया ।

जल्दी से तैयारियाँ कर, युवराजने सैन्य के साथ दुश्मन पर धावा बोल दिया । भारी मार-काट मच गयी । युवराज का सैन्य बुरी तरह परास्त हुआ ।

www.yugpradhan.com

रात हुई । राजमाता को सारी बातें अवगत करने के लिये हताश हो युवराज राजमाता के पास पहुँचा । आगामी दिन के संग्राम की चिंताने उसे आज ही परास्त कर दिया था । वह हिंमत गँवा बैठा था । राजमाता से उसने कहा–" माँ ! आज हमने बुरी तरह पराजय उठायी है । कल क्याहाल हवाल होंगे उस का पता नहीं । " राजमाताने कहा–" बेटा, कल तू सारा राज्य गँवा बैठे, तो भी मैं विचलित होने-वाली नहीं हूँ । लेकिन तू हिंमत हार बैठा है, वह मुझे व्यथित कर रही है । "

और इस एक वाक्य से युवराजने विजय की शक्ति पा ली ।

(१९६) मित्र ऐसे हों....!

रियासत का एक राजकुमार था ।

मंत्री का पुत्र, उसका परम मित्र था ।

लेकिन यह मित्र, किसी चायपानी के जलसे का या खुशामत-खोरी का मित्र नहीं था। सही बात कह देने में वह कभी हिच-किचाता नहीं था।

एक रोज दो मित्र घोडे पर घूमने निकले। रास्ते में कतिपय सहेलियों के साथ घुमने निकली नगरसेठ की कुमारिका पुत्री को राजकुमारने देखा।

उसे देख वह विचलित हो उठा। श्रेष्ठीकन्या के होठ पर लट-कती पानीदार मोतीगढ़ी नाक की चूनी देख कर, बोल उठा–'दधि-सुत, बाला बदनपे शोभा से झुलंत। ["बाला के मुँह पर शोभापूर्वक मोती (दधिसुत) कैसा झूल रहा है!"]

यह वाक्य सुनते ही मंत्रीपुत्र चौंक उठा। कुमार की काम-वासना को जान ली। तुरंत उसे सावधान करने के लिये, मंत्रीपुत्रने प्रत्युत्तर में कहा–

"जैसी भुजा सिकंदरी, पंथी मना करत।"

(समुद्र के मौजों में जहाज फँस न जाय, उसके लिये सिकंदरने वहाँ बड़ा भुजा आकार का लकडी का पाटा लगाया था; जो लगातार हिलता रहता था और पथिक जहाजों को सूचित करता था कि 'इस ओर मत आओ, यहाँ तो कई लोगों के बलिदान हो गये हैं')

सुंदरी के रूप–लावण्य की तरंगों में न जाने कई मर्दों के बलिदान हो चुके हैं। होठ पर लटकता और झूमता वह मोती भी पुरुषों को 'सावधान' करता रहता है।

www.yugpradhan.com

(१९७) मातृभक्ति

'अरी माँ, लो यह मैं भाता लाया हूँ। तीन तीन दिनों से तू भूखी है। लो....झट खा लो।"

चीन में कई वर्ष पहले लगातार–दो दो भयानक अकाल–सूखे आये थे।

लाखों पशु–पक्षी उससे मरने लगे थे। हजारों आदमी मुर्दे हो, सूखे से बचने की कोशिशें करते थे।

उदारदिल दाताओंने सदाव्रत–अन्नक्षेत्र खोल रखे थे। दस दस मील की दूरी से लोग, कटोराभर चावल के लिये दौडे आते थे। लम्बी कतार में खडे रहकर बारी आने पर लोग कटोराभर चावल पा लेते थे।

दस मील की दूर पर एक गाँव में माँ–बेटा बस रहे थे।

www.yugpradhan.com

भूखी बुढिया गरीब माँ! और भूखा युवान लडका! बडी मुसीबत से दस मील चलकर, एक कटोरा चावल लडके ने पाये।

माँ की ओर की अपार ममता ने उसके पाँवों में जोश पैदा किया और पुनः दस मील चल वह घर आ पहुँचा।

बुढिया माँ, उसकी प्रतिपल प्रतिक्षा करने में क्षण गुजार रही थी। माँने बेटे से पूछा–"बेटा! तूने चावल खाये?"

बुखार से त्रस्त बेटे ने झूठ कहा–"हाँ, माँ, भरपेट खाया....अब तू ही खा ले।"

और पेटभर चावल खाते खाते माँ को देखते देखने बेटेने शरीर छोड दिया।

(१९८) इसे दान कहते है!

सूखे के एक साल दरमियान महाजन की पशुशाला में कई जानवर आ पहुँचे। लेकिन महाजन किसे कहे? ऐसे काम में थके या

पीछे हठ करे वह महाजन कैसा ? पशुशाला के व्यवस्थापक कसौटी का समय पार कर गये । लेकिन पचास हजार रूपयों का घाटा आ गया । फंड इकट्ठा करने के सिवा और कोई चारा नहीं था । नगर के अग्रणी सेठजी के यहाँ से आरंभ करने उसके घर गये । सेठने सारी जिम्मेवारी उठा ली ।

वृद्ध सेठ बिमार थे । अब बीमारी से उठ पायेंगे या नहीं, उसकी उन्हें शंका थी । पुण्य प्राप्त करने का मौका महाजनने दिया था । पलभर में सोच–विचार कर, लाखों रूपयों की मूल्यवान अंगूठी को अंगूली से निकालने की कोशिश करने लगे । व्यवस्थापक सब देखते रह गये । अंगूठी किसी भी हद निकल नहीं रही थी ।

हँसते हुए सेठने व्यवस्थापकों से कहा–" आप क्यों चिंता करते हैं ? अगर आज यह अंगूठी तुम्हें न दूँ तो कल शरीर पर सूजन आ जाय । लेकिन अगर मृत्यु हो जाय तो मेरे बच्चे, सगे बाप की अंगूली काट अंगूठी को ले लेंगे । ऐसा पाप मुझे उनके जीवन में जोडना नहीं है ।

" लो, अंगूठी निकालने में मुझे हाथ बटाओ तो.... । " सेठने कहा और थोडी ही देर में सभी के प्रयत्नों से अंगूठी निकल पायी ।

सेठ के मुँह पर आनंद की लहरियाँ दौडने लगी ।

(१९९) आहारशौच !

(अजैन महाभारत का प्रसंग)

बाणशय्या पर सोये भीष्म, बाणों के घावों की वेदना से व्यथित थे । पाण्डव और द्रौपदी उनकी सुश्रूषा में लगे हुए थे ।

पितामह की सहनशक्ति से वे अनजान न थे। अत एव वेदना की आर्त्तपुकारों से वे चकित हो जाते थे।

धीरे से द्रौपदीने पितामह को दुःख न सहे जाने का कारण पूछा। पितामहने कहा—वेदना के प्रति मेरी असहिष्णुता के मूल में तू ही रही है। सभा के बीच जब तुम्हारा वस्त्राहरण हुआ, तब दोनों पक्षों के संमाननीय अभिभावक के मेरे अधिकार के रूप में, मैं तुम्हारी उस दुर्दशा को दूर कर सकता था। लेकिन मैं मौन रहा। और तुम्हारे वस्त्र खींचे जाने लगे। कैसा अघोर पाप मैंने किया? अरे रे, इसी के कारण मैं आज वेदना को सह नहीं पाता।

द्रौपदी ने नम्रता से पूछा—" पितामह! कई दिनों से यह बात पूछने की मेरी तीव्र इच्छा थी, लेकिन आज आप ने मेरी शंका दूर कर दी। साथ ही एक बात और भी पूछ लूँ कि—" उस समय आप मौन क्यों रहे थे? क्या धृतराष्ट्र ने मौन रहने का आदेश दे रखा था।"

www.vyapdhan.com

" द्रौपदी!" वेदना की तीखी चिल्लाहट के साथ भीष्म फिर बोल उठे।

" मैं क्यों मौन रहा? ऐसा पूछती हो न?" क्योंकि उस समय मैं दुष्ट दुर्योधन का अन्न खा रहा था।"

(२००) मैं लूँ या दूँ?

वे थे सौराष्ट्र के एक रियासत के नवाब। विशाल थी उनकी रियासत। उस में एक पहाड था। कलकल बहते बारह मासी झरनों ने उसे हराभरा बनाया था।

गरीब प्रजा के लिये तो उसकी वृक्षसंपत्ति आशीर्वाद रूप बनी थी।

समय गुजर रहा था। नवाब साहब को आर्थिक खींचातानी महसूस होने लगी। चतुर वजीर राज्य की तिजोरी को समृद्ध बनाने के उपाय सोचने लगा। उसी संदर्भ में उसकी नजर पर्वत की वृक्ष-समृद्धि की ओर दौडी।

एक दिन नवाब साहब को उसने बताया कि–" हमारी पहाडी की लकडियाँ कई गरीब लोग काटकर ले जाते हैं। अगर एक रतल पर एक पैसा केवल टेक्स लगाया जाय तो लाखों रूपयों की आमदानी हो सकती है!" यह सुनते ही क्रोधावेश में आकर नवाब ने वजीर से कहा–" अब कभी ऐसी बातें मेरे सामने मुँह से न निकाले। मेरी गरीब प्रजा से मुझे पैसे लेने चाहिये या देने चाहिए?"

(उटपुटांग ढंग से टेक्स लगाकर प्रजा का सर्वतोमुखी शोषण करनेवाले भारतीय शासन के कानों तक कोई इस बात को पहुँचायेगा!)

www.yogpradhan.com

(२०१) ऐसे श्रोता बनें!

कल्पसूत्र का व्याख्यान सुनकर घर आये देदाशाहने भोजन करते करते पत्नी से कहा–" आज के व्याख्यान में तूने कुछ सुना क्या! तीर्थंकर परमात्मा महावीरदेव की आत्मा, जब त्रिशलादेवी की कुक्षि में आयी, तब माता को चौदह सपने दिखाई दिये। उठकर अपने पति–राजा सिद्धार्थ के भवन में गये। सपनों की बात कही। पति के पास से स्वप्नफल सुनकर, प्रसन्न हुई त्रिशला अपने भवन में आ पहुँची। बता तो सही, इसमें तुझे कुछ 'अद्भुत' महसूस हुआ?" देदाशाहने पत्नी से पूछा।

" नहीं....मुझे कुछ समझाया नहीं।" पत्नी ने कहा।

" लो, तब मैं ही तुझे बताऊँ। इसका अर्थ यह हुआ कि, आर्यावर्त के संविधान के अनुसार, पतिपत्नी भी हमेशा के लिये एक ही खंड में एक ही शय्या में सोते रहते न थे।" देदाशाह ने कहा।

पत्नी ने कहा—" तो आज से हम भी उसी आदर्श अमल करने लगे। धर्माचरण में विलंब क्यों!" और....उसी रात उस आदर्श का अमल शुरू हो गया।

(चलचित्रों के दूषित युग के लिये भारी चोट—सा यह प्रसंग है, लेकिन आदी—अभ्यस्त गुनहगारों को चोटों का क्या हिसाब?)

(२०२) बिगडी बना लो

बाजीराव के दरबार में निज़ाम स्टेट का एलची कार्यवश आया था। थोडे दिनों के बाद, एकबार उसने दरबार में कहा—" एक बाजी सौ पाजी!

बाजीराव के वफादार मंत्री से यह सहा न गया। उसने तुरंत मुँहतोड़ प्रत्युत्तर देते हुए कहा—" एक निज़ाम, सौ हजाम।"

निज़ाम का प्रतिनिधि आगबूला हो उठा। वातावरण में खलबली मच गयी। बाजीराव के मित्र कानाफूँसियाँ करने लगे। " बाजीराव की सौ पाजियों के साथ बराबरी करनेवाले का सर सलामत नहीं रहना चाहिए....आदि।"

लेकिन उस राजसभा में एक सयाना आदमी भी था। सभा में खड़े होकर उसने सभी से नम्रतापूर्वक कहा—" दोनों की बात सही है। और सच्ची भी है। वाह, सौ पाजियों के सामने महाराजा बाजीराव एक ही पर्याप्त है। वाह, धन्य वाणी।"

www.yogpradhan.com

और सो सौ हजामों को अकेले निज़ाम ही पाठ पढ़ा सकते हैं। अद्भुत !

ऐसा समन्वयात्मक अर्थघटन सुनकर राजसभा के सभी सदस्य शान्त हो पाये।

(२०३) मणि, आठ आनों के बदले में गँवाया

सेठ के पास से एक रूपया उधार लेनेवाले रबारी के पास से उसके कर्ज के रूपमें, सेठ हररोज उनके पास से दो सेर दूध लेते। एक रोज रबारी को चिंतामणि रत्न मिला। लेकिन गँवार जो रहा ! उसे तो वह के केवल चमकीला पथ्थर ही महसूस हुआ। उस चमकते रत्न को रबारी के पास देखकर सेठ की आँखें चमक पड़ी—" अरे, यह तो चिंतामणि है ! "

तुरंत रबारी को पास बुलाया। आठ आनों में सौदा पक्का करने के लिये बहुत समझाया, लेकिन रबारी ने पूरा रूपया माँगा। उसे अपने कर्ज से छूटना था। लेकिन सेठ को वह कर्ज मीठा शहद-सा लगा था। अतः उसके आठ आने बाकी रखने ही थे। सौदा पूरा न हुआ। रबारी चला गया। थोडी ही दूर दूसरे सेठ मिले। एक के बदले दस रूपये देकर उसने झटपट मणि ले लिया। इस बात का पता पहले सेट को चला। रबारी को बुलाकर धमकाते हुए कहा—" अरे मूर्ख ! तूने केवल दस रूपयों में ही मणि को बेच डाला ? "

रबारी ने गंभीर मुँह लिये कहा—" सेठजी ! मैंने तो पत्थर समझ दस रूपयों में ही बेचा, लेकिन तुमने तो मणि जानकर भी केवल आठ आनों के लिये गँवाया ! "

(मणि जैसा मूल्यवान मानवजीवन, कई लोग अज्ञानवश और कई लोभवश हार जाते हैं या गँवा देते हैं ।)

(२०४) गोशालक की गुरद्रोहिता के भूतपूर्व संस्कार

(मृत्यु से पहले प्रायश्चित्त कर जो आत्मा अपने कुसंस्कारों को खत्म नहीं करता या नष्टप्राय नहीं करता, उसके वे बढेचढे कुसंस्कार प्रतिजन्म उस आत्मा की अधोगति किये बिना नहीं रहते ।

त्रिभुवनपति भगवान महावीरस्वामीजी पर तेजोलेश्या की आग छोडकर उन्हें खत्म करने के निष्फल प्रयत्न करनेवाला मंखलिपुत्र गोशालक उसी जन्म में भगवान महावीरदेव को अपका गुरु समझने लगा था; फिर भी उसमें ऐसी गुरुद्रोहिता कैसे पैदा हुई यह समझने के लिये, उसके ईश्वर के रूप में पूर्वजन्म का यहाँ परिचय दिया जा रहा है ।

सावधान हो इस भव को पढे और जीवन में किसी भी प्रकार का अवांछनीय कुत्सित आचार या विचार का अमल बारबार न दोहराएँ; जिससे उसके संस्कार आत्मा में दृढ़मूल बन जायें और बाद में प्रतिजन्म उसका उद्‌गम होता ही रहे ।)

उसका नाम था ईश्वर । त्रिभुवनति परमात्मा महावीर स्वामीजी के उपर तेजोलेश्या की आग छोडकर भस्मीभूत करने का प्रयत्न करने वाले गोशालक की वह पूर्वजन्म की आत्मा थी ।

इस भरतक्षेत्र में पहले उदय नामक एक तीर्थंकर हो गये । जब उनका आयुष्य पूर्ण हुआ और मोक्ष में सिधारे तब उनके निर्वाण निमित्त महोत्सव मनाने के लिये, अनेक देवदेवी लोक इस धरातल पर उतर आये ।

देवदेवियों को साक्षात्दर्शन कर, किसी सरल परिणामी आत्मा को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उसे अपने कतिपय पूर्वभवों का परिचय हुआ। उससे संसार से विरक्त हो उन्होने स्वयं दीक्षा अंगीकार की।

(जैनशास्त्र में इस प्रकार दीक्षित होनेवाले को 'प्रत्येक बुद्ध' के नाम से समझा जाता है।) ये प्रत्येक बुद्ध महात्मा भूमितल को पावन करते हुए समययापन कर रहे थे। एक बार ईश्वर उनके पास आ पहुँचा।

ईश्वर ने प्रत्येक बुद्ध महात्मा से उनके गुरु का नाम पूछा। महात्माने बताया कि – वे प्रत्येक बुद्ध है, अतः उनके गुरु नहीं हाते। इससे संबंधित शास्त्रनीति का भी परिचय कराया; लेकिन ईश्वरने इन बातों की उपेक्षा कर, महात्मा को 'नगुरा' कहकर भारी अवहेलना करने लगा।

www.yugpradhan.com

एक रोज ईश्वर किसी गणधर भगवंत के पास गया। उस समय गणधर भगवंत की देशना जारी थी। ईश्वर देशना श्रवण करने बैठा। देशना में उसने सुना कि "जो आत्मा पृथ्वीकाय के जीवों की हिंसा करता है उसे लंबा संसारभ्रमण करना पड़ता है....आदि।"

यह सुन ईश्वर मन ही मन अकुला उठा। वह सोचने लगा कि– "साधु सारे झूठे होते हैं। वे जैसा बोलते हैं वैसा आचरते नहीं। वे पृथ्वी पर घुमते रहते हैं और पृथ्वी की हिंसा से भवभ्रमण की बातें भी साथ ही साथ किया करते हैं। कैसे बेमेल–असंबद्ध उनके विधान होते हैं!"

लेकिन दूसरे ही क्षण ऐसा सोचने के उपलक्ष में उसे भारी पश्चात्ताप हुआ। उस प्रत्येक बुद्ध महात्मा के पास जाकर प्रायश्चित्त करने का निर्णय किया।

ईश्वर उन महात्मा के पास गया। लेकिन वहाँ पर भी पृथ्वीकाय विषयक वही बात पुनः उसने सुनी। उसका सर चकराया। प्रायश्चित्त करने की बात तो एक ओर रही; लेकिन सारे जैन साधुओं के प्रति उसके दिल में भारी नफरत पैदा हुई।

उसी समय उसने सोचा कि–" जो बात आचरण में संभवित नहीं, ऐसी बातों को धर्म के नाम कैसे समझी–समझायी जायँ ? "

अब मैं लोकभोग्य धर्म की स्थापना करूँ कि जो सभी के लिये आचरण में लाया जा सके।

जिस समय ईश्वर के दिमाग में ऐसी विचारणा पैदा हुई, उसी क्षण आकाश से बीजली गिरी और वही उसकी मृत्यु हुई। ईश्वर सातवें नरक में गया।

www.yugpradhan.com

कई जन्मों का चक्कर काटते हुए उसकी आत्मा मंखलिपुत्र गोशालक के रूपमें अवतरित हुई। उस भव में उसने 'आजीवक धर्म' की स्थापना की। इस भव में भयंकर कोटि का गुरुद्रोह किया और गुरुहत्या करने का प्रयत्न किया।

गोशालक के विमलवाहन राजा के रूप में मानवभव में पुनः उसने गुरुहत्या करने का प्रयत्न किया था।

हाय रे ! एक कुसंस्कार कितने जन्म–जन्मान्तर तक आत्माओं के पीछे लगा रहता होगा ?

(त्रिषष्टि–शलाका पुरुषचरित्र के आधार पर)

(२०५) परमात्मा बने गोशालक की देशना

(त्रिभुवनपति तीर्थंकर–परमात्मा महावीरदेव यानी वर्तमानकालीन जैनों के तारक–रक्षक चौबीसवें अन्तिम तीर्थंकर। उस महात्मा पर

गोशालक नामक एक आदमीने अत्याचार गुजारने में कोई कमीना उठा न रखी थी; लेकिन अन्तिम दिनों में उसकी आत्मा परिवर्तित हो चुकी। पश्चात्ताप के अनराधार आँसू बहाकर भावि में परमात्मपद की प्राप्ति निश्चित कर ली। भगवतीसूत्र का गोशालक का भावि प्रसंग यहाँ पढें और संकल्प करें कि धर्मगुरुओं की निन्दा का काजल से भी कनिष्ट पाप जीवन में हम कभी न करेंगे।)

महा विदेह क्षेत्र की धरती पर कैवल्य और वीतरागदशा अभी अभी प्राप्त एक भगवंत, सौम्यमुद्रा धारण किए स्थित है। उन भगवंत के सामने श्रोताजन धर्म–देशना सुनने तत्पर हुए बैठे हैं।

भगवंत ने देशना का प्रारंभ किया।

हे पुण्यजनो! आज मुझे वीतराग दशा एवं कैवल्य की प्राप्ति हुई है। आपको मैं मेरे ही पूर्वभवों का वृत्तान्त कह सुनाऊँगा।

www.yogpradhan.com

आजसे कई वर्ष पूर्व भरतक्षेत्र में महावीर नामके तीर्थंकर हो गये। उस समय मेरी आत्मा, उसी भरतभूमि पर गोशालक नाम विद्यमान थी। भारी गरीबी के कारण मै दर दर भटक रहा था। उस समय मुझे वे महावीर मीले। मैं उनका शिष्य बन पाया। उन्हीं के पाससे एक बार तेजोलेश्या का ज्ञान पा लिया। और दूसरे के पाससे अष्टांग निमित्त की जानकारी मैंने पा ली। इतने मात्र से मैं अपने आपको आपही तीर्थंकर समझ बैठा। यदि–कोई मेरे सामने जरा गरबड़ करे तो तेजो लेश्या से मेरी आँखों में आग जलाकर–मैं उसे वही भस्मीभूत कर देता। बाद में तो मैं परमात्मा महावीरदेव के सामने भी गया। वादविवाद इतनी हद उग्र हो चुका कि गालोगलौज कर बैठा और आगबबूला हो मैं ने तेजोलेश्या का उपयोग उनके पर ही कर बैठा। लेकिन वह आग उन महापुरुष कि प्रदक्षिणा कर, वापस मेरे ही शरीर में अंतर्धान हो गयी। जिस की भयंकर दाहपीडा हो उठी। मैं मरणासन्न हुआ।

लेकिन मेरे सौभाग्य से मेरे सारे अघोर पाप कर्मों का भारी पश्चात्ताप मैं महसूस करने लगा।

हे श्रोताजन ! इस पश्चात्ताप के क्षणों में ही मुझे सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ। मृत्यु के बाद मैं बारहवें देवलोक का देवात्मा बना।

लेकिन उसके बाद मेरे उस भव के पापों के परिणाम उदित हुए। देवात्मा का भव पूर्ण कर, मैं भरतक्षेत्र में विमलवाहन राजा हुआ। लेकिन आग से मेरी मृत्यु हुई।

वहाँ से सातवें नरक में गया। बस, फिर तो एक एक कर तमाम नरकों में और पशुओं की योनि में मेरे जन्म होते रहे। उपरान्त पुनः लाखों बार चतुष्पदादि–पशुओं के एकेन्द्रिय पर्यन्त पशुभेदों में मैं जन्म लेता रहा। सभी अवतारों में मेरी पीडाओं का कोई पारावार न था। अग्नि और शस्त्र, ये ही मुख्यतया मेरी मृत्यु के निमित्त बनते रहे।

उसके बाद देवलोकादि में उत्तरोत्तर ऊँचे स्थान और मानवभव प्राप्त करते करते आखिर इस भव में महाविदेह क्षेत्र में मैं आया। मैंने चारित्र्य (दीक्षा) लिया और साधना द्वारा घातक कर्मों के विनाश द्वारा वीतराग दशा और कैवल्यज्ञान पाया।

हे भाग्यशाली जीव। तीर्थंकर परमात्मा महावीरदेव की जो घोर निंदा, अवहेलना और आशातना की, उसके कारण अनन्त काल तक मेरी आत्मा को अतिभयानक संसारभ्रमण करना पड़ा।

अतः मुझे आप से यह बताना है कि भूलकर भी कदापि धर्मगुरु की निन्दा, आशातना न करें। उनके लिये कभी अपलाप न करें।"

केवली भगवंत की देशनावाणी सुनकर सारे श्रोता स्तब्ध हो गये। एक भव में की गुरुनिंदा कितने भवों तक पीछे लगी रहती है और दुर्दशा के द्वार खटखटाया करती है ? कैसे कठोर दुःख दे

www.yogpradhan.com

पाती है। ये सारी बातें सभी ने सुनी। सभी ने निर्णय किया कि– "जीवन में अन्य कोई धर्मकार्य कम होगा तो कोई नुकसान नहीं, लेकिन स्वप्न में भी धर्मगुरुओं की निंदा हम कभी नहीं करेंगे। उनके बारे में कोई अपशब्द कहे तो हम सुनेंगे नहीं, वहाँ एक पलभर के लिये भी खड़े रहेंगे नहीं।

अपने संकल्प–चर्चा करते हुए सभी बिखर गये।

(२०६) जीवनसमृद्ध चंदनबालाजी

(त्यागियों के प्रत्येक आचरण में एकसाथ शत शत व्याख्यान प्रादुर्भूत होते रहते हों, मौन उनकी भाषा हो और एक छोटे से मधुर स्मित में समुचे विश्व का वात्सल्य ऊभर आता हो।

www.yuvpradhan.com

त्रिलोकगुरु परमात्मा महावीरदेव के साध्वीसंघ के अग्रणीस्थान पर आरूढ साध्वी श्रीचंदनबालाजी का स्पर्श कर प्रादुर्भूत शेडूवक नामक कुलपुत्र की एक कथा उपदेशमाला–दो घट्टी टीका में से लेकर यहाँ दी गयी है। "साधूनां दर्शनं पुण्यं" वाक्य को सार्थक करती इस जीवनपरिवर्तन की कथा पढ़ते पढ़ते आपका अन्तःकरण मुखरित हो उठेगा कि–"क्या पता, कई अगणित बूझे दीपकों को, ऐसे मूक पावनस्पर्श के द्वारा, संतों के झगमगाते पवित्र जीवनरूप दीपक, प्रज्वलित कर देते होंगे।)

कौशाम्बी नामक नगरी थी। किसी पवित्र दिन पर त्रिलोकगुरु परमात्मा महावीरदेव के साध्वीसंघ की अग्रणी महासती चन्दन-बालाजी का विहारप्रयाण उस नगरी से संपन्न हो रहा था। उन्हें विदा देने भारी संख्या में नारीसमुदाय तो उपस्थिति था ही, साथ ही बड़े बड़े धनाढ्य श्रमणो पासक भक्त भी, विपुल संख्या में हाजिर थे।

आर्याजी ने शुभमुहूर्त में विहार शुरू किया। उनके पीछे विराट मानवसमुदाय भी शामिल हुआ। वीर प्रभु के नाम की जय-घोषणा हुई।

उस समय शेडूवक नामक किसी मनमौजी कुलपुत्र ने इस मानव-समुदाय को देखा। सब से आगे चलती आर्या चंदनबालाजी को भी देखी।

और....आर्याजी के मुँह को देखकर तो वह चकित ही रह गया। वह मन ही मन पुकार उठा—" अरे, कैसी अनोखी देवीजी हैं ? उनके मुँह कैसी ओजस्वी तेजस्विता निखर उठी हैं ? उनकी चाल में कैसी गंभीरता है ? उनकी आँखें कैसी निर्विकार हैं ? कैसी नतदृष्टि ! कैसा प्रसन्न सौम्य वदन ! कैसा ब्रह्मतेज से उद्दीप्त ललाट है ! वंदन, शतशः वंदन....आर्याजी को कोटि कोटि वंदन...! "

www.yugpradhan.com

ऐसा सोचते शेडूवक की नजर मानवसमुदाय में उपस्थित रहे अति धनाढ्य श्रीमंत लोगों पर ठहरी। एक विरक्त आत्मा का संमान भोगी जीव करें, उसका भारी अचरज उसे हुआ।

इतने समय में शेडूवक के अन्तःकरण में किसी सुखद—परिवर्तन का प्रारंभ हुआ।

उसने विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिये किसी भाई से पूछा। जब आर्या चन्दनबालाजी का जीवनवृत्तान्त सुना तो वह दंग रह गया।

आर्याजी के मुखमंडल पर से चतुर्दिक् फैली संयम की सुवास से उसका चित्त प्रफुल्ल हो उठा। उसे संसार से नफरत हुई और उसी नगरी में स्थित आचार्य भगवंत के पास जाकर उनसे दीक्षा ग्रहण कर आत्मकल्याण का मार्ग निश्चित किया।

इस दीक्षा में आर्या चंदनबालाजी का उपकार भारी था यह

समझ, आचार्य भगवंत ने अपने दो शिष्यों के साथ नये मुनि शेडूवक को, पासवाले गाँव में बिराजी चंदनबालाजी के पास भेजे।

मुनि शेडूवक उन महोपकारी आर्या को देख गद्‌गद् हो गये और दोनों हाथ जोड प्रणाम किये तो तुरंत आर्याजी ने कहा–" मुनिवर, आप मुझे वंदन करें, यह सर्वथा अनुचित हैं। मुझे आप को वंदन करने हैं; क्योंकि प्रभु वीर का धर्म पुरुषप्रधान है।

वंदना के बाद, चंदनबालाजी ने नूतन मुनिजी को संयम धर्म में अत्यंत रत रहने की और गुरुसेवा में तत्पर होने की दो देशनाएँ दी।

अपने उपकारी की अमृतवाणी का मुनिजीने नतमस्तक स्वीकार किया और मानों उन दोनों बातों का स्वयं शुद्ध भावसे आचरण करेंगे, ऐसा विश्वास दिलाते भाव मुख पर प्रगट कर मुनिवरने, साथ आये दोनों मुनियों के साथ वापस लौटने के लिये बिदा ली।

www.ybqpradhan.com

धन्यवाद है, उन सर्वसंगके त्यागी श्रमण–मुनियों को और श्रमण–आर्याओं को ! जो अपने जीवन की उच्चतम आराधनाओं द्वारा ही अनेक आत्माओं के विषय–कषायों की तीव्र वृत्तियों को शीतल बना देते हैं।

सर्वथा निष्क्रिय; फिर भी अत्यंत सक्रिय ऐसे सूक्ष्म बल के स्वामीओं को शतशः वंदन !

(२०७) मैं का निरंतर स्मरण, यही उपाय एक मात्र

सौ मजलेवाली इमारत की लिफ्ट में चार मित्र उपर जा रहे थे। अन्तिम सौवें मजले पर उन्हें जाना था।

लिफ्ट धीरे धीरे ऊपर जाने लगी। अधीरता की ये क्षण कैसे

गुजारे जायँ ? यह समस्या थी। एक मित्रने हल निकाला कि बारी बारी से हरएक एक एक कथा कहता चले।

और कथा शुरू हुई। पहले मित्रने चालीस मजलों तक कथा जारी रखी।

बादमें दूसरे मित्रने कथाका प्रारंभ किया। लिफ्ट सत्तरवें मजले पर आयी वहाँ उसकी कथा का अन्त हुआ।

अब तीसरे मित्रने कथाप्रारंभ किया। पंचानव्वे मजले तक लिफ्ट आयी, तब तक उसकी कथा भी जारी रही।

अब आखिरी मित्रकी बारी आयी। लेकिन उसने कथा कहने में हिचकिचाहट जताई। इतने में निन्यानवाँ मजला आ पहुँचा। अब तो एक ही मजला बाकी बचा हुआ था।

तीन मित्रोंने भारी आग्रह किया। अतः नये कथाकारने शर्त की— "अत्यंत संक्षिप्त कथा कहने पर आप लोग मुझे पीटेंगे तो नहीं ?" सभीने हँसकर कहा—"मंजूर है, नहीं पीटेंगे।"

और....चौथे मित्रने कहा—"मेरी वार्ता केवल एक पंक्ति की हैं कि— "अपने रूम की चाभी मैं नीचे पार्क की मोटर में ही भूल आया हूँ।"

और....सभी के मुँह से चीखें निकल पडी। सारी धर्मक्रियाएँ भी 'मैं' के स्मरण की बिनाचाभी की हो तो 'पुनश्च हरि ओम्' ही करना पडे।

(२०८) बड़ों की अवहेलना कदापि न करें

(अजैन प्रसंग)

उनका नाम था अष्टावक्र।

कहा जाता है कि गर्भ में ही उनके आठों अंग टेढे हो गये थे। ऐसा होने का भी इतिहास है।

बात ऐसी थी कि पूर्वभव का साधक यह आत्मा था। वह जीवन पूरा कर एक स्त्री के गर्भ में स्थिर हुआ।

इस परिवार में वेदादि का चिंतन, मनन, पारायण निरंतर चालू था। बच्चे के पिताजी वेदों के अच्छे ज्ञाता थे। वे घंटों तक अनवरत वेदपाठ किया करते थे।

गर्भस्थ बालक भी अपनी तीव्र मेधाशक्ति के कारण वेदों का पाठ सुनते ही उसकी धारणा कर लेता और बाद में कंठस्थ करता।

एक दिनका प्रसंग है। वेदपाठ करते हुए पिता से कहीं उच्चार-क्षति हो गयी। गर्भस्थ बच्चेने जोर से उस क्षति का निर्देश किया और सही पाठ बताया।

www.yugpradhan.com

यह सुनकर पिता ने महसूस किया कि–" अभी तो बच्चा गर्भस्थ है; फिर भी उसे ज्ञान का इतना भारी गर्व है जिससे वह बडों की भी क्षति का ध्यान रखता हैं।"

उसी समय अविवेकी पुत्र को पिता ने शाप दिया–" अरे निर्लज्ज लडके! तुम्हारे आठों अंग वक्र हो जायँ। ऐसी गुस्ताखी निभ नहीं सकती।"

और उसी समय बच्चे के आठों अंग टेढे हो गये।

बच्चे के जन्म के बाद उसकी ऐसी वक्र शारीरिक स्थिति के कारण सभी उसे 'अष्टावक्र' कहने लगे।

(२०९) नजरकैद में सुख कैसा ?

चीन के दार्शनिक विद्वान चुआंग जू, एक रोज नदी के किनारे बैठे थे। किसी अजीब मस्ती और अनोखे एकान्त की मौज उठा रहे थे।

वहाँ चीन के राजा का दूत आया। उसने उसने उन से संदेश दिया कि–" आप को इसी समय राजाजी बुला रहे हैं।"

राजा के हुक्म की अवगणना कैसे हो ? वे राजा के पास पहुँचे। महल के एक वैभवी खंड में राजा बैठे हुए थे। उन्होंने चुआंग जू से कहा " मेरे प्रधानमंत्री का स्थान खाली पड़ा हुआ है। आप उस पद पर आरूढ हो, ऐसी मेरी हार्दिक कामना है।"

उसी समय चुआंग जू ने, पासवाले शो–केस में शोभा के निमित्त रखा कछुए का विराट कलेवर देखा।

www.yogpradhan.com

उसने राजा से कहा–" हे राजा, आप के प्रस्ताव का जिक्र मैं बाद में करूँगा। पहले मेरा एक प्रश्न है कि–" इस शो–केस में मरा हुआ जो कछुवा है, वह यदि जिंदा हो जाय तो, इस मूल्यवान केस में एक मिनट के लिये भी रहना पसंद करेगा क्या ?"

राजा ने कहा–" जरा भी नहीं !" तुरंत चुआंग जू बोले–" तो क्या मैं इस कछुए से भी गयाबीता मूर्ख हूँ कि आपके प्रधानमंत्रीपद का स्वीकार करूँ ? मुझे वह नहीं चाहिए।"

(२१०) तपस्वी; फिर भी कैसा मोक्षार्थी !

उस तापस का नाम था तामली।

भारी तप करता था। हमेशा दो उपवास के अन्त में तालाब की सुखी लील खाकर; फिर दो उपवासों का तप करता था।

उसकी घोर तपस्या से आकृष्ट हो, भवनपति नामक देवलोक की देवियाँ उससे कहने आयीं कि–" तुम्हारे जैसे पुण्यशाली आत्मा देव लोक में जन्म धारण करें और हमारे स्वामी बने तो हमें आप से भोगसुख प्राप्त हो। उसके लिये आप इस तपोसाधना के पीछे ऐसा संकल्प करें कि जिससे हमारी इच्छा पूरी हो पाये।" हँसकर तापस ने कहा–" अरे मूर्ख स्त्रियाँ! क्या स्वर्ग में भोगसुख के जलसे मनाने के लिये मैंने यह साधना की है? जाओ, भाग जाओ! फिर ऐसी निकम्मी बातें करने यहाँ न आएँ। मुझे तो मोक्षप्राप्ति के सिवा और किसी चीज की अभिलाषा नहीं।" देवियाँ, उदास हो चली गयीं। आयुष्य पूरा होने पर, तपस्वी इशान नामक विशिष्ट कोटि के देवलोक के देवों के राजा इन्द्र बना। इस बात का उन देवियों को पता चला तो; पृथ्वी पर पडे उस तापस के शव का तिरस्कार करने का निर्णय किया। जब देवेन्द्र को इस बात का पता चला, तब उसने उन देवियों की सारी योजना को अपने सेवकों द्वारा रफादफा करवा दी।

www.yugpradhan.com

(२११) कैसी अनोखी विरक्ति?

(प्राथमिक कक्षा में भी यदि ऐसी विरक्ति शक्य हो तो, उच्च कक्षा में स्थित मनुष्यों में कैसी विरक्ति होनी चाहिए, यह जानने के लिये इस कथा का मनन करें।)

नाम था उनका शुकदेव। युवा हुए। संपूर्ण ब्रह्मचर्य के ओजस्वी तेज से उनका ललाट चमक उठा था। यौवन की उस बहार को देख स्वर्ग की रंभा भी पृथ्वी पर दौड आयी। शुकदेवजी से देहसुख प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा उसे थी। शुकदेवजी को विषय–सुख के लिए ललचाने के भरचक प्रयत्न उसने किये, लेकिन तमाम कोशिशें व्यर्थ बनी रहीं।

अन्त में उसने स्पाष्ट रूप से अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए शुकदेवजी से कहा—" शायद मृत्युलोक की स्त्री की ओर आपका दिल आकृष्ट नहीं होगा, क्योंकि उसकी काया में सर्वत्र अपवित्रता भरी पड़ी है। बेचारी, अशुचि का ही घड़ा है। "

" लेकिन मै तो स्वर्गलोक की अप्सरा हूँ। मेरे शरीर में कहीं भी अपवित्रता दीख न पडेगी। मेरे उदर में जरा भी विष्टा हाथ न लगेगी। तो आप मेरी ओर से विरक्त क्यों है ? मुझे अपनाते क्यों नहीं ? "

युवान शुकदेव ने कहा—" क्या ऐसा है ? क्या तुम्हारे उदर में विष्टा नहीं ? तो जाओ, आगामी जन्म तुम्हारे उदर से लूँगा, बस ! " बेचारी अप्सरा ! उसका सारा काम—राग एक ही झटके में आमूल नष्ट हो चुका।

www.yugpradhan.com

(२१२) मैं सही मानव बनूँ !

' ध प्लेग ' नामक आल्बेर कामू की प्रख्यात कथा है। उसमें चार युवकों का संवाद हैं। उन्होंने अपने सामने एक समस्या रखा छोडी है कि—" हम भविष्य में क्या बनें ? "

एक युवक ने कहा—" मुझे तो श्रेष्ठ वैज्ञानिक बनकर नाम कमाना है। "

दूसरा युवान कहता है कि—" मुझे तो उत्तम लेखक बनना है। "

तीसरा युवक बोला—" मेरी अभिलाषा महान तत्त्ववेत्ता होने की है। सिवा इससे और कोई चाह नहीं। "

इन तीनों के उत्तर चौथा आराम से सुन रहा था। वह किसी

गंभीर सोच–विचार में डूबा हुआ था। वह अपना जवाब तैयार कर रहा था।

उपरांत चारों मित्रों के सामने सुकरात बैठा था। चर्चा में वह शामिल था। लेकिन चार मित्रों की इस चर्चा में उसे अनहद दिलचस्पी लगी थी। बाकी चौथा मित्र क्या जवाब देता है, उसकी सुकरात को भारी जिज्ञासा थी।

वहीं चौथे ने कहा–" मित्रों ! मुझे तो और कुछ नहीं होना है। मैं तो केवल ' सही मानव ' बनना चाहता हूँ।"

यह सुनते ही सुकरात आसन पर उठ खडा हो गया। जोर-शोर से तालियाँ बजाते हुए कहने लगा कि–" अरे, यह तो सब से बड़ी कठिन बात !"

www.yugpradhan.com

(२१३) आदर्श मैत्री ! अनोखा बलिदान !

बंगला के नदिया गाँव में एक विद्यालय था। रघुनाथ और निमाई दो विद्यार्थी वहाँ पढ़ते थे। दोनों जिगरी दोस्त थे।

एक रोज उनके गुरु ने " न्याय दर्शन " पर महानिबंध लिखने की प्रेरणा दी। दोनों गुरुभक्तों ने थोडे ही वर्षों में यह ग्रन्थ तैयार किया।

एक दिन एक–दूसरे के ग्रन्थ को देखने–पढ़ने की लालसा हुई। और तुरंत ही अन्योन्य महानिबंध मिल गये। थोडे दिनों में दोनों ने उन निबंधों को पढ़े–जाँचे। रघुनाथ को विश्वास हो गया कि निमाई का निबंध, उसके निबंध से बढ़ा–चढ़ा है। अपनी अभिव्यक्ति कुछ क्षतिपूर्ण होने से रघुनाथ खिन्न हुआ। उसी दिन से रघुनाथ उदास रहने लगा। ग्रन्थ–परीक्षा का निश्चित दिन निकट आ पहुँचा।

चालाक निमाई को अपने मित्र की उदासी का पता चला। मित्र के प्रति स्नेहवश होने के कारण, वह रघुनाथ की बेचैनी लंबे समय तक देख न पाया। उसने मन ही मन एक संकल्प कर लिया।

विद्वत्सभा की ग्रन्थपरीक्षा के अगले दिन, निमाई ने रघुनाथ को नदीविहार करने निमित्त, नाव में साथ लिया। मझधार में नाव आते ही, निमाई ने रघुनाथ के सामने ही, अपने महानिबंध को उठाकर, नदी के गहरे पानी में फैंक दिया। उसे देखते ही, रघुनाथ चीख उठा—"अरे निमाई, यह तुमने क्या किया?" निमाई ने कहा—'तुम्हारी मैत्री से बढ़कर मेरे लिये और कोई चीज मूल्यवान नहीं है।"

(२१४) जिसकी, राम रखवाली करे....!

www.yugpradhan.com

बादशाह हुमायूँ तेज रफ्तार से घोडा दौडाये भागा जा रहा था। अपना ही सरदार धोखेबाजी से अपनी ही जान लेने पर उतारू हुआ था। हुमायूँ के घोडे के पीछे सरदार भी घोडा दौडाये धँसा आ रहा था। अपने किले में घुस न पाये तब तक हुमायूँ के जान के लाले थे।

हुमायूँ के साथ उसका प्यारा लाडला बच्चा अकबर था। उसे झोले में डालकर अपनी पीठ पर उसे कस लिया था।

भयंकर वेग से धँसता हुआ सरदार, किसी भी हद तक, हुमायूँ को अपने किले में घूसने से रोकना चाहता था।

दूर से ही बाणों की बौछारें लगाता वह फासला कम करता आ रहा था। बाढ़ के मौजों की तरह दोनों के घोडे दौडे जा रहे थे।

कौन जाने, सरदार के कई बाणों से हुमायूँ का शरीर घायल हो

चुका था। फिर भी घायल हुमायूँ भागा जा रहा था। अपने बजाय, वह अपने बेटे को बचा लेने की कोशिश में था।

और.....एक मौके पर हुमायूँ अपने किले में घुस पाया। मजा यह रहा कि हुमायूँ कई बाणों से घायल बना रहा, लेकिन अकबर को एक बाण तक छू न पाया था।

जिस की राम रखवाली करे.....!

(२१५) दुश्मन के दिल में भी कैसी जिंदादिली !

वे थे भावनगर के बापू बजेसिंग !

बालकुमार दादुभा का अकाल अवसान हो गया। चारों ओर शोक का सन्नाटा फैल गया।

www.yugpradhan.com

भावनगर रियासत के विरुद्ध विद्रोह करनेवाले डाकू जोगीदास खुमान के पास ये समाचार पहुँचे। तुरंत अपने साथियों के साथ जोगीदास शोक-संवेदन व्यक्त करने के लिए राजमहल के आँगन में जा पहुँचा।

सभी मुँह ढंक कर रो रहे थे। सभी को आश्वासन देते हुए बापू बजेसिंग आगे बढ़ते जा रहे थे।

उतने में वे खुमान के पास आ पहुँचे। मुँह ढाँक फूट-फूट कर रोते जोगीदास की आवाज से उन्हें पहचान कर बापू बजेसिंग बोले- "शान्त हो, खुमान ! ज्यादा रो-धूप करने से क्या होगा ?"

खुमान का नाम सुनते ही उपस्थित सभी भय के मारे काँप उठे। किसीने तो खड्ग पर हाथ भी लगाया।

जोगीदास ने सिर के बंधन को हटा दिया। खुला हो सामने खड़ा हो गया। बापू से पूछा-" बापू, भला आपने पहचान लिया !"

चारों ओर से–'जोगीदास! डाकू! पकडो! मारो!' का शोरगूल उठ पड़ा।

बापू ने कहा–"डरना नहीं, जोगीदास!"

जोगीदास ने कहा–"बापू, डरता तो यहाँ आता ही किस लिये?"

इतना कह, स्वस्थ गति से खुमान अपने साथियों को ले वहाँ से चल पड़ा।

(२१६) क्षमा और सहिष्णुता की मूर्ति

वह एक साधु था। युवान फिर भी अखंड ब्रह्मचारी।

लेकिन उसके आकर्षक यौवन ने उसे परेशान किया। किसी रूपयौवना ने उसके समक्ष कामवासना–पूर्ति का प्रस्ताव रखा।

सात दिनों की मरी पागल कुतिया के दुर्गंधपूर्ण शव के प्रति घृणा कर बैठे, उस प्रकार उस ब्रह्मचारी साधु ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

रूपयौवना तड़प उठी। अब वह घायल शेरनी बनी। कहीं शादी-शुदा होने के कारण वह माँ बनी। अपने बच्चे के पिता के रूप में उस साधु को घोषित किया। दुनिया पगली है। बिना जाँच–पडताल किये साधु को कोस ने लगी। जब कई लोग साधु से पूछते तो साधु ने उन लोगों से बारबार एक ही बात बताते–"हाँ, क्या ऐसी बात है?"

आखिर उस यौवना ने उस बच्चे को साधु के पास छोड दिया। साधु ने उसका अच्छी तरह लालन–पालन किया! आखिर उस युवती को भारी पश्चात्ताप हुआ। वह साधु के पास पहुँची और माथा टेक

फूट फूट रोने लगी। उसने कहा–"महाराज, मुझे क्षमा करें। मैं अपराधी हूँ। मैंने आप को कलंकित करने में कोई कमीना उठा नहीं रखा।"

उस समय भी उस साधु ने उससे यही बताया कि–"हाँ, क्या ऐसी बात है?"

कैसी अजीब क्षमा! कैसी अमर्याद सहनशीलता!

(२१७) जीव में शिव के दर्शन

वे थे (मार्गानुसारिता की प्राथमिक कक्षा के) एक सन्त। उनका एक ही व्रत था दीन:दुखियों को, अभ्यागतों को और याचकों को भोजन कराने का।

www.yogpradhan.com

"भोजनदान जैसा पुण्य नहीं" ऐसा वे मानते थे।

एक दिन की बात है। खुद वे रोटियाँ बुन रहे थे। उनकी थप्पियाँ तैयार हो रही थीं। वहाँ यकायक एक कुत्ता कहीं से आकर झपटा। बारह-पंद्रह रोटियों की थप्पी मुँह में पकड कर वह कुत्ता भागने लगा।

संत ने उस कुत्ते को देखा। दूसरे ही क्षण घी से भरी पूरी बाढ़ी हाथ में उठा ली और कुत्ते के पीछे वे दौडने लगे।

जोर जोर से पुकारते हुए वे कुत्ते से कहने लगे–"ओ भगवन्, थोडी देर ठहर जाओ। रोटियों सूखी है। अभी घी लगाया नहीं है। ओ भगवन्, आप सूखी रोटियाँ खायें तो इस सेवक की बदनामी होगी। रूक जाइए। मैं सारी रोटियाँ पर घी लगा दूँ।"

करुणासभर वाणी सुन कुत्ता रूक गया। सचमुच, उस संत ने

सारी रोटियों पर घी लगा कर उसे खिलायी। बाद में बडे प्यार से पुचका कर उससे कहा–" भगवन्, अब आप खुशी से पधारें।"

(२१८) परकल्याण कितना कठिन होगा !

कैन्सर के व्याधि से पीडित रामकृष्ण के अंतिम दर्शन के लिये, हजारों लोग दूर दूर से आ रहे हैं। मंदिर में दर्शनार्थियों का घसान दिनों-दिन बढ़ता जा रहा था। दर्शनार्थियों को दर्शन देने के लिये, रामकृष्ण को मंदिर के बड़े खंड में लंबे अरसे तक बैठ रहने के लिये मजबूर होना पड़ता था।

एक रोज वे इस मजबूरी से ऊब गये। सैंकडों भक्तों के पास से उठकर वे माँ–काली के पास पहुँचे।

www.yugpradhan.com

वहाँ पहुँचते ही उनकी आँखों में से अश्रुधारा बह निकली। रोते हुए वे बोले–" ओ माँ ! तुम्हारा नाम ही तो जगदंबा है। दुनिया के तुम्हारे बच्चों का काम करना, यह मेरा कर्तव्य नहीं है। लेकिन माँ, वह काम तुम्हारा है, तुम्हारा ही आखिर है।"

" उपरान्त, मैं कैसे इन लोगों का कल्याण कर पाऊँगा ? ओ माँ, तुम्हीं क्या नहीं जानती यह सब कुछ ?"

" तुम यह अच्छी तरह जानती हो, कि संसारी आदमी यानी एक लीटर दूध में पाँच लीटर पानी का मिश्रण। पाँच लीटर पानी जल जायें तब एक सेर दूध शुद्ध रूप में अलग मिल पाये।"

ओ मेरी माँ, संसारीजन को मोह माया के पाँच लीटर पानी जला देने की क्षमता ही कहाँ ? जिससे उन्हें मेरे पास भेजा करती है ?"

(२१९) टिटेनीक कभी डूब ही नहीं सकती

पुराने समय की बात है। अंग्रेजों के पास बड़ी सख्त और मजबूत 'टिटेनीक' नामक स्टीमर थी।

उसके पर कई युद्धकालीन जोरदार हमले दुश्मनों की ओर से किये गये, लेकिन उसका बाल भी बाँका हो न पाया। अतः एक कहावत जारी हुई—"टिटेनीक कभी टूट नहीं सकती।"

एक दिन की बात है। स्टीमर में कई अंग्रेज युगल थे। वे बोल-डान्स कर रहे थे। सभी आनंदविभोर हो गये थे।

उस समय समुद्र में सामने से बड़ा हिमखंड तैरता आ रहा था। कैप्टन की लापरवाही के कारण वह खंड स्टीमर से टकरा गया। और टिटेनीक की मशीन को भारी धक्का पहुँचा। मशीन टूटते ही, कैप्टन ने जोरशोर से पुकारें शुरू की कि—"टिटेनीक टूट गयी है, और तेजी के साथ डूबी जा रही है। सभी सावधान हो जायँ और अपनी अपनी रक्षा की व्यवस्था करते रहें।"

लेकिन यह बात मानने के लिये कोई तैयार ही न था। बोल-डान्स करते करते, जोरजोर से हँसते हँसते वे अंग्रेज गाने लगे—"टिटेनीक कभी डूब नहीं सकती, टिटेनीक कभी टूट नहीं सकती!"

और अफसोस! कैप्टन का सारा किया कराया हल्ला—गुल्ला निकम्मा रहा। तमाम बोलडान्स करनेवाले स्त्री—पुरुषों को साथ लेकर टिटेनीक ने जलसमाधि ले ली।

अमर्यादित आत्मविश्वास कभी कभी जीवन को बरबाद कर देता है।

www.yugpradhan.com

(२२०) वे मेरे पिताजी है !

व्यापारी की एक दूकान थी। एक भिक्षुक वहाँ आया। धर्मात्मा व्यापारी ने तुरंत वहीं दस पैसे का सिक्का उठाकर दे दिया। याचक थोडी दूर जाकर खड़ा रहा। उतने में उस व्यापारी के पिताजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने कहा—" बेटे ! एक सौ रूपये जरा दे दे तो। मुझे बाहर गाँव जाना है।" तुरंत ही बेटे ने सौ का नोट निकाल कर दे दिया। पिताजी चले गये।

यह दृश्य उस याचक ने देखा। आगबबूला होता वह व्यापारी के पास पहुँचा।

" सेठजी, समानता के इस युग में ऐसी विषमता क्यों ? मुझे केवल दस पैसे और उसे पूरे सौ रूपये !" याचक ने पूछ मारा।

www.yugpradhan.com

व्यापारी ने कहा—" भला, अकुलाता क्यों है ? अगर मेरे इन पिताजी ने दयावृत्ति का पाठ पढ़ाया न होता तो ये दस पैसे भी तुझे न दे पाता। दया की अपेक्षा कृतज्ञता श्रेष्ठ है।"

(ईश्वर हमारे बाप का भी बाप हैं। प्रभुसेवा की अवगणना करनेवाले जन—सेवावादी पथभ्रष्ट नहीं हुए हैं क्या ?)

(२२१) खुशामत कभी न करें !

मंडनमिश्र नामक वे महापंडित थे।

योगानुयोग एक रोज घर में खाने के लिये अन्न न था। माता ने कहा—" बेटे ! राजा के पास जाओ और उनका थोडा गुणगान कर आओ। इस से थोडा जीवन—गुजारा हो जाएगा।

व्यथित होकर पंडितजी राजा के पास जाने रवाना हुए। रास्ते में नदी आयी। नाव में बैठे। नाविक ने पैसे माँगे। मंडनमिश्र ने

कहा—" मेरे पास तो फूटी कौडी भी नहीं "। नाविक ने पूछा—" भाई तुम्हारा नाम क्या है ? तुम कहाँ जा रहे हो ? "

पंडित ने कहा—" मेरा नाम पंडित मंडनमिश्र है। मैं सामनेवाले नगर में राजा के पास जा रहा हूँ। उसकी खुशामत कर मुझे थोडे रूपये—पैसे प्राप्त करने हैं। "

यह सुनते ही नाविक ने कहा—" अरे भाई ! तुम्हें जो कहना हो सो कहें, जो करना हो सो करें, लेकिन महापंडित मंडनमिश्र के सुविख्यात नाम का दुरुपयोग न करें। संभव तो यह है कि हमारे पंडितजी के घर फाकाकशी न होगी; फिर भी संयोगवश जीवन में ऐसा दुर्भाग्य आ पड़ा हो तो भी पंडितजी जहर खाना पसंद कर ले; लेकिन खुशामत करना तो कभी पसंद न करें। अतः उनके नाम पर कोई चर्चा न करें। "

www.yugpradhan.com

यह सुनते ही पंडितजी शरमिंदा हो गये। नाव में से उतर कर घर पहुँच गये। सारी बातें सुनकर उनकी माताजी चकित रह गयी।

(२२२) सही आत्मश्लाघा भी अनुचित होगी।

पिताजी की आज्ञा लेकर धर्मदत्त कुमार ने दीक्षाग्रहण किया। दीक्षित उस जीवन में घोर तपस्वी सिद्ध हुए। उन्होंने हट्टेकट्टे शरीर को भी सुखा दिया। तप के साथ ही चित्त की शान्ति इतनी साध ली कि एक ऐसा प्रभाव जमा दिया कि उनके पास शेर बकरी आये तो भी हिंसा को भूलकर, शेर—बकरी को साथी समझने लगे।

अगणित भील लोगों का, आदिवासियों का, डकैतों, लुटेरों का उन्होंने अपने संपर्कमात्र से जीवन—परिवर्तन कर दिया था।

पुत्र–मुनि की यह ख्याति सुनकर, उनके संसारी पिता फूले नहीं समाते थे !

एक बार पिताजी पुत्र–मुनि के वंदनहेतु गये । उनके पास जाकर बैठे ।

मुनिवर के पास पिताजी ने प्रशंसा की । तब मुनिवर ने कहा– "अपने मुँह मियाँ मिट्ठु बनने में मुझे संकोच हो रहा है । फिर भी मैंने कैसी सिद्धि पा ली है, उसका परिचय तो मेरा वह शिष्य आप को करायेगा ।" पिताजीने शिष्य के पास जाकर, उन से सारी बातें अवगत कर लीं ।

बेचारे मुनिवर ! ऐसी माया और प्रशंसामोह के कारण, दूसरे जन्म में नारी के रूप में अवतरित हुए ।

www.yogpradhan.com

कैसा है मोह का खतरनाक पाश ! ऐसे दिग्गज मुनिवर के उज्ज्वल जीवन में भी आत्मप्रशंसा के खतरनाक पाप–कलंक का प्रवेश करवा देता है ।

(२२३) कैसी गौरवशील माता !

लडके के पिताजी गुजर गये थे । माता ने ही पुत्र को पालपोस कर बड़ा किया था । कालिजजीवन के दो साल पूरे करने के बाद, बेटे ने माँ से कहा–" अब मेरी इच्छा डोक्टर बनने की है ।"

माँने तुरंत ही अपने बेटे से कहा–" नहीं बेटे, यह कभी नहीं होगा । तू उस लाईन में जा कर, मेढ़क, बन्दे, जीवजन्तुओं की चीरफाड किया करे–हिंसा करे, यह मेरे लिये असह्य है । साथ ही, वह व्यवसाय, कब तुम्हारे जीवन को कलंकित करे, उसका भरोसा नहीं । उपरान्त, आज तक मैंने लोगों के घरेलू छोटे–बडे काम कर

तुम्हें बड़ा किया है, तो अभी भी मेरे हाथों में ताकात भरी पड़ी है। मैं जिन्दा रहूंगी तब तक तुझे खिलाऊँगी।"

माता का जीवदया के प्रति उत्कट प्रेम, सूझबूझ और भारी आत्मश्रद्धा आदि देखकर, पुत्र माँके सामने झुक गया। उसने डोक्टर की लाईन में पढ़ाई करना छोड दिया।

कालिज का अन्तिम वर्ष था। एक घटना घटी। किसी प्राध्यापक ने वर्ग में ऐसी घोषणा की कि—"जैनधर्म ने ही अहिंसा की वृत्ति को अमर्यादित रूप में उभार उभार कर मांसादि का त्याग करवा कर, इस देश की प्रजा को अत्यधिक निर्माल्य बना दी है।"

इस प्रकार के विचित्र आधारहीन विधान के विरुद्ध, उस पुण्यशाली माता के पुत्र ने, उपरोक्त विधान को प्रमाणों द्वारा सिद्ध करने के लिये आह्वान दिया। उसने कहा—"साहब, आप ही मेरे साथ दंगल में शामिल हो। आप मांसाहारी हैं, मैं चुस्त शाकाहारी हूँ। हम यहीं पर मैदान में निर्णय कर ले कि सत्य और सत्व किस पक्ष में स्थित है।"

बेचारे प्राध्यापक देखते ही रह गये!

(२२४) युवा यानी काम—वासना का गुलाम!

फूरसत के क्षणों में वार्तालाप समय, राजा ने अपने प्रधानजी से पूछा—"हमारे नगर में ऐसे कितने पुरुष होंगे जो, अपनी पत्नी के अधीन बनकर जीवन गुजारते हों?" चालाक प्रधान ने उत्तर दिया—सभी पुरुष!"

राजा ने चकित होकर कहा—"तुम्हारी बात संपूर्णतया सही नहीं है।" सत्यासत्य की कसौटी करने के लिये एक उपाय आजमाया गया। दो बड़े मकान बनवाये गये। बाद में राजा ने नगर भर

में घोषणा करवायी कि–" जो अपनी पत्नी के अधीन हों वे काले बंगले में चले जायँ; बाकी बचे सभी सफेद बंगले में चले जायँ।" दूसरे दिन राजा ने देखा तो दो पुरुष ऐसे निकले जो सफेद बंगले में ठहरे हुए हैं। राजा ने प्रधानजी से पूछा कि–" आप का अंदाजा गलत साबित हुआ है। दो पुरुष केवल ऐसे रहे; जो अपनी पत्नी के वश में नहीं।

प्रधान ने राजा से पूछा कि मेरे विधान को असत्य घोषित करते उन दोनों आदमियों से आप इतना तो पूछे कि–" वे क्यों इस सफेद बंगले में आये हैं?" जब राजा ने इन दो बहादुरों से पूछा तो उन्होंने जवाब दिया कि–" हमारी पत्नियोंने हमें चेतावनी दे रखी थी कि–" सावधान, अगर काले बंगले में गये तो लोग तुम्हें कायर और पत्नी के गुलाम समझेंगे!"

www.yudpradhan.com

प्रधानजी ने मुस्कारते हुए राजा की ओर देखा राजा बेहद शरमिंदा हो गया।

(२२५) नयी परंपरा के अनिष्ट

एक गाँव था। कई धर्मिष्ठ लोग वहाँ बस रहे थे। कूडकपट या अनीतिमय आचरण वहाँ अशक्य था। सामाजिक प्रभाव जोरदार था।

लेकिन उस गाँव के कई युवक बम्बई में जाकर पढ़े–लिखे और डिग्रीधारी सुधारक (या बिगडैल?) बन पाये थे।

एक बार किसी प्रसंगवश गर्मी की छुट्टियाँ के दिनों में सभी अपने वतन में एकत्र हुए।

कई विषयों पर परामर्श करनेवाली सभाएँ आयोजित होती रहीं।

एक दिन चर्चा का विषय रहा—"विधवा होनेवाली स्त्री लाल साडी ही क्यों पहन रखे, सफेद क्यों नहीं ?"

बुजूर्गों ने उसका उत्तर देते हुए समझाया कि—"वैसी लाल साडी दूसरे के मन में विकारभाव पैदा नहीं करती।"

युवकोंने उस दलील को तथ्यहीन बताकर कहा कि—"अब विधवा स्त्री भले ही सफेद साडी पहने।" चंद मिनटों में तालियों की गड़गड़ाहट के साथ प्रस्ताव पार किया गया।

उस साल जो कुछ स्त्रियाँ विधवा हुई, उन्होंने पूर्व परंपरा छोड कर, सफेद साडी का परिधान किया।

समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों हुआ ? लेकिन यह निश्चित बना कि उसी साल श्वेत वस्त्र परिधान करनेवाली दो विधवाओंने पुनर्लग्न कर लिये। परंपरा की अनोखी ताकत का लोग स्वीकार करेंगे क्या ?

www.yogpradhan.com

(२२६) मृत्यु के अन्तिम क्षण (सत्य घटना)

हम उन्हें बाबुभाई के नाम से पहचानेंगे। साधु—भगवंतों के वे परमभक्त थे।

एक रोज उन्हें अपने पूर्वभव का यकायक स्मरण हो आया। वे बताने लगे कि—

"पूर्वभव में मुर्गा था था। खूब हट्टाकट्टा। दूसरे मुर्गों के साथ मैं भी जल्लाद के पींजरे में बंद था। मेरी अपेक्षा, दूसरे मुर्गे थोडे दुबले पतले थे।

एक रोज कोई मुसलमान खरीदी करने वहाँ आ पहुँचा। उसने आते ही मुझे पसंद कर किया। मुझे खरीदकर, बगल में दबाकर वह

तो चल पड़ा। मेरी आँखों के सामने मौत नाचने लगी। मैंने जोरजोर से चीखना–चिल्लाना शुरू किया।

बार बार के चीखने–चिल्लाने से मुसलमान अकुलाया। वह आगबबूला हो गया। एक बार तो उसने मेरी गरदन को भी मरोडा, लेकिन मैं अपनी बात पर अड़ा रहा। उसी समय सामने से एक जैन साधु आ रहे थे। उन्हें देखते ही मैं मन ही मन उनसे दयाप्रार्थना करने लगा। मैंने कहा–"आप मुझे बचायें! मुझे बचा ही लें, वर्ना मैं मारा–काटा जाऊँगा।"

इस प्रकार मेरा चित्त उस मुनि में ही एकाग्र था, ठीक उसी समय गुस्से में आकर उस मुसलमान ने मुझे हमेशा के लिये शान्त कर देने के लिये, जोर से मेरी गरदन मरोड दी। उसी समय मेरी जान निकल गयी। लेकिन....अन्तिम क्षण एक मुनि की शरण.... एकाग्रता। उसीने मुझे मनुष्य जीवन की भेंट कर दी। मैं पशु से मानव बन पाया। सच ही कहा गया है कि–"साधूनां दर्शनं पुण्यम्॥

www.yogpradhan.com

(२२७) ईर्ष्या का पातक

उस राजा की कई रानियाँ थीं। उन में पटरानी थी कुन्तला-देवी।

परमात्मा की पूजाविधि की अटंग जानकार! हमेशा वह प्रभु-पूजा किया करती।

उसने अपनी अनेक सौतों ने प्रभुभक्ति सिखायी। सौतोंने भी बड़े उल्लास के साथ प्रभुभक्ति शुरू कर दी।

बाद में तो परिस्थिति ऐसी निर्मित हुई कि कुन्तलादेवी की पूजा-विधि को भी टक्कर लगाये ऐसी भक्ति सौत रानियाँ करने लगीं।

कुन्तलादेवी के लिये यह असह्य बन पड़ा। अब वह भक्ति को छोड, अहमहमिका में फँस गयी। सौतें जिस प्रकार की पूजा करें उससे बढ़ी–चढ़ी पूजा, धनका खूब खूब व्यय कर, कुन्तलादेवी करने लगी।

अब प्रभुभक्ति का मूल ईर्ष्या बन पायी। ईर्ष्या से जलती कुन्तला एक दिन मर चुकी। मर कर कुतिया बनी। वही नगर, वही रानीवास। वही कुन्तला, वही कुतिया। रातदिन सौतों को देख वह भौंकती ही रहती।

एक दिन कोई ज्ञानी महापुरुष उस नगर में पधारें। उनसे सौतों ने कुतिया के ऋणानुबंध के बारे में पूछताछ की।

ज्ञानी ने बताया कि "ईर्ष्या के निमित्त पूजा–भक्ति करनेवाली वह कुन्तला, कुतिया बन पायी है। अतः आज भी वह तुम्हारे प्रति ईर्ष्याभाव से भौंकती फिरती रहती है।"

www.vuduraudhan.com

(२२८) गुरु का रक्षक शिष्य !

(अजैन प्रसंग)

मत्स्येन्द्रनाथ (मछंदर) थे महान् गुरु।

गोरखनाथ थे शिष्य।

मत्स्येन्द्रनाथ को योगविद्या का भारी शौक था। अनेक प्रकार के योगों की उन्होंने साधना की थी। लेकिन योगसिद्ध पुरुष वही माना जाता था कि जो त्रियाराज की पद्मिनी मायादेवी के अन्तःपुर में अनेक सुन्दरियों के बीच पूर्ण अनासक्ति भाव से रह पाये।

गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने अपने को 'योगसिद्ध' जाहिर करने के लिये साहसपूर्ण कदम उठाया। वे उस अन्तःपुर में गये।

लेकिन, अफसोस! गुरु मछंदर विलासपूर्ण विकार—भोगमंडल में फँस गये। देखते ही देखते उनका पतन हो चुका।

योगी केवल भोगी ही न रहा, भोगलंपट बन गया। इस बात का पता, उनके शिष्य गोरखनाथ को हुआ। उन्हें पारावार दुःख हुआ। अपने सर्वश्रेष्ठ गुरु का उद्धार कर, उनके उपकार—ऋण में से मुक्त होने का यही एक मात्र मौका था।

गोरखनाथ तुरंत निकल पड़े। कई मील गुजर जाने के बाद, उसी अन्तःपुर के पास आ पहुँचे! जहाँ गुरु मछंदर भोगसुख के गुलछर्रे उड़ा रहे थे। और योग के रसकूपों को सुखा दिये थे। अन्तःपुर के नीचे आकर, उन्होंने जोर से चिल्लाया—"चेत मछंदर, गोरख आया। गुरु मछंदरनाथ, सावधान हों। आप का शिष्य, गोरखनाथ, आपके समृद्ध जीवन को इस प्रकार बरबाद और बदनाम होने न देगा।" सचमुच, मछंदरनाथ को भारी पश्चात्ताप हुआ। उपरांत वहीं भोगी पुनः योगी बन, अधिक साधना के लिये वहाँ से भाग छूटा।

www.yugpradhan.com

(२२९) विचार भी विघातक

वे संन्यासी थे। नाम था त्रिलोकनाथ। सौ साल उपर का आयुष्य था उनका। लेकिन बिलकुल युवान महसुस होते थे, ब्रह्मचर्य के अप्रतिम तेज़ के कारण।

हिमालय में उनका वास था।

साल भर में एक ही बार, अपने शिष्य बंगनरेश के यहाँ तीन

रोज के लिये जाते थे। बंगनरेश अपना जन्मदिन, इस संन्यासी की निश्रा में मनाते थे।

कहा जाता है कि संन्यासी, ब्रह्मचर्य के द्वारा प्राप्त की किसी शक्ति द्वारा आकाश में उड्डयन कर एक दिन में ढाका पहुँचते थे। दूसरे दिन वहाँ रूकते थे और तीसरे दिन उसी प्रकार हिमालय में वापस आ जाते थे।

एक दिनका प्रसंग है। संन्यासी बंगनरेश के वहाँ थे। किसी कारणवश नरेश की प्रौढ पत्नी संन्यासी को भिक्षा देने आ नहीं सकी। आज महाराजा की युवती राजकुमारी खुद आतिथ्य करने आयी।

कभी नहीं और आज ही उसका लावण्य देखते ही त्रिलोकनाथ के अन्तःकरण में बीजली का एक अलपझलप की तरह विकार-भाव पैदा हुआ और बुझ गया। दूसरे ही क्षण संन्यासी स्वस्थ होने के साथ दुःखी हो गये। हिमालय वापस लौट जाने का समय हुआ। जैसे ही उडने की कोशिश की पर उड न पाये। संन्यासी समझ गये।

अपनी कमनसीबी पर रोते हुए बोले-"मेरा नसीब फूट चुका है। मेरी शक्ति स्थानच्युत हो गयी, हाय रे!"

संन्यासी पैदल चलते चलते हिमालय पहुँचे। आघात के कारण वे जल्द जर्जरित हो गये।

(२३०) कसौटी के क्षण

आभु नामक सेठ थे। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि घर आये किसी भी बांधव को बिना भोजन कराये वापस न जाने दें।

उनकी प्रतिज्ञा की सुवास आठों दिशाओं में फैल चुकी थी।

इस प्रतिज्ञा की खरी कसौटी करने की, मांडवगढ के महामंत्री पेथडशा के पुत्र झांझण को तीव्र इच्छा हुई ।

उसने एक अनोखा दिन ढूँढ निकाला । वह था चतुर्दशी का पर्व दिन ।

आभु सेठ, उस दिन के लिये उपाश्रय में ठहरते और पौषध-व्रत करते ।

सेठ की गैरहाजिरी में नाटक करने का झांझण ने निश्चय किया । आसपास के कई गाँवों में चुपचाप झांझण ने इशारा कर दिया कि ज्यादा से ज्यादा संख्या में, चतुर्दशी के दिन, आभु सेठ के घर सब जा पहुँचे ।

और....जिसकी कल्पना की न जा सके उस तादाद में – पूरे छत्तीस हजार जैन – आभु सेठ के घर चतुर्दशी के रोज सुबह ही पहुँच गये ।

www.yogpradhan.com

घर पर सेठ के छोटे भाई जिनदास थे । बडे भाई की प्रतिज्ञा व्यर्थ कैसे हो सकती थी !

थोडे ही समय में पाँच पक्वान–मिष्टान्न तैयार कराकर, जिनदास ने, सारे मेहमानों का भव्य स्वागत किया ।

झांझण को इस बात का पता चलने पर, वह शरमिंदा हो गया । उसने सेठ के पास आकर क्षमाप्रार्थना की ।

(२३१) निमित्त के अव्यक्त प्रभाव !

चन्द वर्ष पहले ही घटी यह घटना है । यूरप के किसी देश के वे दंपति थे । ऐश–आराम में दिन गुजार रहे थे । लेकिन एक दिन

गुजरते जीवन के प्रशान्त जल में खलबली मच गयी। दंपति का जीवन अशान्त हो उठा।

बात ऐसी हुई कि स्त्रीने प्रथम बच्चे को जन्म दिया, वह बच्चा संपूर्ण रूप से हबसी के बच्चे जैसा था। इससे गोरे पति को पत्नी के चारित्र्य के बारे में संशय पैदा हुआ।

स्त्री सचमुच निष्पाप थी। अतः उसने भी पति के संशय का डटकर मुकाबला किया आखिर मामला अदालत में पहुँचा। घंटों तक की पूछताछ के बाद न्यायाधीश उनका घर देखने आये; क्योंकि वे भी बड़े असमंजस में पडे हुए थे।

लेकिन युगल के शयनखंड को देखते ही न्यायाधीश को प्रमाण मिल गया।

www.yugpradhan.com

दूसरे दिन भरी अदालत में, स्त्री को निर्दोष घोषित करते हुए न्यायाधीश ने अपने आखरी जजमैंट में बताया कि गर्भाधान के समय, स्त्री की नजर दीवार पर लटकाये हबसी के चित्र पर लगी हुई थी। अतः एव बच्चे की सूरत ठीक वैसी बन पडी है। अन्यथा स्त्री निष्पाप है।

(२३२) अनुचित स्थल में मानवता का मोती

रेल का टिकट लेने की क्यू में एक बूढा आदमी खड़ा था। बेचारा बेहद भोला-भाला था। सचमुच भगवान का आदमी था। किसी बडे सेठ का पगारदार मुनीम था। सेठ के लिये टिकट लेने आया था।

कोई जेबकतरा उसके पास आ पहुँचा। मुनीम को बातों में फँसाकर धीरे से उस की जेब कतरकर नोटों से भरा पॉकेट सरका लिया। दूसरे ही क्षण नौ दो ग्यारह हो गया।

थोडी दूरी पर मित्र इकट्ठे हुए। पॉकेट में से पूरे छत्तीस सौ रुपये निकले। भारी रकम मिलने पर सभी फूले न समाये।

एक साथी ने उस से पूछा—"आज तूने किस पर ऐसा हाथ आजमाया?"

उसी समय वह वृद्ध आदमी जेब कट जाने का पता चलते ही, घबराया हुआ वहाँ से गुजर रहा था। उसकी ओर—ऊँगुली कर बताते हुए साथी ने कहा—"मैं ने इसे लूँटा है!"

"अरेरेरे, अरे! यह तो बालबच्चोंवाला, बडी मुसीबत से जीवन गुजारा करनेवाला गरीब आदमी है। जल्द से जल्द रकम वापस कर दो। बेचारा आत्महत्या कर लेगा शायद!" साथी ने कहा।

www.yugpradhan.com

और उसी पुण्यक्षण में जेबकतरे के दिल में पश्चात्ताप पैदा हुआ। वह दौडा।

"चाचा, अरे चाचा ठहरें। लीजिए ये आपके छत्तीस सौ रूपयों का पॉकेट! अब इस प्रकार पैसे न छोड रखें। वर्ना लूट जाओगे।" इस प्रकार कह रकम वापस लौटा दी। जेबकतरे ने पैसे वापस कर दिये। साथ ही अपार पुण्यलाभ प्राप्त किया।

(२३३) गृहस्थ का चारित्र्य

एक दिन की घटना है। सुकरात उसके अपने मित्रों के साथ अनेक विषयों पर बहस कर रहे थे। उस समय एक मित्र ने, सुकरात से ब्रह्मचर्य के बारे में प्रश्न पूछा। उसमें से दोनों के बीच चर्चा शुरू हुई।

उस मित्रने सुकरात से पूछा—"गृहस्थ आदमी, जीवन में कितनी बार जातीय सुख भोग सके?"

सुकरात–" संतानप्राप्ति के लिये सारे जीवन में केवल एक बार !"

मित्र–" आप की बात बिलकुल सही है, लेकिन यदि एक बार के संभोग से ही कामवासना शान्त न हो पाये तो क्या किया जाय ?"

सुकरात–" तो फिर साल में एक बार जातीय सुख का उपयोग करे । उस से संतोष होना ही चाहिए ।

मित्र–" फिर भी किसी आदमी की कामवासना तृप्त ही हो न पाये तो ! "

सुकरात–" तो फिर मैं क्या बताऊँ ! ? मास भर में एक बार वह संभोगसुख का अनुभव कर ले, लेकिन ऐसा करना अत्यंत अनुचित माना जाएगा । "

www.yugpradhan.com

मित्र–" गुरुदेव ! आपकी बात बिलकुल सही है । लेकिन मैं तो और भी आगे बढ़ एक प्रश्न करूँगा कि आप की बतायी मर्यादा से भी संतोष न हो पाये तो क्या करें ! " इस प्रश्न को सुनकर सुकरात ने कहा कि–" मैं अब मासभर में दो बार की छुट्टी देता हूँ; लेकिन उस कामान्ध मनुष्य को, कब्र में सोने का कफन तैयार रखकर ही दो बार की छुट्टी का उपयोग करना होगा ।

(२३४) पुण्य के विश्वास पर बैठे न रहे !

दिल्ही के शहंशाह को परास्त करनेवाले विदेशी आक्रमक बादशाह नादिरशाह की ठाठमाठ से विजययात्रा का आयोजन हुआ । दिल्ही के बादजाह ने ही उसका आयोजन किया था ।

नादिर के लिये हाथी मँगवाया गया था । विजययात्रा की तैयारियाँ पूरी हो जाने पर; पराजित बादशाह ने नादिर से हाथी पर

आरोहण करने की प्रार्थना की। नादिर ने पूछा—"इतने बड़े जानवर के उपर चढ़ा कैसे जाय ?"

बादशाद ने कहा—"हाथी की सूँढ का सहारा लेकर !" यह सुनते ही नादिर आगबबूला हो उठा। वह सूँढ के सहारे चढ़ तो गया, लेकिन मन ही मन बड़बड़ाने लगा—किसी के सहारे कोई काम करने की मेरी आदत ही नहीं !"

हाथी ऊपर के सिंहासन पर बैठकर नादिर ने हाथी का लगाम माँगा। उस समय साथ बैठे दिल्ही के बादशाह ने हँसते हँसते कहा—"बादशाह सलामत ! लगाम तो घोडे की होती है, जो सीधी हमारे हाथों रहती है। हाथी के लिये तो अंकुश रहता है, वह तो महावत के पास ही रहता है।" ये शब्द सुनते ही नादिरशाह ऊपर से सीधा जमीन पर कूदकर आ पडा। नीचे उतर कर उसने कहा—"किसी के विश्वास पर जीना यह तो पूरा खतरा है" मेरे लिये घोडा लाओ। मैं खुद घुडसवारी करूँगा। लगाम मेरे हाथों में रहेगी।"

अरे भोगी आत्मा ! पुण्य से प्राप्त सुखों में फँसो मत। किसी भी समय वह भरोसा, जो पराया है, टूट जायेगा। स्वाधीन सुख ही उत्तम है।

(२३५) मरना तो विरले ही जानते हैं !

(अभी धर्ममय जीवन जीना आसान होगा; लेकिन सही मौत तो तो विरला ही पाता है। शान्तिपूर्वक धार्मिक जीवन गुजारनेवाले भी कई बार मौज से समाधि की मौत पा नहीं सकते।

यहाँ जिसे सही मौत सुलभ है, वैसे धर्मात्मा चन्द्रयशा राजा की कहानी दी जा रही है।)

ये अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर परमात्मा आदिनाथ के पौत्र थे; नाम था राजा चन्द्रयशा ।

धर्म तो उनके श्वासप्राण था । धर्म की कई प्रकार की क्रियाओं से उनका जीवन अत्यंत सराबोर था । वे जो प्रतिज्ञा करते, उसे प्राणों से निपटा लेते । उनकी यह ख्यात देवराज इन्द्र की सभा में पहुँच गयी ।

स्वयं इन्द्र ने देवों से यह बात बतायी ।

लेकिन....दो देवियोंने सोचा कि महाराजा चन्द्रयशा की प्रतिज्ञा की कसौटी करें । तुरंत ही दोनोंने मर्त्यलोक की रूपवती युवतियों का स्वरूप धारण किया । महाराजा चन्द्रयशा की नगरी में आ पहुँची । उस समय महाराजा जिनमंदिर में, परमात्मा की भक्ति-पूजा कर रहे थे । दोनों सुन्दरियाँ वहाँ पहुँचीं । अत्यंत भक्तिभावपूर्वक वे दोनों पूजा-भक्ति करने लगीं । उनकी भक्ति और सौन्दर्य निहार कर, चन्द्रयशा उनकी ओर आकृष्ट हुए । देवियों की युक्ति सफल हुई ।

थोडे ही समय में उन सुन्दरियों के सामने राजाने शादी करने का प्रस्ताव रखा । रूपसियों ने कहा-"हम जो कहें, वही करना होगा, ऐसा वचन दें, तभी हम आप के साथ शादी करें ।

कामवासना से विह्वल बने राजा ने उनकी शर्त मंजूर की और शादी कर ली ।

थोडे दिन गुजरे और चतुर्दशी का पर्व आया ।

महाराजा इस पर्व के दिन पौषधव्रत लेने के आग्रही थे । उन्होंने अगले दिन अपनी सुन्दरी दोनों पत्नियों से पौषधव्रत की बात कही ।

रूपवतियों ने चन्द्रयशा से कहा-"स्वामीनाथ ! आप पौषधव्रत

कर नहीं सकते। उससे हमारे भोगसुख में क्षति होगी; जो हमारे लिये असह्य है!"

"अरे, लेकिन यह तो मेरी वर्षों की प्रतिज्ञा है, उसका भंग मैं कैसे कर पाऊँ!" राजा ने कहा।

दोनों पत्नियों ने कहा—"जो होना हो, सो होता रहे। आप पौषधव्रत नहीं ले पायेंगे, यह निश्चित है। अगर आपने ऐसा व्रत ले रखा होतो उसका भंग करें।"

राजा ने कहा—"अरे, यह तुम लोग क्या बकवास कर रही हो? क्या प्रतिज्ञाभंग कभी हो सकता है? हाय रे! तब तो अनंत भवों तक इस संसार के चक्कर से मेरी मुक्ति ही हो न पाये।"

www.yugpradhan.com

"स्वामीनाथ, हमें ऐसी धर्म की बातें सुननी नहीं हैं। हमारे साथ शादी करते वक्त आपने हमें वचन दे रखा है कि हम जो कहेंगी, वही किया जायेगा। आप अपने वचन का स्मरण करें और अपने वचन को ठुकराओ नहीं।" पूरी निर्भयता से सुन्दरियों ने राजा को साफ साफ बातें सुना दीं।

महाराजा चन्द्रयशा भारी असमंजस में पड़ गये। एक ओर प्रतिज्ञाभंग था तो दूसरी ओर वचनभंग का पाप! ऐसा निर्बंध वचन दे देने पर आज भारी पश्चात्ताप होने लगा, लेकिन अब करे भी तो क्या! दोनों सुन्दरियों को समझाने की राजाने कई कोशिशें कीं, लेकिन उनमें से कोई सफल न हो पायी।

अब क्या किया जायें? प्रतिज्ञाभंग हो न सके तो वचनभंग भी हो नहीं सकता। आखिर महाराजाने जीवनभंग करना ही निश्चित कर लिया। उन्हों ने मन ही मन सोचा कि बिना किसी एक का भंग किये, मौत मंजूर कर लूँ, उसी में खैर है। जिन्दा रहा तभी किसी एक

के भंग की समस्या सामने आ पायेगी न ? मैंने जीना सिखा है तो मरना भी जानता हूँ !

इतना सोचते ही तुरंत कटिसे कटार खींच जोर से गले पर घाव कर दिया ।

अरे....लेकिन अजीब बात है, गला कटा ही नहीं, दूसरी बार, तीसरी बार....पूरी ताकत से घाव किये गये, लेकिन सब व्यर्थ !

उसी समय देवियाँ अपने मूलस्वरूप में उपस्थित हुई । और राजा की दृढ़ प्रतिज्ञा के सामने झुक कर स्वर्गलोक में सिधार गयीं ।

www.yugpradhan.com

(२३६) वातावरण का प्रभाव

(संदेश के दि. २५–९–'७६ के अंक में प्रकाशित पुरुरवा की कथा का यहाँ सारांश दिया है । कथावस्तु में थोडी बहुत असंगतियाँ हैं; लेकिन उन्हें भूलकर हमें तो यही देखना होगा कि, वायुमंडल में शुभ या अशुभ वृत्ति, प्रवृत्ति आदि का गहरा प्रभाव, अधिक समय तक, बना रहता है । उससे दूसरे भी उस वायुमंडल के विस्तार में आते हैं, तो वे भी जहरीले प्रभाव तले आ जाते हैं । सुंद–उपसुंद जैसे रूस और अमरिका ने, भारत की पुण्यशाली पावनी भूमि पर सभी पातकों का प्रचार–प्रसार कर, इस भूमि के वायुमंडल को दुषित कर, रखा होगा; अत एव आर्यों की बुद्धि भी दुषित हुई होगी क्या ?)

राम, लक्ष्मण और सीता, तीनों वनवास समय में पैदल चले जा रहे थे । दरमियान, उन्हों ने दंडकारण्य में प्रवेश किया ।

इस जंगल में जैसे ही प्रवेश हुआ कि लक्ष्मण की चाल में यकायक परिवर्तन आ गया । रामचंद्रजी के कदमों में कदम रखते–मिलाते

लक्ष्मण बड़ी तेजी से चलने लगे हैं। उनकी चाल को देख संशय होने लगे कि जरूर लक्ष्मणजी पर किसी भूतप्रेत की छाया काम कर रही है।

थोडे आगे चलने पर, लक्ष्मण जोर जोर से चिल्लाने लगे—"वह राम बड़ा हुआ तो क्या हुआ? वह अगर अपनी सीता को साथ ले वनविहार करें तो मैं अपनी प्राणप्रिया ऊर्मिला को साथ लिये क्यों न फिरूँ? मैंने स्वयं ही उसे, माताओं की सेवामें राजमहल में छोडकर भारी गलती की है! लेकिन अभी भी क्या बिगडा है? इस जंगल को पार करते ही सीधा अयोध्या जाऊँगा और निश्चित ध्येय पार करूँगा। इस प्रकार राम की सेवा करते रहना मेरे लिये असह्य है।"

साथ ही राम में भी बड़प्पन का अंश तक दीख नहीं पड़ता! बड़प्पन होता तो वे ही शुरू से ऊर्मिला को साथ ले लेने की सूचना—आज्ञा करते। लेकिन कोई चिंता नहीं, मैं ही स्वयं निपट लूँगा।" थोडी ही दूर खडे राम को टूटे फूटे शब्द और उनके द्वारा व्यक्त होती लक्ष्मण की भावना का अंदाजा मिल पाया कि बात बिगड़ चुकी है।

जल्द वे लक्ष्मण के पास पहुँचे और यकायक कंधे पर हाथ रख बोले—"बस! तुम जरा बेचैन मालूम होते हो।" लक्ष्मण ने आवेश-पूर्ण मुखमुद्रा लिये तुनककर कहा—"कुछ नहीं, आप सीता को साथ लिये मौज उड़ाये और मैं ऊर्मिला की परछाँई तक देख न पाऊँ। यह कहाँ का न्याय है?" इतना कह लक्ष्मण राम से घृणा व्यक्त करते ज्यों ही आगे बढ़ने लगे, त्यों ही पलभर में परिस्थिति की गंभीरता को समझ कर, रामचंद्रजी ने कहा—"भाई, मेरे प्रति तुम्हारे दिल में घृणा पैदा हुई है क्या? भले, ठीक है, कोई बुरी बात नहीं है। इसमें तुम निर्दोष हो। तुम्हारे जैसा स्नेही भाई भी ऐसी परिस्थिति में आ फँसा, उसका कारण तुम नहीं, लेकिन यह जंगल है।"

लक्ष्मण यह सुनते ही चौंक पड़े। उनका क्रोध थोडा शान्त हुआ ओर राम की ओर इकटक देखने लगे। आगे चलकर राम ने कहा—"इसजंगल में सुंद और उपसुंद नामक दो भयानक राक्षस थे। ब्रह्माजी को तप द्वारा प्रसन्न कर उन्होंने अमरत्व प्राप्त कर रखा था। चतुर ब्रह्माजीने उसमें एक अपवाद छोड रखा था कि दोनों यदि अपने सर पर हाथ रखेंगे तो उसी समय वे दोनों साथ ही मर जाएँगे।"

"प्यारे भैया लक्ष्मण, एक दिन ठीक वैसा ही हुआ। धरती पर भयंकर त्रास—अत्याचार गुजारनेवाले इन दोनो दानवों के सर्वनाश के लिये ब्रह्माजी मोहनी नामक अप्सरा को जंगल में भेजी।

"वत्स लक्ष्मण! इस जंगल में इतना भारी घोर हत्याकांड हो पाया है, कई अनगिनत युवतियों पर बलात्कार किये गये हैं, इतना शराब पीया पिलाया गया है कि इन सारी बुरी बातों से यहाँ का सारा वायुमंडल दूषित हो उठा है। इसी कारण जैसे ही तुमने इस जंगल में पाँव रखा वैसे ही तुम्हारी बुद्धि में कलिका प्रवेश हो गया।"

"ठीक है, जो हुआ सो हुआ। अब तुम जाओ और अयोध्या से ऊर्मिला को ले आओ। इसमें मेरी संमति है और सीता भी पूरी संमत है।"

इतनी चर्चा होते होते तो उस जंगल का वह दूषित प्रदेश पार हो गया और उसी समय लक्ष्मण की कुबुद्धि शुद्ध हो पायी। बड़े भैया के चरणों में गिर कर वह फूट—फूट कर रोने लगा और अपने भयंकर अपराध के निमित्त क्षमा—प्रार्थना करने लगा।

(२३७) सत्य की रक्षा के लिये अकेले भी योद्धा बने रहें!

बादशाह अकबर ने सभी हिन्दु राजाओं को परास्त कर लिये,

लेकिन महाराणा प्रताप अभी भी अपराजेय बने रहे हैं। मेवाड का वह सिसोदिया वंश का केसरी अकबर के सामने झुकने के लिये तैयार न था। उसके कई मित्रों का धर्मपरिवर्तन कराकर, अकबर ने मुसलमान बना दिये थे, फिर भी प्रतापी वीर प्रताप अब भी अड़ग अचल बना रहा था। अतएव मेवाड़ को प्रजा के दिलों में वह 'भगवान' की तरह पूज्य-मान्य बना हुआ जा।

एक दिन की घटना है। सभा के बीच अकबर ने अपनी कुख्यात कपट कला की आजमाईश की! उसने जीहुजूरों से भरी राजसभा में ऐसी घोषणा की कि-"मेवाड के राणा प्रताप की ओर से कल एक सेवक आया है। उसने प्रताप का दिया एक पत्र मुझे दिया है। उसमें प्रताप ने मेरी शरणागति का स्वीकार किया है, ऐसा उल्लेख है।"

राजसभा में उपस्थित सभी रजपूत, ये शब्द सुन दिङ्मूढ हो गये। सभी के अन्तःकरणों में एक ही आवाज गूंज उठी-"महाराणा प्रताप, शरणागति का स्वीकार कभी कर ही नहीं सकते।"

उस सभा में धर्मपरिवर्तन किया हुआ रजपूत कवि पृथ्वीराज बैठा हुआ था। अलबत्त, उसने मजबूरी से धर्म परिवर्तन किया हुआ था, लेकिन उसके दिल में भड़कती धर्मभावना और राष्ट्रभक्ति की आग बुझ नहीं पायी थी। अकबर के वाक्य सुनते ही, उसे भारी चोट पहुँची। वह चकरा गया। नजरों के सामने हिन्दु साम्राज्य की ईमारत, जडमूल से नामशेष होती दीख पड़ी।

फिर भी उसका दिल, अकबर की बात मान ने के लिये मजबूर था। अकबर कूटनति का चाणाक्य है, यह वह अच्छी तरह जानता था। छठकते पोंवों घर पहुँचा और राणा प्रताप पर एक पत्र लिखा। सारी बातें लिखी और अन्त में लिखा कि-"महाराणा प्रताप! अरे

सिसोदिया वीर ! जिस दिन तुम यवनों की शरण में जाओगे, उस दिन हिन्दु साम्राज्य के तेजस्वी सूर्य अस्ताचल पर डूब जायेगा। ऐसे खराब भविष्य की कल्पना करते हुए मैं चकरा रहा हूँ। आँखों से अनवरत आँसू बहाता मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।"

अपने निजी आदमी के द्वारा पहुँचाये पत्र को पढ़कर प्रताप ठहाके के साथ हँस पड़ा।

कवि पृथ्वीराज को उसने प्रत्युत्तर लिख भेजा। "पृथ्वीराज कवि, निश्चित हो। आप की लिखी सारी बातें मनगढत और सरासर झूठ से भरी हैं। सिसोदिया यह वीर प्रताप, मुगलों के पाँव चूमने से पहले मौत पसंद कर लेगा। जिंदा प्रताप कभी अकबर का शरणागत हो ही नहीं सकता।"

उस पत्र को पढ़ते ही कवि पृथ्वीराज खुशी का मारा नाच उठा। उसने अपने साथियों से सही बात कहते हुए अकबर की कूटनीति का एक बार खुलेआम भण्डा फोड दिया।

लगातार पच्चीस वर्षों तक मुगलों के विशाल सैन्यों के सामने महाराणा प्रताप अचल अपराजेय योद्धा बना रहा। उसे जब्त करने की अकबर की सारी कोशिशें व्यर्थ सिद्ध हुई।

एक दिन महाराणा प्रताप मृत्युशय्या पर लेटे हुए हैं। आखिरी दम ले रहे थे। महाराणा के मुँह पर ग्लानि थी। रजपूत सरदार शोकातुर खडे थे। प्रताप ने उन से धीमी आवाज से कहा—"तब तक मुझे चैन नहीं; जब तक तुम सब यह प्रतिज्ञा न करो कि, "हमारे शरीर में प्राण रहेंगे तब तक देश के दुश्मनों का दमतोड़ मुकाबिला करते रहेंगे।"

तुरंत ही मेवाड के वीर रजपूतों ने, हाथ में पानी लेकर प्रतिज्ञा ली। थोडे ही क्षणों में महाराणा प्रताप के प्राण चल बसे।

उसके बाद सिर्फ सौ साल में ही हिन्दुओं ने मुगलों के पास से शासन अपने हाथों कर लिया।

ई. स. १७०७ में औरंगजेब की मृत्यु से पूर्व ही रजपूतों ने (पंजाब में सीखोंने, दक्षिण में मरहठों ने) विजयपताकाएँ फहरा दी थी।

(२३८) ईर्ष्या एक खतरनाक अवगुण

(निंदा और ईर्ष्या से हमें कोसों दूर रहना चाहिए। ये दोनों बेहद खतरनाक दुर्गुण हैं। कई भले आदमियों के जीवन, इन दो दुर्गुणों के चक्कर में फँस कर बरबाद हो चुके हैं। मिष्टान्न और फलों के रसास्वाद को छोडनेवाले भी, कई बार निंदादि के रस को छोड़ नहीं पाते हैं, यह वास्तविकता है।

www.yugpradhan.com

यहाँ एक ऐसे समर्थ आत्मा की कहानी है, जो अपने शिष्य से ही ईर्ष्या कर दूसरे भव में कालीय नाग बन पाया था।)

वे थे समर्थ जैनाचार्य!

नाम था उनका नयशीलसूरिजी।

महान पंडित थे; लेकिन शायद अपने ज्ञान का ही उन्हें अपचा हुआ हो, वैसे वे सुखशील थे। सारा दिन वे आराम में ही डूबे रहते थे।

उनको एक विद्वान शिष्य था। शिष्य में विद्वत्ता के साथ, विरल दीख पडे ऐसी अद्वितीय नम्रता भी थी। अतः अनेक साधु भी उनके पास स्वाध्याय करने आते। पाठ लेते–सीखते। गुरुदेव की सुखशील जीवनपद्धति के कारण व्याख्यान भी ये शिष्य ही दिया करते। इससे

लोग भी इस शिष्य के पास ज्यादा समय बैठते। उनसे तात्त्विक प्रश्नों की चर्चा–बहस भी छेड़ दिया करते थे।

गुरुदेव नयशीलसूरिजी को इस से ज्यादा संतोष होना चाहिये था; लेकिन कमनसीबी के कारण वे ईर्ष्या करने लगे। अपने शिष्य का यह उत्कर्ष उन्हें खटकने लगा।

फिर भी वे अपने शिष्य पर गुस्सा कर नहीं पाते थे। और नहीं वे साधुओं के स्वाध्यायों को स्थगित कर सकते थे; क्योंकि अगर वे ऐसा करने जायें तो सभी को इस बात का पता चल जायें कि गुरुदेव को अपने शिष्य के उत्कर्ष की ईर्ष्या हो रही है।

दिल में निरंतर जलती–भडकती गुरु की आत्मा एक दिन देहत्याग कर चल बसी।

www.yugpradhan.com

वह आत्मा काला नाग बनी। अब साधुवृंद का नेतृत्व उस विद्वान शिष्य के हाथों आया। गाँव–प्रतिगाँव विहार करते करते, एक बार सारा वृंद उसी उद्यान में आकर ठहरा, जहाँ वह काला नाग बस रहा था।

स्वाध्यायादि से निवृत्त होकर, वह विद्वान शिष्य ध्यानादि के लिये उद्यान के वृक्ष के नीचे बैठने के लिये जैसे ही निकले तो अपशुकन हुए। पुनः उपाश्रय में जाकर फिर जाने निकले, तो पुनः अपशुकन हुए। इस प्रकार जब तीसरी बार हुआ तब अन्य साधुओं ने उन्हें अकेले जाने से रोक लिये। और थोडे बहुत ऋषियों के साथ गये।

थोडी ही दूरी पर वह काला नाग फूत्कारता हुआ यकायक आ धँसा। अत्यंत सावधान मुनियों ने तुरंत उसे पकड लिया और दूर तक छोड आये; लेकिन उस समय भी अपने पूज्य मुनि की ओर आँखें

निकाल रहा था। उग्र क्रोधावेश में आगबबूला हो वह मुनि पर धँस जाने के प्रयत्न कर रहा था।

पूर्वभव की ईर्ष्या ने इस भव में जलन पैदा कर दी थी। इस से साधु लोग चकित रह गये। अपने पूज्य मुनि के प्रति कालीय नाग को इतनी घृणा क्यों होगी? यह उनके दिमाग में जमता न था।

समय आने पर उस मुनिवृंदने, उस उद्यान को छोडकर विहार करना शुरू किया।

रास्ते में किसी विशिष्ट ज्ञानी महात्मा के दर्शन हुए। वंदनादि विधि से निवृत्त होकर, मुनियों ने उस ज्ञानी महात्मा से प्रश्न पूछा कि– "हमारी समझ में नहीं आता कि, हमारे आराध्य-मुनि के प्रति उस उद्यान का कालीय नाग इतनी उग्र जलन क्यों रखता है? आप हमारे पर कृपा कर, आपके ज्ञानबल के सहारे, हमारे संशय को दूर करने की कोशिश न करें?"

www.youpradhan.com

यह सुन उस महात्माने कहा–"वह कालीय नाग, और कोई नहीं; लेकिन आपके दिवंगत गुरुदेव नयशीलसूरिजी की आत्मा है। आप लोगों को स्वाध्यायादि कराते इस विद्वान मुनि के प्रति उन्हें उस समय डाह पैदा हुआ था और उसी स्थिति में उनकी मृत्यु हुई। परिणाम-स्वरूप वे कालीय नाग बने। और पूर्वभव के संस्कारबल के कारण, वे तुम्हारे विद्वान और आराध्य इन मुनिवर्य के प्रति क्रुद्ध हुए थे।"

यह सुन सभी मुनिवर स्तब्ध हो गये। सभी के दिलों में से आह निकली–"रे कर्मों की कैसी विषम परिणति। अगर हमें थोडा-सा भी कर्मदोष लगा तो हमारी भी कैसी दुर्गति हो पायें!"

(२३९) पशुओं में भी गौरव, मानव में नहीं !

(जब युद्ध के नगाडे बज रहे थे। तोपों के गोले आग बरसा रहे थे। सैनिक "हर हर महादेव" और "अल्ला हो अकबर" की गगनभेदी घोषणाओं के साथ एकदूसरे पर टूट पडते थे। तब राणा प्रताप के अश्व चेतक और राजा मानसिंह के हाथी का भी जोस बढ़ा-चढ़ा रहा और उन्होंने भी युद्ध के उस इतिहास में अपने नाम की दो दो पंक्तियों अमर करा दीं।

अरे मानव, ओ धर्मीजन! तुम्हारा धर्मशासन, भेदी आक्रमणों का शिकार कभी का बन पाया है। मैत्री की ओटमें शत्रु उभर आये हैं, फिर भी तुम्हारे दिलमें कोई अकुलाहट नहीं। तुम्हारा प्रत्येक रक्तकण गौरव की आग या शहीदी की तमन्ना से क्यों भडक-सुलग नहीं ऊठता ?)

www.yugpradhan.com

चार सौ साल गुजर गये, उस ऐतिहासिक युद्ध हुए।

भारत के इतिहास में प्रसिद्ध वह हलदीघाटी का युद्ध था। इस खूँखार युद्ध की पूर्वभूमिका कुछ ऐसी थी। घर की फूट और राष्ट्र द्रोहिता की फुनगियोंमें से ही यह भारी विस्फोट हो पाया था।

राजा मानसिंह ने महाराणा प्रताप का त्याग कर दिल्ही के बादशाह अकबर का शरण लिया था। राजा मानसिंह, धरती के टुकडे के लिये, कुत्ते की तरह, बादशाह अकबर की खुशामत करने लगा। अरे उसने हीरो-मोती की खातिर अपनी क्षत्रियाणी बहन को अकबर की बेगम बनाकर, अकबर के दिल में प्रथम नंबर का स्थान पा लिया था। महाराणा प्रताप को इस घटना से भारी चोट पहुँची। राजा मानसिंह के प्रति उनके दिल में भारी घृणा पैदा हो चुकी।

अकबर ने राजा मानसिंह को राणा प्रताप के पास भेजा। संधि पर संमति के हस्ताक्षर दे कर अकबर की शरण में आकर ठहरने के लिये!

मानसिंह के साथ प्रताप का पुत्र भोजन लेने बैठा, तब मानसिंह ने महाराणा प्रताप के बारे में पूछताछ शुरू की। पुत्र ने कहा—"पिताजी की तबियत ठीक न होने पर, आप के साथ भोजन लेने नहीं आ बैठे।" इन वाक्यों से ही मानसिंह को पता चल गया कि महाराणा प्रताप की बिमारी राजनीति—विषयक है। आगबबूला हो कर वह खड़ा हो गया और पैर पटकता चल पड़ा। वैसे ही प्रताप उनके सामने आये। उसने कहा—"जड वस्तु के टुकडे के लिये, जिसने अपनी क्षत्रिय बहन का धर्मान्तर कराया, ऐसे दुष्ट—नीच के साथ बैठ मैं भोजन नहीं ले सकता।"

www.yugpradhan.com

इन वाक्यों को सुनते ही मानसिंह घायल शेर की तरह अकुलाया—तमतमाया। प्रताप का सर्वनाश करने की श्रद्धा के साथ, मानसिंह ने अकबर के मुगल सैन्य के अस्सी हजार सैनिकों को साथ लेकर मेवाड की ओर प्रयाण किया। इस ओर महाराणा प्रताप ने कसे हुए बाईस हजार सैनिकों को रणमैदान के लिये तैयार किये।

दोनों सैन्यों के बीच हल्दीघाटी में टक्कर हुई। घमासान युद्ध छिड गया। महाराणा प्रताप के सैनिक इस धर्मयुद्ध में जंगेशेर बने हुए थे। भूखे वरू की तरह वे मुगलों पर टूट पडे थे। घास की तरह मानसिंह के सैनिकों के सर कट कर गिरने लगे।

कायरों का भी जोस बढ़ जाय ऐसा घमासान युद्ध था। महाराणा प्रताप की तलवार लपकती कौंधती बिजली तरह चारों ओर चकराती थी। प्रताप रास्ता साफ करते हुए राजा मानसिंह के हाथी के पास पहुँच जाना चाहते थे।

प्रताप के जीगरी और वफादार घोडे चेतक को उनकी इच्छा का पता चल गया। चालाकी के साथ घोडा दौडा और पलक मारते ही, वह राणा मानसिंह के हाथी के पास आ ठहरा। दूसरे ही क्षण, अपने दोनों अगले पाँवों को हाथी के पेट पर टिका दिये। उसी क्षण राजा प्रताप ने सिंहासन पर बैठे मानसिंह पर भाले का तीव्र प्रहार कर दिया। लेकिन अफसोस, मानसिंह बालबाल बच गया। प्रताप के चारों ओर मुगल सैनिक धँस आये। सावधान चेतक ने चाल बदली और अपने मालिक को उठा, वह भागने लगा। चेतक ज्यों ही भाग छूटने के लिये पाँव उठाता हैं, त्यों ही राजा मानसिंह के हाथी ने कमाल कर दिखाया। हाथी जान गया था कि वही चेतक, अपने मालिक की जान को खतरे में डालने के लिये मददगार बन रहा है। अतः उसने किसी मुस्लिम सैनिक की तलवार को सूंढ के बल खींच ली और पूरी ताकात से उसे चेतक के एक पाँव पर फटकार दी। चेतक घायल हो चुका; फिर भी लंगडाती चाल से वह दौड़ा और अपने मालिक को उसने शत्रु के घेरे में से निकाल बचा लिया। चारों ओर से शस्त्रों के घावों से घायल बना चेतक लुढक गया। उसके प्राण चल बसे। राणा प्रताप ने उसके शव को गले लगाकर भारी रोधूप की। अस्सी हजार यवनों में से पचास हजार यवन कट मरे। प्रताप के बाईस हजार सैनिक मारे गये।

तीस हजार का यवन सैन्य लेकर दिल्ही वापस लौटे राजा मानसिंह का स्वागत तो एक ओर रहा, लेकिन भरसभा में अकबर ने मानसिंह को खूब झाड़ा। फिर भी प्रताप न पकडे गये और न मारे गये। ऊपर से उसके बाद प्रताप ने अपने जीवनकाल में ही सिवा चित्तोड के, गँवाये सारे मेवाड को पुनः हस्तगत कर लिया।

www.yugpradhan.com

बादशाह अकबर को मिली विजय, पराजय से भी बदतर थी।

(२४०) कैसी अजीब माँ ! कैसा अजीब पुत्र !

दुनिया में एक कहावत है कि पुत्र कुपुत्र बन पाये लेकिन माता कुमाता नहीं बन पाती ! लेकिन इस कहावत को भी उलटा दे ऐसे अपवाद इतिहास और धर्मशास्त्र के पन्नों पर आलिखित है।

कैसा खतरनाक है, यह संसार ! जहाँ स्वार्थ टूटे वहाँ मित्र भी दुश्मन बन जायँ। मामका भी पराया बन जाय।

वे थे राजा कीर्तिधर।

किसी ज्ञानी भगवंत की देशना सुनकर संसार से विरक्त हुए और बालपुत्र सुकोशल और रानी सहदेवी का त्याग कर, दीक्षाधर्म का अंगीकार किया। वे अपूर्व– अनोखा मुनिजीवन गुजार रहे थे।

www.yugdradhan.com

एक दिन विहार करते करते वे स्वाभाविक रूप से ही अपने नगर की बाहर के उद्यान में आ पहुँचे। उद्यान में निवास किया। इस ओर राजमाता सहदेवी अपने संसारी पति–मुनिवर उद्यान में पधारे हुए जान बेहद घबरायी। उसने सोचा कि–" यदि राजकुमार सुकोशल के पिता–मुनि नगर में आयँगे तो उनकी धर्मदेशना सुनकर कोमलहृदय सुकोशल संसार से विरक्त हो कर निकल भागे तो क्या हो ? अरे अभी चंद रोज पर तो मैं ने राजकुमारी चित्रमाला के साथ उसकी बडी धामधूम से शादी करायी है, उसकी भी कैसी हालत हो जायँ ? "

बिजली की तरह यह विचार मनमें पैदा हो गया। साथ ही उसने तुरंत एक निर्णय कर लिया। कीले के पहरेगीरों को बुलाकर उन्हें स्पष्ट सूचना दे रखी कि उद्यान में बसे मुनि को नगर में प्रवेश न करने दें।

राजमाता की फरमाईश का पूरा अमल हुआ। इस बात का पता राजकुमार सुकोशल की धाई-माँ को चला। राजर्षि कीर्तिधर की नगरप्रवेश वेधी जानकर, उसे बेहद ठेस पहुँची। वह फूट फूट रोने लगी-सिसक ने लगी।

राजकुमार सुकोशल ने धाई-माँ को रोती-सिसकती देखकर पूछताछ की। सुकोशल की ओर से अभय वचन मिलने पर, उसने सारी बातें साफ साफ राजकुमार के सामने पेश कर दीं।

यह वृत्तांत सुनते ही, सुकोशल को भारी आघात पहुँचा। "माँ जैसी माँने पिता-मुनि के नगर-प्रवेश का भारी विरोध किया! मुझे धिक्कार है कि में इस निंदनीय कार्य का निमित्त बना!"

माता से बिना कुछ बताये, सुकोशल तुरंत राजर्षि कीर्तिधर मुनि के पास उद्यान में जा पहुँचा। माँ का ऐसी अधमता से सुकोशल के दिल को ठेस पहुँची थी। वह फूट फूट कर रोने लगा। राजर्षि ने उसे कर्म की देशना दे कर बहुत सा आश्वासन दिलाया।

रोते राजकुमार ने कहा-"संसार स्वार्थान्धता और मोहान्धता से लदालद भर चुका है, उस संसार में क्षण मात्र के लिये मैं ठहरना नहीं चाहता।

उपरान्त, इस पाप में मैं ही निमित्त बना हूँ। अतः उसके प्राय-श्चित्त के रूप में मुझे मुनि होना हैं। मुझे आपका शिष्य बनाएँ।

सुकोशल की भावना नगरभर में फैल गयी। प्रधानमंडल दौड आया। दीक्षा ग्रहण कर राज्य को अराजक परिस्थिति में न रखने के लिए अत्यंत आग्रह किया। और रानी चित्रमाला दौड आयी और करुण कल्पांत करने लगी। अंत में राजमाता सहदेवी आ पायी और सुकोशल को समझाया; लेकिन सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए। रानी चित्रमाला

www.yugpradhan.com

सगर्भा थी। उसके भावि पुत्र को राजकाज की जिम्मेवारी सौंप कर, तब तक प्रधानमंडल को राज्य-व्यवस्था सम्हाल ने की सूचना देकर सुकोशल साधु बने !

राजमाता सहदेवी को भारी सदमा पहुँचा। उसकी व्याकुलता में ही वह मौत की शिकार बनी और बाघिन बनी।

एक दिन पिता-पुत्र का मुनियुगल, एक मास के उपवास के अंत में उसी जंगल में से गुजर कर किसी नगर में भिक्षा निमित्त जा रहा था, जिस जंगल में यह बाघिन बस रही थी।

पूर्व भव के बैर के कारण वह बाघिन दोनों पर धँस आयी। तुरंत ही दोनों कायोत्सर्ग की ध्यानावस्था में स्थिर खडे हो गये।

बाघिन ने प्रथम अपने पूर्वभव के पुत्र सुकोशल को फाड़ खाया; उसके बाद पूर्वभव के पति कीर्तिधर को खत्म कर दिया।

अत्यंत उच्च ध्यानावस्था में स्थिर होकर, दोनों मुनि कैवल्य और मोक्ष को प्राप्त कर गये।

धन्यवाद है, उस पिता-पुत्र की अनोखी जोड़ को !

www.yugpradhan.com

(२४१) ब्रह्मचर्य-रक्षा के लिए आत्महत्या

(दूसरे गुणों के बारे में शायद कभी कभी अपवादमार्ग का उपयोग कर, उस गुण की रक्षा की जा सकती है; लेकिन ब्रह्मचर्य अेक ऐसा गुण है, जिसमें वासना की तृप्ति के लिये भी भोगमार्ग का सहारा लिया नहीं जा सकता।

कोई ऐसी कसौटी की क्षण उपस्थित हो जाय तो आत्महत्या कर

जीवन को विशुद्ध अवस्था में ही समेट लेना अच्छा होगा । इस प्रसंग-कथा में ऐसी दो आत्महत्या के रोचक प्रसंग चित्रित किये हैं ।)

एक नगर था । सुदर्शन नामक सेठ रहते थे । उनके दो पुत्र थे, जयसुंदर और सोमदत्त ।

दोनों की शादियाँ जयवर्धन सेठ की दोनों लड़कियाँ सोमश्री और विजयश्री के साथ हुई थी । दोनों घरदामाद बनकर रहने लगे ।

एक रोज अपने पिता सुदर्शन सेठ की भारी बीमारी के समाचार सुनते ही, जयसुंदर और सोमदत्त ससुर के घर से तुरंत निकल पडे; लेकिन कमनसीबी यह रही कि पहुँचने से पहले ही पिताजी की मृत्यु हो चुकी थी । दोनों को भारी सदमा पहुँचा । कई दिनों तक दोनों ने करुण कल्पांत किया । उन्हें ऐसे निःसार संसार के प्रति, भोगसुखों के प्रति घृणा पैदा हो गयी ।

www.yogpradhan.com

योगानुयोग से उसी समय कोई ज्ञानी गुरुदेव उस नगर में आये । दोनों पुत्रोंने दीक्षा के लिए उन से प्रार्थना की । ज्ञानी ने बताया कि– दीक्षा तो दूँ, लेकिन तुम दोनों को स्त्रियों की ओर से भारी परेशानी होनेवाली है । तुम दोनों उसमे से पार उतरोगे ? "

दोनों ने कहा–" गुरुदेव ! आपकी कृपा से हम दोनों जरूर उस उपद्रव में से पार उतरेंगे ! "

और....शुभ मुहूर्त में दोनों भाईओं की दीक्षा हो गयी । दोनों महा सत्त्वशाली हुए । महाज्ञानी बने ।

गुरु की आज्ञा से एक दिन जयसुंदर मुनि एकाकी बनकर, अप्रमत्त भाव से विहार करते करते अपनी संसारी अवस्था के ससुर के नगर में भिक्षा के लिये उनके ही घर जा पहुँचे ।

कामवासना से पीडित अपनी संसार भव की पत्नी उसी मास गर्भवती हुई थी। अपना पोल खुल न जाय उस के लिये उसने पति—साधु के पास भोग की याचना की। मुनि ने बहुत समझाया फिर भी जब वह न मानी तब मुनिने अपना मार्ग तय कर दिया। इसके बारे में सोचने के लिये समय की माँग कर, उसके घरमें से निकल गये और अन्यत्र किसी सूने घर में जाकर गलेमें फँदा लगाकर आत्मघात कर लिया। कालधर्म प्राप्त कर मुनि बारहवें देवलोक के देवात्मा बन पाये।

किसी भी तरह सोमश्री गिरफ्तार हुई। उसके उपर मुनिहत्या का आरोप लगाकर, मातापिता ने घरमें से निकाल दी। दर दर ठोकरें खाती वह भी मौत की शरण हुई।

www.yugpradhan.com

छोटी बहन विजयश्री भी उसके पीछे पीछे घरमें से निकल भागी।

कहीं रास्ते में उसे अपने संसारी पति से भेंट हुई। उसे देखते ही वह कामातुर हुई। उसने भी मुनि के पास कामातृप्ति के लिये गिड-गिडाना शुरू किया।

मुनिने उसे कई बार समझायी, लेकिन वह न मानी। मुनिको भी दीक्षाग्रहण के समय अपने गुरु द्वारा कहे गये शब्द याद आये कि—"स्त्रियों की ओर से कोई भारी बाधा आ पडेगी।"

अब क्या किया जाय? मुनिने इर्दगिर्द नजर डाली। थोडी ही दूर गीदडों की टोली जहाँ तहाँ मुर्दों की मिजबानी उडा रही देखी। मुनिने अनुमान किया कि उस जगह ताजा ही युद्ध हो पाया होगा। जरा मैं भी, उन मुर्दों के बीच जाकर, उपवास कर सो जाऊँ। और इस प्रकार ब्रह्मचर्यखंडन के घोर पाताक में से मेरी आत्मा को बचा लूँ

युक्तिपूर्वक मुनि उस स्थान पर पहुँच गये। और मुर्दों के बीच चित होकर लेट गये। दूसरे ही क्षण गिदड़ उनके पर एकसाथ टूट पड़े। कालधर्म पाकर वे मुनि अनुत्तर विमान में देव बने।

धन्यवाद है ऐसे मुनिबंधुओं को! ब्रह्मचर्य के अखंड पालकों को।

(२४२) महासती मदालसा

मदालसा राजकुमारी थी।

यौवन उसके शरीर पर लहसने लगा।

एक रोज ऐसी घटना हुई जिसने उसके भावि जीवन-गठन में परिवर्तन ला दिया।

www.yugpradhan.com

अन्तःपुर के पास ही एक सुंदर मकान था। झरोखे में खड़ी मदालसाने, एक मकान के भीतर, अपनी पत्नी को जानवर की तरह पीटते हुए एक पुरुष को देखा! वह स्त्री चिल्ला रही थी; लेकिन उसका पति उसकी परवाह न कर, उनको कलाई से पकड़ कर जोरों की पिटाई कर रहा था।

यह दृश्य सचमुच हृदयविदारक था। मदालसा को संसार की करुणता और नारीजीवन की मजबूरी के दर्शन प्रत्यक्ष हुए।

उसने उसी क्षण, शादी न कर ब्रह्मचारिणी तपस्विनी बने रहने का निर्णय किया। पिता से संमति लेकर, पास के जंगल में कुटिया बनाकर, वहीं अपना जीवन गुजारने लगी।

एक रोज कोई राजा यकायक, उस वन में और उसी कुटिया के पास आ पहुँचा। मदालसा को देखा। वैसे भी राजकुमारी के रूप

में वह लावण्यवती थी ही। उसमें अखड ब्रह्मचर्य और तपस्विनी जीवन का संगम होने से, उसके मुँह पर अनोखी तेजप्रभा फूट पडी थी। राजा उसे देखकर स्तब्ध हो गया। उसने मदालसा के समक्ष शादी का प्रस्ताव रखा।

किसी कर्मफलवश मदालसाने भी उस प्रस्ताव का स्वीकार कर लिया। लेकिन साथ उसने शर्त रखी कि, प्रथम संतान की प्राप्ति के बाद, वह संसारत्याग करेगी। उस समय अगर राजा की ओर से संमति प्राप्त न होगी तो, वह संसार में रहेगी, लेकिन जो संतानें होगी, उनके जीवन–संगठन का उत्तरदायित्व वह अपने हाथों लेगी। उसमें किसी की दखलंदाजी होने न देगी।

राजाने उस की शर्त मंजूर की और गान्धर्वविधि शादी कर ली।

www.yogpadhan.com

समय गुजरने लगा। मदालसा को प्रथम पुत्र की प्राप्ति हुई। राजाने मदालसा को राजमहल के त्याग करने में संमति न दी। परिणाम-स्वरूप वह वहीं रही। कालक्रम से उसे पाँच पुत्र हुए।

तमाम पुत्रों के जीवन का गठन उसने इस खूबी से किया कि सभी ने कौमार्य अवस्था में ही संन्यासधर्म का स्वीकार किया।

छट्ठे पुत्र के जन्म के बाद, राजा की मृत्यु हुई। राजधुरा इस पुत्र को सौंपने के खयाल से मदालसा ने उसे राजा बनने के लिये उपयोगी विद्या सिखायी।

प्रत्येक पुत्र को पालने में सुलाते समय मदालसा बताती कि,– तुम शुद्ध हो, बुद्ध हो, निरंजन हो, संसार की माया से मुक्त हो, इस दुनिया में तुम्हारा कोई नहीं और तुम किसी के नहीं। "शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसि, संसारमायापरिवर्जितोऽसि। न कस्यचित् त्वं न च तेऽस्ति कश्चित्, मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम्।"

कहा जाता है कि—" एक रोज वह बच्चा पालने में भयंकर चिल्ला रहा था। मदालसाने उसे शान्त करने के लिये सारे प्रयत्न किये; लेकिन किसी भी तरह वह शान्त न हुआ। उस समय शायद मदालसा ने कल्पना की कि मौत कहीं निकट तो नहीं!"

इस कल्पना से प्रेरित होकर मदालसा ने उससे कहा—" अरे बच्चे! क्या तू मौत से डर रहा है? लेकिन एक बात तू समझ ले कि मौतसे डरनेवाले को मौत कभी छोडती नहीं। वह तो उसका पीछा करती ही है। अलबत्त, इस दुनिया में जो जो जीव जन्म लेता ही नहीं, मौत उसका कभी पीछा नहीं करता। अतः बेटे। अगर तुझे मौत का भय हो तो बड़ी खुशी की बात है। लेकिन उससे मुक्ति पानेके लिये, तुम्हें जन्म से ही मुक्ति पानेकी साधना करनी होगी।

www.yugpradhan.com

'मृत्योर्बिभेषि किं बाल! सच भीतं म मुञ्चति। अजातं नैव गृह्णाति, कुरु यत्नमजन्मनि।'

मदालसा के इन प्रबोधक वाक्यों से बच्चा चुप हो गया।

छट्ठे पुत्र को राज्यशिक्षा देकर मदालसा ने तैयार कर दिया। युद्धविद्या आदि अनेक विषयों में वह राजकुमार पारंगत हो गया। स्वयं को भी उससे पूर्ण संतोष हुआ। तब उसने राजकुमार से माँ के दिल की भावना बताते हुए कहा—" बेटे! मुझे पुनः कुटिया बनाकर जंगल में एक बार रहना है। मुझे इस संसार में कोई रस कभी पैदा हुआ न था। तुम्हारे पिता के स्थान पर, स्थापित करने के लिये ही, उतना समय मैंने संसार में गुजारा। अब तुम मुझे प्रेम से छुट्टी दे दो।

राजकुमार ने माता की तीव्र भावना को पहचान कर संमति दे दी।

और....सचमुच एक दिन मदालसा चल पडी।

(२४३) पात्रता की कसोटी

किसी भी वस्तु को प्राप्त करने के लिये उसका अधिकारी बनाना जरूरी है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि 'फर्स्ट डीजर्व एन्ड धेन डीजायर' पहले पात्र बने, बाद में प्राप्त करने की इच्छा करें। आज की राजनैतिक, प्रजाकीय, संस्थागत अराजकता के मूल में 'अपात्रों का प्रवेश' ही कारण है।

इस कथा में पात्रता और उसकी मर्यादा सुंदर ढंग से चित्रित है।

एक चित्रकार था। उसे दस साल का लडका था।

चित्रकार ने बड़े बड़े ईनाम पाये थे। उसकी चित्रकला चारों ओर प्रशंसापात्र बन पायी थी।

www.yogpradhan.com

चित्रकार भी अपने पुत्र को अपनी अनमोल कला को विरासत में देना चाहता था। पुत्र भी सहज रूप से चित्रकाम में अभिरुचि रखता था। अतः पिताजी जब चित्रकाम करते तब पास में ही बैठकर, देखा करता। उसकी इस लगन के कारण ही वह बड़ा चित्रकार बनना चाहता था।

कभी कभी चित्रकार अपने पुत्रको अलग अलग प्रकार के चित्र बनाने देता। जब चित्र तैयार कर ले आता तब वह चित्र के बारे में कई सूचनाएं दिया करता था। कटु भाषा में कहे तो वह प्रत्येक चित्र में से कई क्षतियाँ बताता रहता।

पिताजी की सूचनाओं को खयाल में रखकर पुत्र उस चित्र पर पुनः हाथ आजमाकर चित्र की गलतियाँ दूर कर देता।

इस प्रकार आठ आठ साल गुजर गये। पुत्र की उम्र सोलह साल की हो गयी। एक दिन उसने एक चित्र बनाया। अब तो चित्र-

काम में उसने पूरा कौशल्य पा लिया था। उसने एक सुंदर चित्र बनाकर पिताजी को दिखाया।

पुत्र की दृष्टि से वह सर्वांग संपूर्ण था। लेकिन.... पिताजीने इस चित्र में से भी दस क्षतियों निकाली।

आज पुत्र अकुलाया। "पिताजी को घुमाफिरा कर गलतियाँ निकालने की आदत बन पडी है।" लडके ने मन ही मन बड़बड़ाहट की।

उसने पिताजी से कहा—"पिताजी! क्या इस चित्र में इतनी सारी गलतियाँ हैं? मुझे तो ऐसा कुछ महसूस नहीं होता!"

पिताने मन ही मन तय कर लिया कि—"बस, इस बच्चे का विकास आज पूरा हो चुका। जिसे अपनी गलती की बात सुनते ही आवेश पैदा हो या तंगदिली हो पाये, उसकी प्रगति वहीं रूक जाती है।

www.yugpradhan.com

पिता ने बेटे से कहा—"ठीक है बेटा? तू जो बताए वही सच है। शायद गलतियाँ देखने की ही आदत बन पड़ी हो तो आश्चर्य नहीं है।"

ऐसा पुत्र भी नगरभर में तो उत्तम चित्रकार के रूप में तो प्रख्यात हुआ था। एक दिन नगर के राजाने उसे बुलाया। दूसरे भी अनेक राज्यों के समर्थ चित्रकारों को उस राजा ने बुलाये थे। राजा ने उन तमाम चित्रकारों से अपनी हूबहू प्रतिकृति बनाने का आदेश दिया। श्रेष्ठ चित्र तैयार करनेवाले चित्रकार को श्रेष्ठ पुरस्कार दिया जायेगा-इस बात की घोषणा भी की गयी।

लेकिन राजा की प्रतिकृति तैयार करने का काम आसान न था। क्योंकि राजा आँख का काना था।

सभी चित्रकार असमंजस में पड़े। वह चित्रकार भी उलझ गया। घर आकर पिताजी से अपनी आकर उलझन बतायी। उस समय मौका देखकर पिता ने कहा—"बेटा! अगर मेरी बतायी गलतियों तु मीठी सक्कर समझकर उनका आदर किया करता तो तुम्हारी हालत आज ऐसी न हो पाती। लेकिन एक दिन तुझे मेरी गलतियाँ जहर—सी लगीं। तुम्हारा विकास वही स्थगित हो गया। खैर, जो होना था हो चुका।"

यह बात सुन, लडके को भारी पश्चात्ताप हुआ। उसने पिताजी के चरणों में गिर, क्षमाप्रार्थना की।

पिता ने उससे कहा—"बेटा, देखो, मैं जैसे कहूँ उस ढँग से तुम राजा के चित्र का अंकन करो। राजा काना है, लेकिन शास्त्र-वचन है कि काने को भी काना से संबोधित न करें, न दिखायें। साथ ही काने राजा को दोनों आँखों वाला बताना यथार्थ नहीं है। अतः राजा अश्वारूढ हो, जंगल में शिकार के लिये गये हैं, हिरनों की टोलियों के पीछे उनका घोडा तेज रफ्तार से भागा जा रहा है। ठीक मौके पर राजा अपने तरकस में से बाण निकाल कर, प्रत्यंचा पर लगाकर बाण खींचता है।

"बेटे! इस प्रकार बाण खींचते हुए राजा के चित्र का आलेखन करो। यह सही बात है कि बाण खींचते समय आदमी की एक आँख बंद हो जाती है; क्योंकि उसके सिवा निशान लिया नहीं जा सकता। इस प्रकार राजा के कानापन दीख न पड़ेगा और चित्र सर्वांग संपूर्ण बन पायेगा।"

पिताजी की इस चातुरी को देखकर लड़का तो दंग रह गया। अन्तिम ५—७ वर्षों से उसका विकास स्थगित हो गया था। उसके लिये वह भारी पश्चात्ताप करने लगा।

www.yugpradhan.com

पिताजी की सूचना के अनुसार ही उसने चित्र तैयार किया। राजा ने उसे श्रेष्ठ पुरस्कार दिया।

(२४४) धर्मगुरु की कभी निंदा न करें

(त्रिभुवनपति तीर्थंकर परमात्मा महावीरदेव यानी वर्तमानकालीन जैनों के परम उद्धारक चौबीसवें अन्तिम तीर्थंकर। उस कृपालु के उपर, गोशालक नामक एक ब्राह्मणपुत्र ने अत्याचार गुजारने में कोई कसर उठा न रखा था। लेकेन मृत्यु के अन्तिम दिनों में उसकी आत्मा का परिवर्त्तन हो गया। पश्चात्ताप के अनवरत आँसू बहाकर, भावि में परमात्मपद की प्राप्ति निश्चित कर ली। भगवती सूत्र का यह गोशालक का भावि प्रसंग यहाँ पढे और संकल्प करें कि गुरुनिन्दा रूप काजल से भी कलंकित पाप कभी न करेंगे।)

www.yogdhadhan.com

महाविदेह क्षेत्र की भूमि पर कैवल्य और वीतरागदशा अभी अभी प्राप्त किये हुए एक भगवंत प्रशान्त मुद्रा में बैठे हैं। उन कृपालु के सामने श्रोतावर्ग धर्मदेशना सुनने के लिये सज्ज हो बैठा है।

भगवंतने देशना का प्रारंभ किया।

"हे पुण्यशाली! आज मुझे वीतरागदशा एवं कैवल्य की प्राप्ति हुई है। आप लोगों को मैं अपने पूर्वजन्मों की कथा सुनाऊँगा।"

आज से अनन्त काल पूर्व भरतक्षेत्र में महावीर नामक एक तीर्थंकर हो गये। उस समय मैं भी उसी भारतभूमि पर गोशालक नाम से विद्यमान था। भारी गरीबी का मारा मैं मारा मारा फिरता था। वहाँ महावीर से एक दिन भेंट हो गयी। मैं उनका शिष्य बन गया। उन्हीं के पास से एक रोज मैंने तेजोलेश्या की विद्या प्राप्त की। और दूसरी

जगह से अष्टांग निमित्त की जानकारी पा ली। इतने मात्र से मैं अपने आपको तीर्थंकर मानने–मनाने लगा। यदि कोई कुछ गडबड़ी करें तो मैं तेजोलेश्या से मेरी आँखों में आग पैदा कर मैं उसे उसी समय भस्मीभूत कर देता!

बाद में मैं परमात्मा महावीरदेव से विरुद्ध हो गया। बात बढ़ गयी। यहाँ तक कि एक दिन उनके साथ गालीगलौज कर उनके उपर भी मैंने आग छोडी। लेकिन उस महापुरुष की प्रदिक्षणा कर वह आग लौटकर मेरे ही शरीर में घुस गयी। उसकी भारी दाहपीडा होने लगी। मेरी मृत्यु निकट आ पहुँची। लेकिन मेरे सद्भाग्य से मुझे मेरे किये कुकर्मों का भारी पश्चात्ताप होने लगा।

हे पुण्यशाली जीव, इस पश्चात्ताप के क्षणों में ही मुझे सम्यग्दर्शन हुआ। मरकर मैं बारहवें देवलोग का देवात्मा हुआ।

www.yogpradhan.com

लेकिन उसके बाद, मेरे उस भव के पाप जाग्रत हुए। परिणाम स्वरूप देवात्मा का समय पूरा कर मैं भरतक्षेत्र में विमलवाहन नामक राजा बना। लेकिन आग से मेरी मृत्यु हुई।

वहाँ से सातवें नरक में गया। बस फिर तो तमाम नरकों में और पशुओं की योनि में मेरे जन्म लगातार होते रहे। पुनश्च लाखों बार पशुओं के यावत् एकेन्द्रिय तक के भेदों–स्वरूपों में मेरे जन्म होते रहे। हर जगह मेरी यातना का कोई अन्त न था। अग्नि और शस्त्र, ये ही मेरी मृत्यु के निमित्त बने रहे।

उसके बाद देवलोकादि में उत्तरोत्तर ऊँचे स्थान और मानवभव प्राप्त होते होते आखिर इस भव में महाविदेह क्षेत्र में आ पहुँचा। मैं ने दीक्षा ली और साधना द्वारा घातक कर्मों का विनाश कर वीतरागदशा और कैवल्य प्राप्त किया।

हे भाग्यशाली जीव, तीर्थंकर परमात्मा महावीरदेव की मैंने जो घोर निंदा, द्वेष, अवहेलना और आशातना की, उसके कारण अनन्त समय तक, मेरी आत्मा को, अत्यंत खतरनाक भवभ्रमण की यातना उठानी पड़ी।

इससे मुझे आप लोगों से यही कहना है कि धर्मगुरु की निंदा, आशातना कभी न करें। उनके बारे में अपशब्द कभी न निकालें।"

केवली भगवंत की वाणी सुनकर श्रोतागण स्तब्ध हो उठा। एक भव में की धर्मगुरु की निंदा, कितने भवों तक बरबाद करती रहती हैं ! कितनी भारी यातना उठानी पड़ती है ! यह आप सभीने निर्णय-संकल्प किया कि—"जीवन में दूसरा कोई धर्मकर्म कम हो पाये तो भले, लेकिन स्वप्न में भी हमारे धर्मगुरुओं की निन्दा तो कभी न करेंगे नहीं। वहाँ एक पल भर के लिये ठहरेंगे नहीं।"

अपने संकल्पों की चर्चा करते हुए सभी श्रोता बिखर गये।

(२४५) अमर्याद आत्मविश्वास

जैनशासन के उस समय में सुप्रसिद्ध भगवंत थे। नाम था उनका जीवानंदसूरिजी।

उनकी विद्वत्ता का चारों ओर बोलबाला था। एक बार सौराष्ट्र में विहार करते किसी बोद्धाचार्य ने शास्त्रार्थ करने का आह्वान किया। शर्त ऐसी तय की गयी कि, जो हार जाय वह अपने समस्त अनुयायियों के साथ सौराष्ट्र का त्याग करे।

विजय के अमर्याद आत्मविश्वास के अधीन हो, जैनाचार्य ने उस आह्वान का स्वीकार कर लिया।

शास्त्रार्थ शुरू हुआ। जैनाचार्य पराजित हुए। समस्त जैनसंघ को सौराष्ट्र का त्याग करना पड़ा। इस पराजय का आघात जैनसंघ के लिये तो दुःखद रहा, साथ ही जैनाचार्य के लिए तो असह्य हो उठा। लेकिन अब करे भी क्या?

थोडे समय के बाद वे ही बौद्धाचार्य दक्षिण गुजरात में आये। उन्होंने पुनः आचार्य भगवंत श्रीजीवानंदसूरिजी से शास्त्रार्थ के लिए आमंत्रण दिया। आचार्य भगवंत की निश्रा में समस्त जैनसंघ एकत्र हुआ। पूरी गंभीरता से संघने सोच-विचार किया लेकिन अन्तिम निर्णय हो न पाया।

www.yugpradhan.com

आचार्य भगवंत भी गहन मनोमंथन में डूब गये। पुनः एक बार शास्त्रार्थ का सहारा लेकर, पराजय का कलंक दूर क्यों न कर दूँ? उनका मन सोच ने लगा—"बिना साहस सिद्धि कहाँ?"

सुमसाम वातावरण का भंग करते हुए आचार्य भगवंत ने कहा—"श्रीसंघ चितामुक्त हो जाय। हम उस आह्वान का स्वीकार कर लें। एक बार पराजय मिलने पर श्रीसंघ में खलबली मच गयी है, लेकिन एक बार मुझ पर श्रद्धा धरें। मैं उस आह्वान का स्वीकार कर, पराजय के कलंक को दूर कर देना चाहता हूँ।"

आचार्यदेव के वचनों में आत्मविश्वास कूट कूट भरा था। श्रीसंघ को संमति देने का प्रश्न ही न था। वह तो केवल शासन के हानिलाभ का ही ध्यान रखता है।

और...पुनः शास्त्रार्थ शुरू हुआ। शर्त तय की गयी कि जो हारे वह केवल सौराष्ट्र ही नहीं, गुजरात छोड कर चला जाय।

लेकिन आश्चर्य की बात हुई। जैनाचार्य का पुनः पराजय हुआ।

समस्त संघ के साथ भारी वेदना के साथ जीवानंदसूरिजी महाराज ने गुजरात छोड़ दिया। उनकी व्यथा का कोई ओर–छोर न था। अमर्याद आत्मविश्वास का ही यह दुष्परिणाम था। ऐसा उन्होंने निश्चित रूप से मान लिया।

जैनों का पराजय यानी जैनशास्त्रों के सत्यों का पराजय। जैनों के हृदय में बसी धर्मश्रद्धा के मूल में ही कुठाराघात हुआ।

ऐसी भारी मुसीबत में आचार्यदेव निमित्त बन गये। पराजय का दुःख हल्का होते ही तुरंत आचार्य ने संकल्प किया। लगातार बारह वर्ष तक बौद्धादि शास्त्रों का उन्हों तलस्पर्शी अध्ययन किया। अब थोडी सी क्षति खतरनाक थी, वर्ना समग्र जैन धर्म को भारत में से नाम–शेष होने की नौबत आयी थी। शास्त्रार्थ की पूरी तैयारियों के बाद आचार्य भगवंत श्री जीवानंदसूरिजी ने उसी बौद्धाचार्य को शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया। इस बार शर्त रखी गयी कि जो पराजित हो, अपने समस्त अनुयायिओं के साथ भारत छोडकर चला जाय।

जैनाचार्य दो दो बार पराजित होने के कारण, जैनसंघ के अग्रणी चिंतातुर थे। धर्मश्रद्धालु जैनों को घरगृहस्थी छोडकर भारत में से निकलना पडे इसका दुःख न था, परंतु जैनधर्म को घोर अवहेलना की संभावना से उनके अंतर व्यथित थे। ऐसी स्थिति में शास्त्रार्थ शुरू हुआ। कई दिनों तक चलता रहा। आखिर एक दिन जैनाचार्य विजेता घोषित हुए। प्रतिदिन चिंतित स्थिति में बैठते जैनधर्म के अनुयायियोंने जयघोष के साथ आचार्य की अभिवादना की। जैनाचार्य ने सभी से कहा–"पराजित का जरा भी अपमान, किसी के द्वारा होने न पाये।"

उसी दिन बौद्धधर्म के अनुयायी भारत छोडकर चल गये।

जैनाचार्य श्री जीवानंदसूरिजी महाराज के लिये आज का दिन सुनहला था।

पराजय के दो दो कलंकों को हटा देने का आनंद उनके मुँह पर प्रतिफलित हो रहा था। इस विजय में जीवनसाफल्य भी महसूस कर रहे थे।

आनंदविभोर जैनसंघ को देखकर उनका अन्तःकरण अधिक आनंदमय बन गया था।

(२४६) जब नया इतिहास लिखा जा रहा है

www.yugpradhan.com

(भूतकाल तो हमारा भव्य था ही। अत एव सुवर्णाक्षरों से वह इतिहास लिखा गया है। लेकिन केवल इतिहास पढ़ने से चल नहीं सकता। उसके पढ़ने द्वारा प्रेरणा प्राप्त कर नये इतिहास का सर्जन होना चाहिए। पूर्व के काल के आदर्शों के तेजस्वी-जीवंत प्रतीक भले ही आज के विकराल समय में पैदा न हो; लेकिन उसकी छोटी आवृत्तियाँ तो प्रकट होनी ही चाहिए; अन्यथा नये तेल के अभाव में झगमगाता दीप बुझकर खत्म हो जाय। पुराने तेल पर दीप कब तक निभ सकता है?

यहाँ बारह साल पूर्व बम्बई में बनी बिलकुल सही घटना—केवल नामपरिवर्तन के साथ—दी जा रही है। सचमुच कमाल किया उस संस्कारी बच्चे ने, जिसने मौत के साथ जिंदादीली का खेल बताया है।)

जैन परिवार में जन्म लिया, नौ साल का वह बाल था। नाम था उसका रमेश। उम्र में बच्चा था, लेकिन धर्मसंस्कारों की दृष्टि से वह

सचमुच प्रौढ था। बच्चे के जीवनक्षेत्र में मातापिता ने अद्भुत संस्कारों का सिंचन किया था।

नौ साल की उम्र होते होते तो, उसके धर्मसंस्कार परिपक्व बन गये। पुण्य और पाप की व्याख्याएँ वह समझ पाया था। आत्मा और परमात्मा के तत्त्वों के रहस्यों को वह जान पाया था। मृत्यु के तत्त्वज्ञान को तो वह पूरा पचा गया था। अरे, पापभीरूता और चलते-फिरते पुण्य प्राप्त करने की उसकी लगन तो बिलकुल निराली थी।

लेकिन कर्म के निर्माण हमेशा अकल्प्य रहे हैं। नौ साल की उम्र में ही रमेश की मृत्यु हो चुकी। उसका प्राणपखेरु उड़ चला।

बात ऐसी हुई कि एक दिन घरमें खेलते समय उसे कुछ लग गया। उसकी उसने परवाह न की। परिणामस्वरूप उसमें धर्नुवात हुआ। शरीर टूटने लगा। मातापिता घबरा उठे। तुरंत डाक्टर को बुलाये। डाक्टरने खतरनाक घडियों का अंदाजा लगाकर, बच्चे को तुरंत अस्पताल में भर्ती करा दिया। लेकिन मौका निकल गया था।

४-६ घंटों में तो कई उपाय आजमाये गये। लेकिन सारे व्यर्थ सिद्ध हुए। जिस की पल टूटी उसका कोई उपाय नहीं!

शरीर जोरों से टूटने लगा। बाद में तो सारा शरीर खींचकर सकुचाया हुआ पलँग में उछल-उछल कर गिरने लगा। प्रत्येक उछाल पर रमेश के मुँहमें से 'नमो अरिहंताणं' 'नमो अरिहंताणं' का उच्चार ही अविरत जारी था। डाक्टरों ने मातापिता को आखिरी स्थिति से परिचित कर सावधान कर दिये। अपने पुत्र की मृत्यु को सुधार लेने की भावना से, मातापिताने नवकार मंत्र के जप, 'चत्तारि मंगलं' का पाठ, पुण्यप्रकाश का स्तवन आदि शुरू कर दिये। दूसरी ओर रोग की तीव्रता यकायक बढ़ गयी। उछलने पर इधर-उधर पटकने के कारण

चोट न लगे उससे बचाने के लिये, रूम में चारों ओर बर्फ के टुकडे रखवा दिये। लेकिन बाद में पराकाष्ठा आ गयी। उछलते–गिरते बेटे को देखना मातापिता के लिये असह्य हो उठा। नवकार मंत्र सुनाने के बदले, प्राणप्यारे अपने पुत्र की भयानक स्थिति को देख छाती पीटने लगे। आघातवश माँ तो बेहोश हो गयी। फिर भी प्रत्येक उछाल पर रमेश तो 'नमो अरिहंताणं' ही रटता रहा।

उसी समय रमेश के चाचा आये। रमेश ने कहा–"चाचा मुझे नवकार मन्त्र सुनाये। मातापिता को बाहर ले जाएँ। मुझे नवकार ही सुनना हैं।"

हृदय पत्थर–सा कठोर किये काकाने नवकार मंत्र सुनाना शुरू किया। लेकिन हाय, आधा घंटा पूरा होते होते तो रस्से से बाँधे रमेश ने कहा–"चाचा अब मैं कानों से सुन नहीं पाता। आप ऊँची आवाज से नवकार मंत्र पढ़े।"

चाचा जोर से नवकार मंत्र सुनाने लगे। तब नर्सने कहा–"इस प्रकार अस्पताल में जोरसे न बोलो। बोलना बंध करे।"

चाचाने गुस्से में आकर नर्स को जोर का चाँटा मारकर बाहर निकाल दी। रमेशने सुनने की शक्ति बिलकुल गँवा दी। चाचा को उस बात की जानकारी देते हुए कहा कि–"अब मैं ही बोलूँगा" और रमेशने भारी यातना के बीच, परमात्मा को हाथ जोडजोडकर वंदनाएँ करता रहा और जोर से रटता रहा–"नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं...."

और एक कालक्षण आ पहुँचा। रमेश की वाणी–शक्ति बंध हो गयी। उसकी आँखे फटने लगी।

www.yugnamah.com

लेकिन उस समय भी रमेश अपनी ऊँगलियाँ पर नवकार मंत्र पढ़ता रहा। चाचाने मातापिता को बुला मंगाये। फूट फूट रोती माँने चाचा से कहा—" पुत्र की ऐसी मंगलमय मृत्यु पर, रोधूप करना शोभास्पद नहीं। देखिए, वह नवकार का मंत्रजाप कर रहा है। और उसकी ऊँगलियाँ एक दूसरे पर घुम फिर रही हैं।"

इसी समय रमेश के प्राण चल पड़े। धन्यवाद है ऐसे रमेश को। धन्यवाद है उसके मातापिता को और उसके धर्मसंस्कारों को।

(२४७) अभय बनो : लोकापवाद की परवाह न करें

(अधिक संख्या जिस पक्ष में हो उतने मात्र से उस में शामिल होनेवाले अपवादभीरु (Fear of crowd वृत्तिवाले) होते हैं। जहाँ सत्य हो फिर भी उसके पक्ष में अधिक संख्या न हों, या दो–पाँच ही उस पक्ष में रहे हो तो भी उनके समर्थन में साथ खडे रहे, यही मर्दानगी है। हर बात में हाँ में हाँ मिलाने में कोई पराक्रम नहीं करना होता। धर्मसंस्कृति के रखवाले तो वे ही बन पाये हैं, जो मौत को मुट्ठी में बाँधकर एकाकी मुकाबला करते रहे हैं। इस प्रहसन-कथा में इस रहस्य का आपको परिचय होगा।)

एक राजा था। अंधेर नगरी की कथा के नायक–सा वह था। खुशामतखोरी उसे बेहद प्रिय थी।

एक दिन एक महाधूर्त, उस राजा के पास गया। उसने कहा कि–" मैं वेनिस का व्यापारी हूँ और अद्यतन वस्त्रों का निर्माण करता हूँ। यदि आपको ऐसे वस्त्रों के परिधान का शौक हो तो, मुझे 'आर्डर' दें। शरीर के पूरे कपडों की एक जोडी बनाने में मुझे छ मास होते हैं और उसकी किंमत एक करोड सोनामुहरें होगी।

अद्भुत वस्त्रों के परिधान के लालच में फँसे राजा ने, वस्त्रनिर्माण के लिये आर्डर दिया। वेनिस के व्यापारी को स्वतंत्र मकान दिया गया। उसकी सारी जरूरतें उसके निवास में पहुँचायी जाने लगीं। व्यापारी बाहर निकल कर कुछ गोलमाल न कर पाये उसके लिए उसके मकान की चारों ओर पहरा लगवा दिया। व्यापारी भारी उस्ताद था! उसने उन तमाम बातों को मंजूर कर लीं!

वस्त्र निर्माणकी विधि एकान्त में शुरू हुई। हर चार–छ दिन बाद, व्यापारी मोती, माणिक जवाहिर आदि अति मूल्यवान चीजों को मँगवाता रहा। ऐसी बहुमूल्य चीजों की राख में से ये अद्भुत वस्त्र बनाने थे। सोने के पूरे रस में उन वस्त्रों को धोना था।

www.yugpradhan.com

राजा के हुक्म के कारण खजानची सारी चीजें भेजा करता था। दूसरी ओर व्यापारी ने रात का पहरा देनेवाले चौकीदारों को सुनामुहरें देकर अपने वश में कर लिये। बेचारे गरीब पहरेदारों की हैसियत ही कितनी? परिणाम रूप सारी किंमती चीजों को उठा उठाकर घर भेजने लगा। छ मास पूरे हुए। राजा ने व्यापारी को बुलाया– व्यापारी ने कहा–"वस्त्र तैयार हो गये हैं। कल उसे सुंदर मंजुषा में रखकर राजसभा में उस पेश करूँगा। में अपने हाथों से उसे पहनाऊँगा। लेकिन, मेहरबान, मेरी कला–कारिगीरी के दर्शन सभी नगरजन कर पाये उसके लिये उन्हें राजसभा में उपस्थित रहने का आमंत्रण दें, ऐसी मेरी अभिलाषा है।"

राजा ने वैसा ही किया। दूसरे दिन सैंकडों आमन्त्रित सज्जनों की उपस्थिति में व्यापारी बडे ठाठमाठ के साथ चौदह घोडों से जुडी बगी में मंजुषा रखवा कर राजसभा में लाया।

अद्भुत वस्त्र के दर्शनके लिए सभी की नजरें व्याकुल थीं तब व्यापारी ने सभी से कहा, "पहले मेरी एक बात आप सुन लें। जिससे बाद में कोई गैरसमझ होने न पाये। यह अद्भुत वस्त्र सचमुच ऐसा अद्भुत है कि उसके दर्शन केवल उसी व्यक्ति को होंगे, जिसने जीवन में कभी भी किसी भी प्रकार की चोरी की न हो। जो चोर होगा, वह आँखे फाड-फाड कर देखेगा तो भी दीख न पडेगा।"

इतना कह कर व्यापारीने मंजुषा खोली। कपड़ा बाहर निकालता हो वैसा सभी ने देखा। लेकिन वस्त्र किसी को दीख न पडा। खुद राजा को भी दीख न पड़ा।

बाद में राजा के शरीर पर शिरबंधन आदि एक एक कपडे व्यापारी उतारने लगा और नये पहनाने लगा। सभी को सारी क्रियायें परिधान कराने की स्पष्ट दीख रही थी लेकिन कपडे दिखाई न देते थे। अन्त में राजा के पाजामें को भी उतारा गया और उसके स्थान पर 'अद्भुत' पाजामा पहनाया गया!

कौन बताये कि राजा के शरीर पर से सारे वस्त्र उतार लेने के बाद, एक भी वस्त्र पहनाया दीख नहीं पड़ता। यदि ऐसा कोई भी कहे तो उसे चोर माना जाता। खुद राजा भी इसी भय के मारे, अन्त तक चुप बने रहे।

बाद में व्यापारी की हार्दिक प्रार्थना के कारण अद्भुत वस्त्रधारी राजा का जुलूस नगरभर में निकाला गया। लाखों आदमियों ने एक ही आवाज से ललकारा—"वाह! कैसा अद्भुत वस्त्र है। हमारे राजा कितने सुहाने दीख रहे हैं इन कपडों में! राजा निर्वस्त्र हैं ऐसा कहने की किसी की हिंमत न पड़ती थी।"

www.yugpradhan.com

जुलूस जब भर बाजार में आया तब टोली में एक पुरुष खड़ा था। उसने अपने पाँच साल के बच्चे को उठाया था। वह बच्चा राजा की हालत को देख जोरजोर से चिल्ला ने लगा—" बापूजी, बापूजी, राजा तो नंगे है !"

ये शब्द सुनते ही राजा को अपनी बेढंगी स्थिति का ख्याल हो गया। तुरंत सवारी राजमहल की ओर भगायी। दौडते हुए राजा अपने महल मे घुस गये।

भण्डा फूट गया। पोल खुल गयी। व्यापारी को फाँसी की सजा दी गयी। एक बच्चे की हिंमत की प्रशंसा चारों ओर होने लगी।

www.yugpadham.com

(२४८) अंग्रेज गोरों की घातकता

जब अंग्रेजों का भारत पर सीधा शासन जारी था, उस जमाने की यह बात है। क्या पता कितनी बार ऐसे रक्तांजित हाथों से वे कलंकित होते रहे हैं।

यूरप के देश दूसरे विश्वयुद्ध की आग में भस्मीभूत हुए थे। अंग्रेजों को विशाल सैन्य की जरूरत महसूस हुई। हिन्दुस्तान के हजारों सैनिको को युद्धमैदान में उतारे गये।

युद्ध के उस विराट खंड के एक कोने में एक घटना घटी।

छोटे से मानवहृदय में दबे—दर्द की यह कथा थी।

बात ऐसी हुई कि हिन्दुस्तानी सैनिक पर वतन से उसकी माता की चिट्ठी आयी। उसमें लिखा था कि—' मेरी शारीरिक स्थिति दिनों-दिन गिरती जा रही है। प्रभुकृपा से सब ठीक हो जायेगा। तुम जरा भी चिंता न करना।' ये शब्द सुनकर उस जवान को माता के अन्तिम

दर्शन कर लेने की तीव्र अभिलाषा हुई। चिट्ठी छोडकर सीधा अपने चीफ-अफसर के पास पहुँचा। उसने सारी बातें पेश कर थोडे दिनों के लिए स्वदेश जाने की छुट्टी माँगी।

लेकिन कमनसीबी के मारे उसे छुट्टी न मिली। माँ के अन्तिम दर्शन के लिये तड़पता वह जवान व्याकुल हो उठा। दिन गुजरने लगे और माँ की याद भड़कती रही।

सैनिको में दूसरे भी कई हिन्दुस्तानी थे। उनमें एक पंडितजी थे। अध्यात्म विद्याओं के वे जानकार थे। उस जवान को व्यग्र-बेचैन देखकर वे उसके हमदर्द बने। सारी बातों का पता लगाया। पंडित सैनिकने जवान से कहा—"तुम चिंता न करो। यहाँ बैठे बैठे ही मैं माँ के दर्शन करा दूंगा!"

www.yugpradhan.com

और सचमुच एक अरीसा सामने रखकर मंत्रजप द्वारा उसने अरीसे में मृत्युशय्या पर लेटी माँ के दर्शन कराये। जवान को पूरा संतोष हुआ। वह आनंदविभोर हो उठा।

बेचैन जवान को यकायक प्रफुल्लित देखकर चीफ अफसरने सारी बातें सुनी और चकित हो गया। उसने उसी रात पंडित-सैनिक को बुलवाकर सारी बातें समझ ली। अन्त में कूड कपटवाले गोरेने पंडित से पूछा—'ऐसी अध्यात्म विद्याओं के जानकार हिन्दुस्तान में कितने होंगे? तुम मुझे उसके पूरे पते दे दो, तो उन सभी का दिल्ली में एक संमान समारंभ आयोजित किया जाय। मैं वाइसराय से प्रार्थना करूँगा।'

भोलेपन में उस पंडितसैनिक ने छत्तीस नाम-पते दिये। युद्ध पूरा होने के बाद, दिल्ही में उन तमाम छत्तीसों को संमान के बहाने आमंत्रण देकर बुलाये गये।

सभी यथासमय आ पहुँचे। संमान–सभा शुरू हुई। सभीने अपने चमत्कारों के रहस्यों का पूरा विवरण दिया। उसका प्रयोग भी दिखाते रहे। अन्त में भावपूर्ण संमान के उपलक्ष्य में सभी से किंमती भेंटे पेश की गयी। संध्या होने पर सभी को नौकाविहार के लिये ले जाने का प्रबंध किया गया।

सभी को होडी में बैठाये गये। घंटे–दो घंटे तक नदी में मौज–मजा कर जब वे वापस लौटे उसी समय वह होडी यमुना में उलट गयी। मंत्रशक्ति के साधक सभी नदी के गहरे पानी में एकसाथ डूब मरे। थोडी ही देर में उनकी लाशें नदी की सतह पर एक एक कर उपर ऊठ आयी। असाधारण प्रतिभाशाली छत्तीस व्यक्तियों को आयोजन पूर्वक मौत के घाट उतार दी गयी।

www.yugpradhan.com

उन गोरों को इसु के उपदिष्ट शब्द सुनाई न देते होंगे कि– "कोई तुम्हें चपेट मारे तो तुम उसके सामने दूसरा गाल धर देना।"

हाय रे क्रूरता ! बिनगोरे और बिनईसाइ सभी को विनाश करने के संकल्प के साथ नाचनेवाली डाईन !

(२४९) नकल में भी गौरवशालिता और असल में बरबादी !

(नट लोग तरह तरह की वेशभूषा धारण कर नाटक किया करते हैं। और लोगों का मनोरंजन कर पेट–गुजारा करते रहते हैं। यही उनकी रोजी–रोटी होती है।

यहाँ ऐसे अनोखे नटकी सत्यकथा है। जिसे पढ़ते ही आप दंग रह जाओगे। इस नटने नकली वेशभूषा धारण कर भी वेश के असली स्वरूप को व्यक्त–अभिनीत किया और अपना जीवन खत्म कर दिया।

यदि नकल में इतनी गौरवशालिता पैदा कर सके तो अपने को 'सही' बतलानेवाले मनुष्यों के गौरव की तो बात ही क्या करें ? लेकिन दुःख की बात यह है कि, उन तथाकथित असलों का गौरव ही नष्ट हो चुका हैं; फिर प्रश्न ही कहाँ रहा !)

एक छोटा सा गाँव था । उस गाँव के ठाकुर थे गुलाबसिंह बापू । छोटे से गाँव की भोलीभाली प्रजा के मनोरंजन के लिये, बापू कभी कभी नटों को भी बुलाते ।

एक रोज नटों की एक मंडली बापू के गाँव में आयी । रात के समय भवाई का कार्यक्रम रखा गया । नटों के मुखिये ने बापू से आग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि—" आप अवश्य भवाई देखने पधारें । "

www.yogpradhan.com

आमंत्रण का स्वीकार कर बापू यथासमय रात के समय भवाई देखने उपस्थिति हुए ।

रात जमती रही । गाँव के विशाल चौक में इकट्ठे हुए लोगों के समक्ष एक एक से बढ़े चढ़े भवाई के वेश पेश किये ।

मुखिये ने कई वेश अभिनीत किये । बापू तो फूले न समाये । मुखिया बापू के पाँवों में जा कर प्रणाम करने लगा । उस समय बापू ने उस से कहा—तूने कई वेश बताये, लेकिन अब सिंह के वेश का अभिनय करो । मुझे खास देखना है । "

बापू को सलाम कर, मुखिया नेपथ्य में चला गया । थोडी ही देर में, हूबहू सिंह बन कर गर्जना करता हुआ और पूँछ उछालता हुआ, सर धुनाता मंच पर आकर, ठीक बीच में बैठ गया । चारों ओर आँखें चकराने लगा ।

पलभर के लिये तो प्रेक्षक घबरा उठे । छोटे बच्चों और स्त्रियों ने

तो चीख–पुकारें शुरू कर दी; लेकिन बाद में सभी स्वस्थ बनकर सिंह के दर्शन करने लगे।

उस समय सिंह के पास में ही बापू का इकलौता लडका बैठा था। उसे कुतूहल पैदा हुआ और सिंह के पास जा कर उसका पूँछ को जोर से खींची।

और एक कमनसीब घटना घटी। एक ही क्षण में भयंकर गर्जना करते हुए सिंह ने उछल कर उस बच्चे को उठाया और वहीं देखते ही देखते उसे चीर फाड़ा।

सारी सभा में सन्नाटा फैल गया। हाय, यह क्या हो गया! बापू तो सन्न रह गये। थोडी ही देर में वे स्वस्थ हो गये। नट के मुखिये को बाद में पता चला कि सिंह की वेशभूषा में सज्ज हो कर उस ने क्या कर डाला!

www.yugpradhan.com

वेश उतार फेंक दौड़ता वह बापू के पास आया और भारी रोधूप की। क्षमाप्रार्थना की और मंडली को बिदा देने की छुट्टी माँगी!

लेकिन बापू अब वैर का बदला लेने का पूरा आयोजन कर बैठे थे। किसी को भी उस योजना का जरा भी पता न चले, उतनी गंभीरता के साथ बापू ने मुखी से कहा–"जिस समय जो होना है, वह होता ही है। मेरे पुत्र की मौत से तुम जरा भी व्यथित न हो। अब कल सारा दिन तुम हमारे यहाँ पूरा आराम करो। बाद में कल रात फिर एक भवाई का वेश कर बाद चले जाना। कौन–सा भवाई वेश करना होगा, वह मै कल रात को ही तुम्हें सूचित करूँगा।"

भोलेभाले मुखिया ने बापू की बातों का स्वीकार कर लिया। लेकिन उसका दिल, घटी हुई घटना से भारी व्यथित था।

दूसरे दिन रात, बापूने मुखी से सती स्त्री का वेश अभिनीत करने को कहा–" नेपथ्य में जा कर मुखियाने पति के साथ चिता में जल मरने के लिये कटिबद्ध हुई रणचंडिका–सी स्त्री का वेश धरा और मंच पर आ पहुँचा।

आगे मुर्दा उठाकर पुरुष चले जा रहे है। " राम बोलो भाई राम...." सभी तालबद्ध रूप से बोल रहे हैं। पीछे सती होने के लिये तत्पर स्त्री चली आ रही है।

थोडी ही देर चंदनकाष्ट की चिता तैयार की गयी। घी के कई डिब्बे उँडेले गये। चिता चारों ओर से धधक उठी।

प्रेक्षकों ने चित्कार किया। ठाकुरके षड्यंत्र का लोगों को अंदाजा आ गया, लेकिन उसके लिये प्रेक्षकवर्ग कुछ कर पाये वहाँ तो मुखिया (सती स्त्री) जलती चिता पर चढ़ गया और थोडी ही देर में जल कर भस्मीभूत हो गया।

सभी रो रहे थे। लेकिन उस समय भी बापू तो मूँछों पर ताव देते हुए हँस रहे थे।

(२५०) धर्म में भी अधर्म

एक शहर में जैनाचार्य ने चातुर्मास किया। उस चातुर्मास के पर्व दिनों में, बड़ी तादाद में अन्य तपश्चर्याएँ भी हुई। जैनाचार्य को भी अपने चातुर्मास की सफलता देखने मिली। दैनिक प्रवचनों का भारी प्रभाव उन्होंने उस तपश्चर्या में देखा।

विशेषकर कई युवा बहनोंने उग्र तपश्चर्या की थी। यह विशेष आनंद की बात थी।

जैनाचार्य ने अपने हृदय की इस खुशी की बात को, उस गाँव के मुखिया के समक्ष व्यक्त करते हुए कहा कि—मेरे प्रवचनों का भारी प्रभाव बहनों पर अधिक हुआ, जो विक्रमरूप तपश्चर्या हो पायी।"

गंभीर मुख बनाकर अनुभवी भक्तने जैनाचार्य से कहा—"गुरुदेव! आप ऐसे भ्रम में न रहें। सही बात ऐसी है कि हमारे गाँव में ऐसा रिवाज है कि, नयी शादीशुदा बहू—नवोढा, जब पहली बार आठ दिनों के उपवास की तपश्चर्या करे तब, उसे खुशी के रूप में सगे, स्वजन, साहेलियाँ आदि की ओर से बहुमूल्यवान साडियाँ भेंट की जाती हैं। इस साल शादियाँ अधिक होने के कारण, किंमती साडियाँ प्राप्त करने के लिये, हमारे गाँव की कई बहुओंने यह तपश्चर्या की है। जैनाचार्य की तो धिग्घी ही बंद हो गयी।

www.yugpradhan.com

(२५१) दर्शन : हमारे भीतर; आपके बाहर

एक दिन की बात है। स्वामी विवेकानंद के पास चार अंग्रेज भक्त आये।

आध्यात्मिक चर्चा करते करते, बीचमें ही एक अंग्रेजने, स्वामीजी से उनके गुरु के दर्शन कराने की नम्र प्रार्थना की।

स्वामीजीने एक दिशा में अंगुलीनिर्देश करते हुए कहा—"मठ के सामनेवाले अहाते में जाएँ। वहाँ आपको मेरे गुरुजी के दर्शन होंगे।"

अंग्रेज उस ओर जाने लगे। रामकृष्ण परमहंस उस अहाते में बैठे ही थे। लेकिन उनके बाहरी आकार को (हट्टियल, फूहड ढँग से कपडे लपेटे) देखकर, उन्हें मंदिर का कोई नौकर समझकर, अंग्रेज लोग आगे बढ़ गये। वहाँ किसीके न मिलने पर, सभी स्वामीजी के पास वापस लौट आये।

उसी समय उस नौकर-से दीखते आदमी को साष्टांग दंडवत् प्रणाम करते हुए स्वामीजी को उन्होंने देखे।

यह देखते ही कई अंग्रेज तो स्तब्ध रह गये। कुछ शरमिंदा भी हुए। उन्होंने स्वामीजी से पूछा, "अरे, ये ही आपके गुरु हैं?"

सर हिलाकर संमति देते हुए स्वामीजी ने कहा—"तुम्हारी और हमारी संस्कृति में यही बड़ा फर्क है कि तुम लोग बाहरी दर्शन किया करते हो; जब कि हम भारतीय भीतरी दर्शन करते हैं।"

(२५२) मन में लदा जहर है!

एक बड़ा खेत था। बड़ी बड़ी घास की ढेरियाँ वहाँ चारो ओर लदी हुई हैं। इस ढेरी में एक साँप और चूहा रहते थे।

सामान्यतया साप की खुराक चूहे होती हैं। लेकिन यहाँ तो आश्चर्य दीखने मिला कि साँप और चूहा के बीच दोस्ती है।

एक रोज किसान किसी कार्यवश उसी घास की गंजी के पास गया। हाथ डालते ही साँपने उसे काट लिया। लेकिन उसी समय उस ढेरीमें से चूहा निकल आया। अतः किसानने चूहेने काटा है ऐसी कल्पना कर ली। अतः उसके मन में किसी प्रकार की घबराहट पैदा न हुई।

थोडे दिनों के बाद, किसान पुनः उसी ढेरी के पास आया। उस दिन उसे चूहाने काटा; लेकिन उसी समय साँप बाहर निकला। इससे 'उसे साँपने काट खाया' ऐसी तीव्र भ्रमणा मनमें पैदा हो उठी। घबडाकर जोर से चिल्लाने लगा। सुनकर लोग वहाँ दौड आये।

बेचारा किसान! उसी रात मर चूका।

साँप के काटने से जीवित रहा लेकिन चूहे के काटने पर मर गया।

www.yogpradhan.com

नहीं, चूहेने उसे नहीं मारा; लेकिन उसकी मौत हुई मन पर लदे हुए भय के जहर से।

(२५३) लोचनदास

अपनी भावि पत्नी के साथ शादी करने के लिये लोचनदास गाँव आ रहा था।

भारी गरीबी के कारण, बडी धामधूम से शादी करे ऐसी स्थिति उसकी न थी।

गाँव की सरहद पर आकर लोचनदास ने एक पनहारी कुमारिका से पूछा—" अरी बहन, अमुक भाई का घर कहाँ आया ? " यह वही कन्या थी, जिसकी आज शाम लोचनदास के साथ शादी होनेवाली थी।

www.yugpradhan.com

लोचनदास को उसने अंगुलीनिर्देश कर, उस घर का रास्ता बताया।

एकदूसरे को कभी देखे हुए न होनेके कारण, कोई अन्योन्य को पहचान न सका। (वह शादी से पहले का डेटींग आदिका अधम जमाना थोडे ही था !)

यथासमय हस्तमेलाप किया गया। रात उतर आयी। शयनखंड में दोनों की भेंट हुई। एक दूसरे से नजर मिलते ही दोनों चकित रह गये। वह कूएँ का थाला, 'बहन' संबोधन से बुलाना, सारी बातें यकायक मानसपट पर उभर आयीं।

शरमाई नवोढा ने निःस्तब्ध मौन तोड़ा। उसने लोचनदास से कहा—" आज आपने मुझे 'बहन' नाम से संबोधित की थी। तो आज से मैं आपकी बहन बनी रहूँगी। आप दूसरी कन्या के साथ शादी

कर संसारसुख लूटें। लेकिन मेरी एक नम्र प्रार्थना है कि मुझे जीवनभर आपकी सेवा करने का मौका दे। मैं सेवाभूखी हूँ, वासना-भूखी नहीं।"

आँखों में आँसु के साथ लोचनने कहा—"तुम्हारे इस बलिदान पर दूसरी कन्या के साथ शादी कर, कलंक लगाऊँ क्या? नहीं, हम हमेशा के साथी रहेंगे! सगे भाई—बहन के रूपमें।"

(२५४) इसीको जड़ता कहते हैं।

किसी गाँव में सेठने नौकर रखा था। दिलका बड़ा भोलाभाला लेकिन बुद्धि का लठ्ठ था।

www.yugpradhan.com

एक दिन सेठने उसे तरकारी खरीद लाने को कहा। बाजार में जाकर वह तरकारी खरीद लाया। केवल भाजी देख सेठ गुस्सेमें आ गये और नौकर से बोले—"अरे बेवकूफ! भाजी के साथ हरि धनिया तो चाहिए ही। हम न मँगवाये तो भी तुम्हें समझ लेना चाहिए। दो दो बार बाजार के फेरे न खाकर एकसाथ खरीद लाना सीखो।"

नौकरने सेठ से प्रणाम कर कहा—"अब से सारे काम एकसाथ करता रहूँगा।"

एक दिन सेठ बीमार हुए। वैद्य को बुलाये। उन्होंने कुछ दवाएँ लिखा दीं। वैद्य के चले जाने के बाद सेठने नौकर से कहा—"लो, इतनी दवाइयाँ ले आओ।" नमस्कार कर नौकर बाजार में गया। अकेली दवाइयाँ ले जाने पर सेठ की उलाहने का डर बना रहा था। "सारा कामकाज एकसाथ पूरा कर लेना सीखो।" ऐसी सेठजी की सूचना थी।

अतः दवाई के साथ साथ बीमार सेठ गुजर जाय तो तन्निमित्त

स्मशानयात्रा की सामग्री भी उसने बाजार से खरीद ली। रास्ते में जाते समय नौकर के हाथों में स्मशानयात्रा की सामग्री देखकर लोगों ने अंदाजा कर लिया कि–" सेठ बीमार थे, वे गुजर गये " और तुरंत सब रोधूप करते हुए सेठके घर पहुँचे। नौकर भी घर आ पहुँचा। सेठजी तो जिंदा सोये हुए थे। छानबीन करने पर पता चला और भँडा फूट गया। सभी ठहाके लगा लगाकर हँस पडे। ऐसे हँसे कि बात मत पूछो !

(२५५) किसके बोध से प्रभावित हो....?

कहा जाता है कि किसी राजा को व्यासजी भागवत पढ़ाते थे। उसमें एक दिन व्यासजीने राजा से कहा कि–" जनमेजय को शुकदेव ने आठ ही दिनों में भागवत पढ़ाया और जनमेजय का कल्याण हो गया ! "

www.yogpradhan.com

राजा ने व्यासजी से पूछा–" तो कई महिनों से मैं आप से भागवत सुन रहा हूँ। फिर भी मेरा कल्याण क्यों हो नहीं रहा ?"

सोच कर प्रत्युत्तर देने का वादा कर व्यासजी घर गये। अपने बेटे से सारा हाल सुनाया। बेटे ने उत्तर खोज निकाला और दूसरे दिन वह व्यासजी के साथ राजसभा में गया।

राजा ने जवाब माँगा तब व्यासजी के लडके ने, व्यासजी और राजा को एक एक स्तंभ के साथ जकडकर बाँध दिये।

उसके बाद उसने राजा से पूछा कि–" मेरे पिताजी, तुम्हें अभी छुडा सकते हैं क्या ? "

राजा ने इन्कार करते हुए कहा–" तुम्हारे पिताजी बंधन में हैं। वे कैसे मुझे छुडा सकते हैं ? "

बेटे कहा कि–"बस, वही आप के प्रश्न का उत्तर हैं कि "व्यासजी वर्षों तक भागवत सुनाये तो भी वे तुम्हें शुकदेव की तरह छुडा सकते नहीं !"

(२५६) धर्महीन परिवार की कैसी बेहाली !

(नोंध : जिस परिवार में धर्म नहीं वहाँ कैसी अराजकता, अव्यवस्था पैदा होती है, उसे रोचक रूप से समझना हो तो, आप को यह प्रसंगकथा पढ़नी होगी। जैनशास्त्र में दी गयी महेश्वरदत्त की यह धर्मकथा, आज के बुद्धिजीवी वर्ग को (जो धर्म के नियमों का त्याग कर चुका है) बहुत कुछ समझा देती है कि–"यदि इस लोग के कौटुंबिक सुख, शान्ति और व्यवस्था का मजा उठाना है तो भी प्रत्येक परिवार में धर्मतत्त्व को अवश्य स्थान दिया जाय।

वर्तमानकालिक उच्छृंखल मनमौजी युग में इस कथा से प्राप्त बोध उपयुक्त होगा।)

वह सारा परिवार नास्तिक था। कुटुंब का मुखिया ही जब नास्तिक हो, वहाँ और किस बात की अपेक्षा की जा सके ?

मुखिया–पिताजी की मृत्यु हुई। बेचारा, अभागा अपने पापी कर्मों के फलस्वरूप, मृत्यु के बाद उसी गाँव में भैंसे के रूप में जन्म धारण किया।

थोडे समय के बाद माता की मृत्यु हुई। बेचारी मर कर अपने ही अहाते में कुतिया के पेट जन्म धारण कर पैदा हुई।

सास–ससुर का थोडा भी प्रभुत्व था, वह छूट जाने पर पुत्रवधू गाँगुली निरंकुश बनी। वैसे भी वह पहले से नास्तिक तो थी ही। ईश्वर या परलोक का कोई डर–भय उसे न था। पाप जैसी चीज को

वह मान्य ही नहीं रखती थी। उपरान्त बड़े–बूढों ने बिदा ले ली। उसकी तीव्र कामवासना के कारण वह व्यभिचार के मार्ग पर जा पहुँची। परपुरुष से समागम, यह उसकी आदत बन पड़ी।

एक रोज वह पापाचार के समय ही पकडा गयी। उसके पति महेश्वरदत्त ने अपनी आँखों के सामने उसे परपुरुष के साथ, शय्या में बेढंगी हालत में सोयी देखी। इस कुत्सित दृश्य को देखते ही वह क्रोधान्ध बन उसकी ओर धँसा। परपुरुष भागने लगा, लेकिन महेश्वरदत्त से फैंकी तलवार के प्रहार से वह घायल होकर गिर पड़ा।

अपने अनाचार के पश्चात्ताप की शुभचिंतन में ही उसके प्राण चल बसे।

लेकिन आश्चर्य तो यह था कि, उसी समय उसी गांगुली के उदर में वह गर्भरूप में अवतरित हुआ। अपने में ही अपना निजी प्रसव! हाय रे कर्मों की विचित्रता!

यथासमय गाँगुली को प्रसूति हुई। पुत्रजन्म हुआ। उस पुत्र के पिता के रूप में अपने को समझता महेश्वरदत्त, बच्चे पर भारी स्नेह-वर्षा कर, उसका लालन–पालन करने लगा।

एक दिन की बात है। पिता की मृत्युतिथि का दिन था। तन्नि-मित्त, महेश्वरदत्त उसी गाँव में पिता की जो आत्मा भैंसे के रूप में अवतरित हुई थी, उसे खरीदकर पकड़ लाया। उसे खत्म कर उसके माँस में से भोजन पकाया।

वह भोजन करने बैठा तब उसका जारपुत्र उसकी गोद में बैठा हुआ था। वह कुतिया थोडी दूर बैठी थी। महेश्वरदत्त माँसभोजन करने लगा। पुत्र को भी माँस खिलाने लगा और थोडे बहुत टूकडे कुतिया की ओर भी फैंकता रहा।

www.yugpradhan.com

उसी समय यकायक कोई दो जैन मुनिराज वहाँ भिक्षानिमित्त आ पधारें। लेकिन माँसकी गंध परखते ही द्वार पर ही रूक गये। उपरान्त ज्ञानबल से महेश्वरदत्त, कुतिया, जारपुत्र, भैंसा आदि की परिस्थित जानकर, वे निराश हो वापस लौट गये।

भोजन छोड, महेश्वरदत्त मुनियों के पीछे भागा। निःश्वासों का कारण पूछने पर मुनियों ने सारी बातें सही रूप में बतला दी।

और महेश्वर के दिल में भारी खलबली मच गयी।

उस का हृदय व्यथित हो कहने लगा—"कर्मों की कैसी अनोखी विषमता है और हमारा परिवार भी किस हद तक पापी, नास्तिक बना रहा कि....

"मैं माँसाहारी बना! मेरे पिताजी भैंसा बने। मेरी माँ कुतिया बने! उसी भैंसे का भोजन! मेरा लाडला बेटा जार का पुत्र! पिता के माँस का मैं भक्षक बनूँ! वह जारपुत्र भी भक्षक बने! उसकी हड्डियों को मेरी कुतिया—माँ चाटती फिरे! मैं जारपुत्र से प्यार करूँ! अरे भगवन्! क्या हो गया यह सब?"

मुनिवरों ने महेश्वरदत्त से संसार के भीषण स्वरूप का परिचय कराया। मुनिवरों की देशना उसके दिल पर गहरी चोट कर गयी।

महेश्वरदत्तने उसी धर्ममार्ग पर प्रयाण किया।

(२५७) सुज्ञेषु किं बहुना? चक्रवर्ती सनत्कुमार!

(नोंध: कई आत्माएँ ऐसी होती हैं, जिन के पर नायग्रा के जलप्रपात जैसे संतों के बोध का धारा—प्रवाह किया जाय तो भी, उनके पर लेश मात्र असर होने न पाये। ऐसे आदमियों के लिये "मगशेलिया पाषाण" का प्रयोग किया जाता है।

लेकिन इस कथा में तो भोगवैभव के शिखर पर बैठे ऐसे एक राजा की बात आपको पढ़ने मिलेगी, जिसे सचमुच ईर्ष्याजनक रूप प्राप्त हुआ था, लेकिन जब उस अभिमान के चूरे कर दे, ऐसे दो ही वाक्य उस पुण्यात्मा ने सुन लिये और दूसरे ही क्षण उसने वनमार्ग का आश्रय लिया, सर्व भोग–सुख का त्याग किया। महाभिनिष्क्रमण के यज्ञ का आरंभ किया।

सभी स्वजन, स्नेहीजन और मित्रवर्ग आदि ने भारी रोधूप–चीख पुकार मचा दी; लेकिन वह वापस न लौटा। राजा राजर्षि बन पाये। उस सुलभबोधि आत्मा की यह अनूठी कथा अब पढ़ें।)

'अहाहा! कैसा अद्वितीय रूप! अनवरत लावण्य की ही मानों वर्षा हो रही है इस राजा के प्रत्येक रोम से!' ब्राह्मण का रूप धारण कर, मर्त्यलोक की धरती पर आये विजय और वैजयंत नामक दो देवात्माओं के चक्रवर्ती सनत्कुमार का रूप देखकर सभी के मुँह से ये ही शब्द फूट पडते थे।

देवों के राजा इन्द्र ने सनत्कुमार के अनुपम रूपलावण्य की एक रोज भारी प्रशंसा की। उस की चौकसी के लिये ये दो देवात्माएँ पृथ्वी पर आ पहुँची। जब वे सनत्कुमार के पास गये, तब वे स्नान करने की तैयारी में थे। खुले बदन वे बैठे थे, उन के शरीर न थी आभूषणों की शोभा और न थे चमक–दमकवाले क़िमती वस्त्र!

ऐसी स्थित में भी उनके रूप के निखार को देखकर वे देवात्मा तो स्तब्ध रह गये।

चक्री सनत् ने देवात्माओं के पास से सही बात को जानकर हँसते हुए, कहा–"ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुम्हें मेरे सही रूप को देखने की

यह घडी नहीं है। जब मैं बन–ठन कर राजसभा में सिंहासन पर आ बैठूँ तब आप लोग मेरे देहसौन्दर्य के दर्शन करना !"

सनत् चक्री के मुख पर इस समय रूपके खतरनाक गर्व का दर्शन स्पष्ट रूप से हो रहा था।

सूचित समय पर देवात्माओं ने चक्री के दर्शन किये। चक्री, उन विप्रों के मुँह पर किसी अनोखे भाव के दर्शन की अपेक्षा रख रहे थे। लेकिन बात कुछ और ही रही। यकायक दोनों विप्रों के मुँह से दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा।

सनत्कुमार इस अप्रत्याशित निःश्वास से स्तब्ध रह गये। विप्रों से उसका कारण पूछा। विप्रोंने बताया–" राजेश्वर, स्नान के समय जो रूपनिखार नजर आया था, वह इस समय दुर्लभ है। आप की देह में भयंकर कुरूपता पैदा करनेवाले महाव्याधि, इसी समय उत्पन्न हुए जा रहे है।"

अपने बात की प्रमाणभूतता के लिये, विप्रों ने उसी समय देव-स्वरूप प्रकट किया।

थोडे ही क्षणों में सनत्कुमार की आँख खुली। अपने देहमें महारोगों की उत्पत्ति होने का पता चला। और....एक ही पल में पुण्योदय के बल पर, सांसारिक भोग–सुखों की क्षणभंगुरता का पता चला। " संसार सुखमय हो तो भी निःसार है " ऐसा सोचकर तुरंत ही, उन्होंने राजमहल का त्यागकर दीक्षामार्ग पर प्रयाण किया।

उनके पीछे लाखों लोग, अंतःपुर, मंत्रीमंडल, स्वजन, नगरजन आदि रोते बिलखते चले जा रहे थे–" राजेश्वर, वापस लौटे....वापस फिरें....इतनी सी बात पर सर्वसंगत्याग के कठोर मार्ग का आश्रय

न लें।" सभी की एक ही पुकार थी। लेकिन यह तथाकथित विराग थोड़ा ही था!

राजवी सनत् 'राजर्षि सनत्' कहलाये।

सातसौ वर्ष पर्यन्त, सोलह सोलह भयानक रोगों की पीडा को, चित्त की पूरी प्रसन्नता के साथ सह लिया करो।

परिणामस्वरूप उनके शरीर के पीक, मूत्र, श्लेष्म आदि औषधि-रूप बन गये। फिर भी उनका उपयोग कर, उन रोगों को निर्मूल करने को कल्पना भी उनके दिमाग में आ न पायी थी।

उनकी सहनशक्ति की असाधारण ताकत की सराहना देवों के राजा के पास से सुनकर, उन्हीं दो देवात्माओं ने वैद्य का स्वरूप धारण कर, दवाइयों की गठरियाँ कंधे पर उठाकर, राजर्षि के पास आये-"आज्ञा दें तो सारे रोगों को निर्मूल कर दें।" वैद्यों ने कहा।

राजर्षि बोले-"मित्रों! सचमुच यदि आप लोग मेरे रोगों को दूर करना चाहते हो तो मेरे १५८ रोग (कर्म की १५८ प्रकृतियाँ) हैं कि मैं जिन्हें जड़मूल से दूर नहीं कर पाया, उन्हें आप दूर कर दें। नहीं तो इस बाह्य सोलह रोग तो मेरे लिये आशीर्वादरूप हैं। उन्हें दूर करने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है। उन्हें दूर करने होते तो मेरे पास उपाय कहाँ नहीं थे? देखिए।"

इतना कहकर, एक ऊँगुली पर थूँक लगाते ही वह सुनहरी बन गयी।

देवस्वरूप प्रगट कर, राजर्षि को नमस्कार कर, बेचारे संन्यासी बने देवात्मा तुरंत ही स्वर्ग में जा पहुँचे।

www.yugpradhan.com

(२५८) जीवदया का कितना भारी गौरव !

पाँच मित्र थे। महान तपस्वी किसी जैन मुनि को कोढ के जंतुओं से पीडित देखें। मुनि निर्मोही थे। देह की उन्हें परवाह न थी। लेकिन उनके सेवाग्रहण करने की इच्छा हुई। मित्रों में एक वैद्य था। एक श्रीमंत भी था। इस दर्द की शान्ति के लिये, लाख सुनामुहरों की रत्नकम्बल की जरूरत थी। महामूल्यवान लक्षपाक तैल भी आवश्यक था।

सारी चीजें इकट्ठी कर ली गयी।

जंतुओं को खत्म करने के लिये, आज की क्रूर एलोपथी को ज्यादा कुछ नहीं चाहिए। लेकिन यह तो आर्यावर्त का महादया के सिद्धान्त पर आधारित आयुर्वेद था। जहाँ तक हो, आयुर्वेद हिंसा से बचता रहता है।

www.yugpradhan.com

सभी मुनिवर के पास आये। प्रथम तो लक्षपाक तैल का मर्दन किया गया। उसकी अनुपम ठंडक से चमडी के कीडे ऊभर आये। उन्हें रत्नकंबल ढाँक कर, उस में ले लिये गये। किसी ताजा मरी हुई गाय के शव पर उस कंबल को छोड देने पर सारे कीडे उस शव में उतर पडे। इस प्रकार सात बार विधि की गयी। क्रमशः सातों धातुओं में से सारे कीडे निकल पाये। सभी शव में घुसकर, अपनी खुराक प्राप्त कर उस में ही मग्न बने रहे।

मुनि पूर्णतया रोगमुक्त हो गये।

कैसी अद्भुत जीवदया ! कीडों को मारे न जायँ। गाय को भी मारकर लायी न जाय। कीडे जिन्दा रहे, उसके लिये; मूल्यवान द्रव्यों का उपयोग करने में किसी को हिचकिचाहट ही नहीं।

कहाँ वर्तमानकालीन मच्छरों चूहों, मेढकों, बन्दरों, मछलियाँ, जानवरों को खत्म कर देनेवाला हिंसक तांडवपूर्ण वायुमंडल और कहाँ उस जमाने का अहिंसक वायुमंडल !

(२५९) सूक्ष्म की शक्ति

(अजैन महाभारत)

पाँडव जुए में हारते हारते द्रौपदी को भी गँवा बैठे। कौरवों की वैरवृत्ति बेहद उग्र थी। अतः द्रौपदी की इज्जत–आबरू लूँटने की कुटिलता तक वे पहुँचे। भरसभा में उसका वस्त्राहरण होने लगा।

उस समय भीम आगबबूला हो उठा। वह हाथ मलने लगा और दाँत पीसने लगा। बार बार वह गदा को छूने लगा, लेकिन वह मजबूर था। युधिष्ठिर के प्रभाव के कारण वह कुछ कर नहीं पाता था।

www.yugpradhan.com

भीम का गुस्सा देखकर, दुर्योधन ने कर्ण से कहा–"यह भीम कुछ गड़बडी करेगा ऐसा दीख पड़ता है। वह हमारे पर बेहद गुस्से हुआ है।"

कर्ण ने कहा–"दुर्योधन ! मुझे जितनी चिंता भीम की ओर से नहीं उससे अधिक अर्जुन की ओर से है। देखो वह दूर बैठा है। कैसा धीट मालूम होता है। चूपचाप हमारी ओर देख रहा है।

भीम की गर्मागर्मी की अपेक्षा, अर्जुन की इस चुप्पी में मुझे छिपे धधकते अग्नि ते दर्शन हो रहे हैं। हमें इस अर्जुन से अधिक सावधान रहना पडेगा, ऐसा मैं महसूस कर रहा हूँ।"

सचमुच कर्ण की बात सही निकली। महाभारत के भीषण संग्राम में अर्जुन ही सभी के लिये खतरनाक बना रहा।

स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म की ताकात कई गुनी बढी–चढी होती है। उसकी शान्ति में भी भारी खलबली छिपी रहती है। उसकी शीतलता में धधकती आग रहती है। उसकी निष्क्रियता में भी प्रचंड सक्रियता बनी रहती है।

(२६०) शील की झाँकी

रामकृष्ण आजीवन ब्रह्मचारी थे। उनके ब्रह्मचर्य की कसौटी करने का माथुरबाबू ने सोचा।

एक रोज रामकृष्ण एकान्त में बैठे हुए थे। दोपहर का समय था। यह मौका देख माथुरबाबू ने रूपवती युवतियों को (वेश्याओं को) रामकृष्ण के पास भेज दीं। खंड में प्रवेश कर उन युवतियों ने तुरंत घर के द्वार बंद कर दिये। और अपनी अठखेलियाँ शुरू कर दीं।

www.yugpraudhan.com

रामकृष्ण ने उनके सामने देखा। उनकी बातें भद्दी मालूम हुई, इतना ही नहीं उनकी काया, उनके स्वरूप में अत्यंत विभत्स मालूम हुई।

रामकृष्ण को उन में माँ के ही दर्शन हुए। और वे भावावेश में आकर पुकार ने–चिल्लाने लगे–"माँ, आनंदमयी माँ... !"

हृदय की गहराइ में से निकले और मातृत्व के निर्दोष स्नेह से भरपूरे इन शब्दों ने उन युवतियों को स्तब्ध बना दीं।

दूसरी ओर रामकृष्ण की आँखों में से माँ के स्मरण के कारण प्रेम की अश्रुधारा बहने लगी।

युवतियाँ भयभीत हो गयी। रामकृष्ण के पाँवों में झुक कर बार बार क्षमाप्रार्थना कर, बिदा हो गयी।

रामकृष्ण की तथाकथित पत्नी शारदामणि को भी रामकृष्ण 'माँ' कहकर ही पुकारते और उनके साथ भी पूर्ण ब्रह्मचर्य का व्यवहार निभाते।

अध्यात्म की प्राथमिक कक्षा में यदि ऐसी परिस्थिति हो तो, उच्च कक्षा के अधिकार की—योग्यता की चर्चा करनेवाले महापुरुष कैसे होंगे, उसकी हम कल्पना तक कर नहीं पाते।

(२६१) साधना चाहती है हृदय को; न कि दिमाग को।

नवजात शिशु की कुंडली देखकर राजज्योतिषी चकित रह गये। सामने उपस्थित बालक के पिता—राजा से, वे बच्चे की अद्भुत यश—कीर्ति का वर्णन करने लगे।

लेकिन यकायक ज्योतिषियों की नजर कुंडली के किसी ग्रह पर पड़ी। और ज्योतिषियोंने गहरी साँस ली। राजाने कारण पूछ, तब ज्योतिषियोंने बताया कि—"इस पुत्र की नजर में कभी भी मुरझाया फूल, वृद्ध मानव, और शव के दर्शन आने न पाये; नहीं तो वह उद्विग्न हो कर संसारत्याग कर संन्यास ग्रहण कर लगा।"

उस बच्चे का नाम गौतम रखा गया। क्रमशः वह बड़ा होता चला। उसकी चारों ओर पिताने सख्त पहरा लगवा दिया। राजसेवकों को कडी सूचनाएँ दी गयी कि गौतम कभी भी उद्यानविहार करना चाहे तो, सर्वप्रथम बागमें से तमाम मुरझाये फूलों को चुनकर अलग कर दें। उस नगर में घूमने की इच्छा उसे हो पाये तो, रास्तों पर कहीं वृद्ध दीख न पडे और मृतक दीखाई न दे, उसकी चौकसी करें।

इस आज्ञा का पूरा अमल होने लगा। गौतम यशोदा का स्वामी बना और राहुल के पिता हुए।

www.yogpradhan.com

लेकिन विधि के निर्माण को कौन मिथ्या कर सकता है ?

एक रोज यकायक उद्यान में जा कर उसने मुरझाये फूलों को देखकर, उस हालत के कारणों की छानबीन की। गौतम दहला उठे। दूसरे दिन यकायक एक वृद्ध को देखा। एक मृतक की स्मशानयात्रा देखी। अपने सारथी से उसके बारे में पूछताछ की और जानकारी पायी।

और उद्विग्न बने गौतमने, यशोदा और राहुल के अटूट स्नेह-बंधनों को तोडकर, उसी रात राजमहल का त्याग कर, चल पड़े।

(२६२) पापों का तिरस्कार यही सम्यग्दर्शन

ई. स. १९१४ वें साल, अंग्रेजो की शरणागति के लिए बेबस बने, जर्मन अधिकारियों ने अंग्रेजों से कहा कि—"तुम लोगोंने भले ही, हम जर्मनों के शस्त्रास्त्रों, स्टीमरों, शस्त्रागारो आदि पर प्रभुत्व जमा कर लिया हो; लेकिन इतना अवश्य याद रखें अब भी हम लोग कभी न कभी, आप लोगों के विजेता होने वाले हैं। क्योंकि हमारे पास एक खतरनाक शस्त्र अब भी सुरक्षित बना पड़ा है। यह ऐसा शस्त्र है कि उसके पर आप कब्जा जमा नहीं सकते। इतना ही नहीं; उसको कब्जे करने की जितनी कोशिशें आप लोग करेंगे; उतना ही वह शस्त्र ज्यादा खतरनाक सिद्ध होगा।

'हमारे इस शस्त्र का नाम है अंग्रेजों के प्रति धिक्कारवृत्ति। यह जानकर अंग्रेजों के सर, पराजित जर्मन लोगों की जिन्दादिली के सामने एकसाथ झुक गये।

पापों के प्रति धिक्कारभाव, यही एक मात्र शस्त्र है जो पापों का तत्काल विनाश कर सकता है।

धर्म के सारे शस्त्र हाथ से निकल जायें, तब भी यदि पापों के प्रति धिक्कारभाव बना रहे तो एक बार वह पुरुष धर्मयुद्ध में अवश्य विजेता सिद्ध होगा।

(२६३) तथाकथित धर्मीजन कब तक धर्माचरण कर पायेंगे ?

एक राजा था। वह जब राजसभा में सिंहासन पर बैठता तब दोनों ओर जलती मशालों के साथ चार आदमियों को खडे रखने का बड़ा शौकिन था।

एक रोज एक खिलाडी बड़े बड़े आठ बन्दरों को ले कर राजसभा में आया। राजा की इच्छा इन बंदरों को मशालची के रूपमें रख लेने की हुई। वृद्ध मंत्री के बारबार इन्कार करने पर भी राजाने बन्दरों की खरीदी कर मशालची की तालीम दे कर उन्हें तैयार किये।

एक बार वैशाख मास के दिनों में आम के कांडिये भरकर कोई बड़ा व्यापारी राजसभा में आया। उसने राजा के सामने ढेर लगाकर, उनकी भेंट धर दी।

पकी आमों को देखते ही उन्हें खाने के लिये बन्दर उतारू हो गये। धधकती मशालों को राजा पर फैंककर, वे सारे बन्दर पके आमों पर टूट पड़े।

राजसभा में भारी खलबली मच गयी। राजा बेहद जल गये। लेकिन सद्भाग्य से जान बच पायी।

तथाकथित धर्मीजन संसारदुःख दीख पडे तब तक ही धर्मीजन बन जाते हैं।

www.yugpradhan.com

(२६४) खोयी हुई आत्मा मिल पाये तो....!

किसी महात्मा के मंदिर में एकनाथ नौकरी कर रहा था। मंदिर की व्यवस्था का कामकाज उन्हें सौंपा गया था।

एक रोज शाम हिसाब मिलाते समय एक पाई का हिसाब मिल नहीं रहा था। एकनाथने रातभर माथापच्ची की। सुबह हुई। महात्माजी ने एकनाथ की उलझन को जानकर कहा—" हाँ बेटे, हिसाब तो मिलना ही चाहिए।"

फिर सारा दिन गुजर गया।

अरे, एक ही बैठक में एकनाथने तीन दिन और तीन रातें गुजार दी, फिर भी हिसाब मिल नहीं पाया। तीसरी रात गुजर रही थी और यकायक पाई का हिसाब मिल पाया।

www.yogpradhan.com

सिद्धि की खुशी में आधी रात के समय एकनाथ नाचने लगे। उन्होंने खिडकीमें से चिल्लाकर कहा—" महात्माजी, हिसाब मिल गया।"

आवाज सुनते ही अपनी खिडकी के पास आ कर महात्माजी ने एकनाथ से कहा—" बेटा, हिसाब तो मिल जाना ही चाहिए।

" मगर बेटा, अपनी आत्मा का हिसाब अनंत काल से मिल रहा नहीं। क्या उनका स्वरूप था! कैसी उसकी दुर्दशा हुई है! बेटे, अनादिकाल से बिगडा हुआ यह हिसाब यदि मिल जाय तो फिर कितना आनंद हो जायँ?"

महात्माजी के इन शब्दोंने एकनाथ के दिल पर भारी चोट पहुँचायी। दूसरे ही दिन उसने आत्मा का हिसाब मिलाने के लिये संन्यास ले लिया।

(२६५) कैसा अनासक्त निर्मोही भरत !

अनमोल पुण्य का उदयकाल चालू था। अत एव चक्रवर्ती सम्राट भरत अपने किसी अकल्प्य आध्यात्मिक पतन की संभावना से डरे डरी रहते थे।

उनकी सावधानी पर कोई भारी हमला आ न पाये उसके लिये उन्होंने कतिपय आदिमियों का संगठन किया था; जिसे 'माहण' संज्ञा दी गयी थी।

ये सारे माहण हमेशा सम्राट भरत को सावधान रखने के लिये कहते रहते कि–"हे चक्रवर्ती भरत ! आपने भले ही विश्वविजेता पद प्राप्त किया हो; लेकिन यह कभी न भूलो कि मोहमाया आपको किसी भी समय उठा पटकने के लिये सर्वदा समर्थ है। यह खतरा आपके पर हमेशा तुला हुआ है। अतः हे राजेश्वर भरत, आप सावधान रहें।"

www.yogpradhan.com

राजेश्वर भरत को हमेशा ऐसा बोध देनेवाले इन माहणों के लिये एक योग्यता निश्चित की गयी थी कि वे अपनी स्त्री में ही रत–संतुष्ट होने चाहिए। अपने बच्चों को सर्वसंगत्यागी बनाने की तीव्र आकांक्षा-वाले होने चाहिए।

वंदन हों उन भरत महात्मा को ! जिनकी इतनी प्रचंड ताकात थी कि एक छोर को ८४ लाख हाथियों द्वारा खींचा गया हो, जिसके दूसरे छोर को कुए के किनारे खडे होकर अकेले उस रस्से को खींच लाते। फिर भी जिनका अन्तर्जागरण अत्यंत उच्च और अमान-वीय था।

(२६६) महासती वेदवती

वेदवती ऋषिकन्या थी। उसकी छोटी उम्र में ही माँ का अवसान होने पर, ऋषिपिता ने ही उसे पाल पोसकर बड़ी की थी। पर्णकुटी

में पितापुत्री बसते थे। वेदवती का ब्रह्मचर्य अनुपम था। उसको विशिष्ट विशुद्धि के कारण उसे जातीय वासना के प्रति आरंभ से घृणा थी। आजीवन ब्रह्मचारिणी रहने की अपनी अभिलाषा का खयाल अपने पिताजी को देने पर उन्होंने उसे संमति दी।

वेदवती हमेशा एक कुटिर में घंटों तक धर्मध्यान किया करती। यज्ञयागादि भी करती। उसके बाह्य सौन्दर्य की प्रत्येक रेखा में आंतर-सौन्दर्य का प्रसार होने के कारण उसका रूप–लावण्य और निखर पाया था।

एक दिन एक राजा वहाँ से गुजरा। अग्नि की वेदिका के समक्ष खडी होकर मन्त्रपाठ करती वेदवती के लावण्य को देखकर राजा वहीं स्तब्ध रह गया। उसके अंतर में कामवासना भडक उठी। दबे पाँव वह पीछे से आया और वेदवती की वेणी को पकड वह खींचने लगा।

क्षण भर में ही खतरनाक वाघिन–सी उस वेदवती ने घुमकर उस के सामने देखा। उसके चेहरे के प्रचंड तेज को देख राजा चार कदम पीछे उलट पड़ा।

गंभीर मुखमुद्रा बनाकर वेदवती ने राजा से कहा–" राजकुमार! तुमने अनुचित कार्य किया है। तुम पागल हो चुके हो। खैर, जो हुआ सो हुआ। लेकिन परपुरुष के स्पर्श से अपवित्र बने इस शरीर को जिलाने का कोई अर्थ नहीं। प्रभु तुम्हारा कल्याण करें।"

इतना कहते ही वेदवती अग्निकुंड में कुद पडी। राजकुमार की आँखों में से पश्चात्ताप के रूप में आंसू लगातार बहने लगे।

(२६७) शत्रुता को खत्म करने द्वारा शत्रु को मारो।

मृत्युशैय्या पर लेटे पिता ने डॉक्टर बने अपने बेटे को बुलाकर, अपनी अन्तिम इच्छा की पूर्ति के लिये कहा कि—"बेटे तुम्हारे चाचा के साथ मेरी सालों पुरानी दुश्मनी है; लेकिन उसे परेशान करने की तमाम युक्ति-प्रयुक्तियाँ निष्फल रही हैं। अब तू डॉक्टर बन पाया है। वह जब बीमार हो, तब दवाई के बहाने, उसे जहर खिलाकर खत्म कर देना।" इतना कहते कहते वे बेहोश हो गये और उसी अवस्था में चल बसे।

संयोगवश थोडे ही महिनों में चाचा यकायक बिमार पड़े। वे डॉक्टर उनकी सेवा में लगे। लेकिन डॉक्टर ने तो चाचा को पिता तुल्य समझ कर, उन्हें आत्मीय बना दिये। अद्‌भुत चिकित्सा के द्वारा उन्हें तन्दुरस्त बना दिये। चाचा को भी, भतीजे की इस अद्वितीय आत्मीयता के दर्शन से भारी आश्चर्य हुआ, साथ ही आनंद भी।

प्रश्न यह तो होता है कि डॉक्टर ने चाचा को खत्म कर, अपने पिताजी की अन्तिम इच्छा की पूर्ति क्यों नहीं की?

उत्तर यह है कि, डॉक्टर ने उस इच्छा को पूरी की। चाचा की शत्रुता को खत्म कर उन्हों ने चाचा को शत्रु ही मिटा दिये।

शत्रु को मारने से वह कभी खत्म नहीं होता। शायद जन्म-जन्मान्तर का शत्रु बना रहता है। शत्रुता को मारने से ही 'शत्रु' हमेशा के लिये खत्म हो जाता है।

(२६८) निश्चित निर्माण

किन्ही सर्वज्ञ भगवंत से दो धर्मीजनों ने पूछा—"इस संसार-चक्र में अब हमारे कितने भव शेष है।"

सर्वज्ञ ने उत्तर में कहा कि–"एक के सात भव और दूसरे के असंख्य भव।"

इस उतर से प्रसन्न सात भववाले धर्मीजनने धर्म का त्याग कर दिया। उस ने मन ही मन सोचा कि–"अब जब सात के छः भव होनेवाले नहीं हैं तो धर्माचरण की क्या जरूरत है!" वह तो बड़ा, भारी भोगी बन गया। बेचारा, मृत्यु के बाद, सातवें नरक में चला गया।

दूसरे धर्मात्मा ने सोचा कि–"सर्वज्ञ कभी झूठ नहीं बोलते। उन्होंने मेरे असंख्य भव बताये तो भले ही सही। इस प्रकार उसने धर्माचरण जारी ही रखा।

लेकिन मृत्यु के समय उसका चित्त, घर के आंगन में खडे बेर के पेड पर लगे बडे बडे बेर खाने की आसक्ति में फँसा। अतः मृत्यु के बाद वह बेर के पेड के रूप में जन्मा।

www.yogpradhan.com

वनस्पति की दुनिया के जन्म तेजी के साथ साथ गुजरने लगे। थोडी ही समय में असंख्य भव हो चुके। मनुष्य भव में आ कर साधना कर वह आत्मा मोक्षधाम में पहुँची।

और वह सात भवोंवाली आत्मा अभी तो सातवीं नरक में एक ही पल्योपम का आयुष्य पूरा कर पाया है!"

(२६९) धिक्कार है ऐसी कृतघ्नता को!

वे जैनाचार्य थे। नाम था उनका जिनदत्तसूरिजी। उनके पास अन्य किसी संप्रदाय का आदमी, अध्ययन करने के लिये आ पहुँचा। देखते ही देखते वह भारी विद्वान हो चुका। गुरुजी की भी उसके पर भारी ममता थी।

एक दिन की बात है। उस शिष्य के पुस्तक के पन्ने भारी

पवन के कारण उडने लगे। उन पृष्ठों के बीच रखा हुआ एक कागज वहाँ से उड़ा और विद्यागुरु जैनाचार्य के पाँवों के पास आ गिरा।

वह शिष्य उस समय वहाँ उपस्थित न था। आचार्यश्री ने उस पत्र को पढ़ा। उस में उसने अपने किसी गुरु को उद्दिष्ट कर इस मतलब का लिखा था कि–"मेरा अभ्यास पूरा होने आया है। इस अभ्यास की ओट के बहाने, इस जैनाचार्य के तमाम अनुयायियों को उनके संपूर्णतया विरोधी बना दिये हैं। अब हमारी सफलता में कोई शंका नहीं है।"

इस पत्र को पढ़कर उन जैनाचार्य के मुँह से एक श्लोक फूट पड़ा। उसका आशय ऐसा था कि भूतकाल में लोग उपकार करने के बाद, अपकार कर कृतघ्न होते थे।

www.yugpradhan.com

वर्तमान काल में तो उपकार की क्रिया चालू है, वहीं अपकार कर कृतघ्न होने लगे हैं। तो भविष्य के लोग कैसे होंगे? शायद भगवान ही जान पायें।

(२७०) धिक् है द्रव्य को

चन्द रोज पर एक कुबेरपति विदेश में करुण रूप में मर गये।

हररोज के बीस हजार डालर के किराये के होटल के बीसवें मजले पर वे अकेले रहते थे। बीस अरब रूपयों के इस मालिक के कई शत्रु थे। अतः बिना जाँच पडताल किये वे किसीसे सीधी भेंट नहीं करते थे। भेंट की प्रत्येक क्षण में वह खतरे से काँपता रहता था।

उसके जीवन में पाँच पत्नियाँ थीं। बारी बारी से तमाम स्त्रियाँ उससे दूर हो गयी। पुत्रों के दर्शन तो उन्हें अलभ्य हो गये।

किसी एक रात होटल में ही, वह गुजर गया। सुबह डॉक्टरने उसके शबकी जाँच पडताल कर निवेदन किया कि–" यह मनुष्य व्यर्थ मर चुका है अगर उसकी थोडी सी देखभाल की गयी होती तो उसकी पीठ पर जो फफोला हुआ है, उसमें जो पाक हुआ वह न हो पाता और आदमी बच पाता।"

अफसोस, बीस अरब डालर के मालिक की सुश्रूषा करनेवाला कोई पास में न हो यह संभव है क्या ?

उसकी मृत्यु के बाद उनकी पाँचों पत्नियोंने उनकी संपत्तिमें से भाग प्राप्त करने के लिये, अदालतमें मुकद्दमे पेश कर दिये।

बेचारा, वसियतनामा भी कर नहीं पाया।

(धन के पीछे जीवन को तुच्छ–पामर बना देनेवाले लोग, इस कथा का नित्य पाठ करें।)

www.yogpradhan.com

(२७१) बेटे ! अब पानी भी बादमें !

(धर्म के निमित्त जब ऐसे बलिदान दिये जायेंगे तभी ही धर्म का बोलबाला होगा।)

मुगलों के साथ लडते लडते सीख लोग एक किले में घुस गये। किले को चारों ओर मुगल सेना ने घिराव कर दिया। इनगिने सीख अब लडने के लिये कायर बने। वे हिंमत हार बैठे।

सीखों के सरदार थे गोविंदसिंह। उन्होंने परिस्थिति का अंदाजा कर लिया। सैन्य में जोस कैसे पैदा करे यह उनके सामने समस्या थी। उन्हें यकायक सूझा। अपने दो पुत्र वहाँ उपस्थित थे ही।

बडे पुत्र अजितसिंह से कहा–" बेटे, लो यह तलवार और मैदान में कूद पड़ो।"

सोलह साल का लडका तलवार ले एक क्षण में ही कमरे से बाहर हो टूट पड़ा मुगलों के सामने। देखते ही देखते मुगलोंने उसे खत्म कर दिया।

गोविंदसिंहने दूसरे पुत्र जोजार से भी यही आदेश दिया। वह भी सज्ज हुआ। पिताजी से बोला–"पिताजी, प्यास जोरों की लगी है। थोड़ा पानी पी कर जाऊँ?"

हँसते हँसते पिताजीने कहा–"बेटे, अब पानी पीने में भी देर न होने दो। अब प्यास कैसी? और पानी कैसा?" और दूसरे ही क्षण जोजारसिंह का घोड़ा मुगलसेना की ओर धँस पड़ा।

पिताजी की आँखोंमें से हर्षाश्रू बह निकले। अब दूसरे सिखों का जोस बढ़ा और सभी लड़ते लड़ते मर चुके।

www.yugpradhan.com

(२७२) कहाँ है ऐसी जिंदादिली?

(आज जिंदादिली का विनाश हुआ है, इसका परिचय यह कथा करायेगी।)

देलवाडे के जैन देवालयों की शिल्पकला–मूर्तिकला के दर्शन करने के लिये एक ब्रिटिश अफसर आया।

जैनसंघ के अग्रणी सेठ लालभाई दलपतभाई ने अफसर का उचित स्वागत किया। जिनालय में प्रवेश के समय सेठजी ने अफसर से जूते निकालने की प्रार्थना की; लेकिन मनस्वी गोरे ने उसे ठुकरा कर मंदिर में प्रवेश किया।

धर्मस्थान का यह अपमान सेठजी के लिये असह्य बन पड़ा।

धार्मिक स्वतन्त्रता का आधार ले सेठजी ने वरिष्ठ अदालत में

मुकदमा पेश कर दिया। सेठजी धर्मस्थानों के भावि को सुरक्षित रखने के लिये आदर्श स्थापित करना चाहते थे।

भाग्यवश अंग्रेज न्यायाधीश ने सेठ के पक्ष में फैसला दिया। साथ ही कोई भी अंग्रेज धर्मस्थानों की प्रणालिका का भंग न करें ऐसा फरमान भी निकाला गया।

बाद में न्यायाधीश ने सेठ से कहा, "सेठजी आपने भारी साहस किया है। मान लीजिए कि अदालत में आपकी हार होती तो....?"

"तो मैं सर्वोच्च अदालत में जाता!" सेठजी ने स्पष्ट रूप से कहा।

कुतूहलवश हो, न्यायाधीश ने पुनः सेठजी से कहा—"शायद सर्वोच्च अदालत में भी आपकी विजय न होती तो?"

www.yugbradhan.com

सेठजी ने कहा—"मैं प्रीवि० काउन्सिल में पहुँचता!"

"वहाँ भी पराजित होते तो!" सेठजी ने तुरंत उत्तर दिया कि—"तो मैं गाँव—गाँव घुमकर सभाओं में भारत की जनता से एलान करता कि अंग्रेज शासन में न्याय का मृत्युघंट बज चुका है। अतः कोई अदालत में न जायँ!"

सेठजी का जवाब सुनकर, न्यायाधीश प्रसन्न हो उठे। सेठजी को धन्यवाद दिये।

(२७३) कैसी अनोखी गुरुदक्षिणा!

(अपनी उत्तम कक्षा के साथ जीवन का मेल किस हद तक बैठता है? उसका पूरा परिचय यह कथा कराती है।)

वे एक भिक्षु थे। भगवान के भक्त थे। साथ ही अपने शास्त्रों

के अच्छे ज्ञाता थे। कई ग्रन्थ उन्होंने लिखे। कई छपे भी गये। कई पुस्तकों की तो अनेकानेक आवृत्तियाँ भी प्रकाशित हुई।

एक बार उम्र के कारण उनकी आँख में परेशानी हुई। तब से उन्हें व्यवसायी प्रूफ–रीडर को रखना पड़ा।

उसके बाद एकाध साल गुजरा। गुरूपूर्णिमा के दिन भिक्षु उस प्रूफरीडर के घर गये। उन्होंने उसके हाथोंमें रूपये दश का नोट रखकर कहा–" आज के दिन के उपलक्ष्य में मेरी यह गुरुदक्षिणा है। उसका स्वीकार करो। तुम मेरे लेखों की सामग्री और प्रूफ दोनों की जाँच–परख करते हो, गलतियाँ–क्षतियाँ निकालते हो और आवश्यक सुधार भी करते हो।"

हमारी भूलों का सुधार करे वह गुरु कहलाता है। अतः आज मैं गुरुदक्षिणा देने आया हूँ।"

www.yugpradhan.com

प्रूफरीडर की आँखों में आँसू डबडबा आये। आर्यावर्त की भूमि में कैसी अनोखी गहराई है!"

(२७४) हाजिरबुद्धि बनिया

वे एक चुस्त जैन थे। नाम बाबू बहादूरसिंहजी। शिखरजी आदि अनेक प्रख्यात जैन तीर्थों के वे अच्छे व्यवस्थापक थे। अंग्रेजों के शासनकाल में भी उनका भारी बोलबाला था।

एक बार यकायक अंग्रेजोंने शिखरजी की पवित्र पहाडी पर कत्लखाना बाँधने का निर्णय किया। दूसरे ही दिन जगह का निरीक्षण करने के लिये पहाड़ी पर जाने का विचार किया।

केवल अगली रातमें ही बाबूजी को समाचार मिले। केवल एक

रात में किया भी क्या जाय ? लेकिन उनके दिमाग में तीव्र गति से एक योजना साकार हो उठी ।

रात की रातमें उन्होंने बोरियाँ भर कर सिन्दूर इकट्ठा करवाया और पहाडी ऊपर के मंदिरों के चारों ओर, चढ़ाई के रास्तों पर सर्वत्र सिन्दूर के ढेर के ढेर लगवा दिये ।

दूसरे दिन अंग्रेज अफसरों के साथ बाबूजी भी पहाड़ी पर चढ़े । जहाँ जमीन पसंद करते वहाँ सिन्दूर का ढेर दीख पड़ता । बाबूजी से पूछा गया कि–" यह कैसी अनोखी बात है ? "

बाबूजी ने कहा–" देव–देवियाँ ! "

" अरे, क्या हर जगह देव–देवियों जमी रहती हैं ? " बड़े अफसर ने झुंझलाकर कहा ।

www.yugpradhan.com

गंभीर मुँह रख बाबूजी ने कहा–" जी हाँ सारी यह पहाडी इस प्रकार देवदेवियों से भरी पूरी है ! "

और योजना को स्थगित कर सभी अफसर निराश हो, नीचे उतर आये ।

(२७५) धिक्कार है ऐसी शिक्षा को

कड़ी मजदूरी कर, इकट्ठी की हुई सारी आमदानी का व्यय पिताने पुत्र की शिक्षादीक्षा और अभ्यासार्थ विदेशगमन के लिये किया ।

आखिर जो पच्चीस हजार रूपये बाकी रहे थे उन्हें भी अतिविश्वास के कारण पुत्र के नाम पर जमा करवा दिये ।

लेकिन अफसोस की बात हुई कि शादी होते ही पुत्र ने पिताजी के साथ कड़ा दुर्व्यवहार शुरू कर दिया । ग्रेज्युएट पत्नी का गलत मार्गदर्शन ही मुख्य कारण था ।

प्रतिदिन गुजरते अत्याचारों से त्रस्त पिता एक दिन भारी परेशान हो उठा । एक रोज खाने–पीने की मामूली बात में संघर्ष हुआ और जीवन समाप्त करने के दृढ़ निर्णय के साथ पिता चौपाटी पर समुद्र में कूद पड़ा ।

यकायक पुलीस की नजर गयी । उसने भी समुद्र में कूद कर, उस अभागी को बचाकर, आत्महत्या का आरोप लगाकर अदालत में मुकद्दमा पेश कर दिया ।

न्यायाधीश के सामने खड़ा रहा बाप कुछ बोल नहीं पाया । यकायक फूट फूट रोने लगे । तब उन्हे अपने साथ चेम्बर में ले गये । सारी सही बातों की जानकारी कर ली ।

तार द्वारा न्यायाधीश ने पुत्र को बुला मँगवाया । उसे डाँटा और उसी समय रूपये पच्चीस हजार की रकम का तबादला पिता के नाम पुनः करवाया ।

सचमुच, आजकी दूषित शिक्षा ने तो 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' की आर्यावर्त की गौरवभावना का मूल से सर्वनाश कर दिया हैं ।

www.yogpradhan.com

(२७६) व्यावसायिक ढंग पर विद्याओं का विक्रय

वे थे एक वैद्यराज

संपूर्णतया प्राचीन परंपरा के शुद्ध वैद्यराज ! वैद्यकाम करते लेकिन वैदक शास्त्रों में बताये अनुसार विद्याका लाभ सभी प्राप्त करे, केवल इस भावना से वैद्यकार्य किया करते थे ! द्रव्य–उपार्जन की तो कोई बात ही न थी । आजके 'फिस' शब्द की व्याख्या, उन दिनों "सुधरी भीख" के रूपमें की जाती थी ।

उनका नाम था शंडू भट्ट । वैद्य के रूप में उनकी ख्याति दिग्-दिगंतों में फैली हुई थी ।

एक दिन उनके पौत्रने दादाजी के पास प्रस्ताव रखा कि–" हम आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण के लिये एक फार्मसी बनायें । उसके कारण लोगों को शुद्ध दवाईयाँ प्राप्त होगीं और हमें दो पैसों की आमदानी होगी । "

पौत्र के ये शब्द भट्टजी के लिये वज्राघात से बने रहे । उन्होंने विद्याविक्रय का साफ इन्कार कर दिया ।

फिर भी थोडे समय के बाद, पौत्र ने एक फार्मसी (शंडू) शुरू कर दी ।

वैद्यराज को पता चलते ही, उन्होंने उसी क्षण गृहत्याग किया । कहीं (शायद नडियाद में) मित्र के घर चले गये । शेष जिंदगी व्यथा में ही पार की ।

www.yogpadhan.com

(२७७) आचारविहीन वक्तव्य का प्रभाव कितना ?

वे थे समाज में धर्मीजन के रूप में प्रतिष्ठित सज्जन ।

जहाँ तहाँ धार्मिक क्रियाकाण्ड करवाना, यही उनका काम था । वैसे भी थोडा धनोपार्जन हो पाया था अतः आर्थिक लोभवृत्ति थी नहीं । लेकिन धार्मिक क्रियाकाण्ड करानेवालों का आज भी जैनसंघ में उनका मानपान ऊँचा होने के कारण कीर्ति भी फैली थी ।

एक दिन की बात है । किसी स्थान पर धार्मिक क्रियाकाण्ड का आयोजन हुआ था । इन सज्जन को भी आमन्त्रण प्राप्त था । क्रिया-विधि देखने भारी भीड़ जमी हुई थी । उसके कारण इस सज्जन का

हौंसला बढ़ गया । उस दिन उन्होंने उपस्थित जैनों के सामने 'रात्रि-भोजन' कितना भारी पाप है, इस पर आकर्षक वक्तव्य दिया ।

अफसोस इस बात का रहा कि किसी भी कारणवश श्रोताओं पर उसका जोरदार असर न हुआ ।

क्रियाविधि पूरी हुई । यजमानने सज्जन को ठाठमाठ से भोजन कराया ।

रात हुई । ग्यारह बजे । सज्जन के कमरे में आवाज हुई । यजमान के युवान बेटों ने खिडकी के वेन्टीलेटर में से झांका :

हाय रे, रात्रिभोजन को पाप समझानेवाले सज्जन खुद, डिब्बे में से बाजारू भूसा निकाल कर खा रहे थे ।

ओ धर्मीजन ! आप ऐसा कभी न करें । वर्ना आप की ही बदौलत नई पीढी नास्तिक बन पायेगी !

www.yugpradhan.com

(२७८) समझाने का कैसा अनूठा ढंग !

एस० एस० सी० की परीक्षा में अच्छे गुणांक प्राप्त करने के लिये सख्त मेहनत कर, परीक्षा में प्रविष्ट रमण क्या पता क्यों, अनुत्तीर्ण हुआ । उसका आघात उसके लिये असह्य था ।

उस आघात में से आत्महत्या करने का विचार पैदा हुआ ।

और....जल्दबाजी निर्णय कर, बम्बई के समुद्र की ओर रात के समय निकल पड़ा ।

सौभाग्य से रास्ते में उसके पिता के मित्र से भेंट हो गयी । वे बडे चालाक और सयाने थे ।

इस लडके की चाल से ही उसके अमंगल का अंदाजा मिल गया। उसने पूछा–

"भाई, रात के समय किस ओर निकले हो ? इस प्रकार निराश हो, डगमगाते कहाँ जा.रहे हो ?"

युवान ने कहा–"आत्महत्या करने जा रहा हूँ। एस० एस० सी० में अनुत्तीर्ण होने पर अब जीवन में कोई रस रहा नहीं है।"

उस सज्जन हँसते हुए उस युवक की पीठ थपथपाते हुए कहा– 'अरे भले आदमी ! इस प्रकार आत्महत्या कर तू अपनी बरबादी कर रहा है। मेरी बात सुन। तू आत्महत्या कर आज मर जायेगा और शायद सीधा मनुष्यजन्म पायेगा, फिर भी ९ मास गर्भ के और १३ साल अभ्यास के कुल मिलाकर १७ साल बाद फिर एस० एस० सी० की परीक्षा में बैठकर, परीक्षा उत्तीर्ण करोगे उसकी अपेक्षा जिंदा रहकर, आगामी एक ही वर्ष में एस० एस० सी० परीक्षा उत्तीर्ण कर दो न ?

युवक के दिमाग में यह बात ऐसी जम गयी कि उसने आत्महत्या की कल्पना तक छोड़ दी।

www.vijayradhan.com

(२७९) अभी भी हमें जाग्रत नहीं होना है !

पाँच हजार मील की दूरीसे हम लोग आपके गाँव में मेटाडोर गाडी लेकर आये हैं। भगवान के पुत्र इसुने हमें स्वप्न में आज्ञा की कि, 'तुम लोग भारत के अमुक गाँव में पहुँच जाओ और वहाँ के लोगों के सहायक बने रहो। उनकी गरीबी दूर करो।"

"आगामी सप्ताहमें हमारे महान धर्मगुरु यहाँ आयेंगे। खुदा के पुत्र ईसु की ओरसे जब वे तुम्हें आशीर्वाद दें, तब तुम उनका

स्वीकार करना। तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारे जीवन में कोई दुःख न रहेगा।"

"चलो अब यहाँ इकट्ठे हुए सभी ग्रामजन इन दस दस रूपयों के नोट को ले जायँ और साथ में एक एक मिठाई का पेकेट भी।"

भारत के गाँव गाँव में धर्मान्तर–प्रवृत्ति करनेवाले ईसाइयों की ग्रामजनों को बहकाने की यह भाषा है। यह तरकीब है, यह उनकी खतरनाक चाल है।

सप्ताह के बाद नखशिख श्वेतवस्त्रधारी पादरी उस गाँव में आते हैं। उपरान्त फिर डेढ–सौ दो–सौ ग्रामजन वहाँ इकट्ठे हो जाते हैं। दोनों हाथ उठाकर पादरी कुछ गुनगुनाता है। बाद में सभी से कहता है कि–"मैंने भगवान इसु की ओर से तुम्हें आशीर्वाद दिये हैं। आज से आप लोग ख्रिस्ती बन पाये हैं। हमेशा इस धर्म के प्रति वफादारी बनाये रखें।"

अनुपस्थिति सभी बाकी ग्रामजनों को भी इस बात का पता चलता है। वे सभी उन डेढसौ–दोसौ आदमियों का ज्ञाति में से बहिष्कार किया जाता है। अब ख्रिस्ती बन जाने के लिये उन्हें मजबूर होना पड़ता है।

सावधान, संस्कृतिप्रेमी लोग सावधान!

(२८०) गर्भपात! कैसा कनिष्ट पाप?

बम्बई के उपनगर की यह सत्य घटना है। जेठानी को सात मास का गर्भ था उस समय देवरानी को गर्भ रहा। अधिक संतानों के भय की मारी जेठानी ने अपना गर्भपात कराना चाहा। उसके

डाक्टरों ने मिलकर उसे समझाया कि—"अब गर्भपात अशक्य है, क्योंकि गर्भ बढ़ गया हैं।"

लेकिन जेठानी अटल रही। पैसों के बल पर उसने एक महिला—डाक्टर को विवश को और गर्भपात के लिये उग्रातिउग्र दवाइयों के ढेर के ढेर जमने लगे।

गर्भ में रहा बच्चा जलद दवाइयों से परेशान हो उठा; फिर भी उसकी मृत्यु हो न पायी।

एक दिन यकायक उस बच्चे का गर्भ मांस की ग्रंथि की तरह बाहर निकल पड़ा। बाहर निकले बच्चे के मुँह से अतिकरुण रुदन की आवाज अस्पष्ट रूप से सुनाई पड़ती थी।

वार्ड में काम करनेवाली स्त्रीने उसे उठाकर खिडकी में से गटर में फेंक दिया।

www.yugpradhan.com

हाय क्रूरता! धिक् है स्वार्थान्धता को!

ऊँचे माने जानेवाले परिवारों की कैसी नीचता! सगी माँ अपनी संतानों का खून करें! कैसा है जमाना!

(२८१) राजनीति का खोखला चोंचला!

(कमिटी! समिति! अहवाल!)

जंगल का एक चूहा अपने जीवन से बेहद ऊब गया। सभी उसे सदमा पहुँचाते। जंगल के राजा शेर के पास वह शिकायत करने गया।

उसने कहा—"वनराज! अब मैं अपने जीवन से ऊब गया हुँ। सभी मुझे परेशान करते हैं। आप ही कोई रास्ता बतायें।"

गंभीर मुख से वनराज ने कहा, "एक रास्ता है और वह रामबाण

है। यदि तू उस राह पर चले तो सारी फरियादें और मूसीबतें दूर हो जायेगी।"

थोडा शान्त हो, वनराज ने कहा—"इसके लिये तुझे एक ही काम करना होगा कि जल्दसे जल्द तू शेर बन जा। तू सिंह बन पाया तो किसी का मजाल नहीं कि तेरा बाल भी बांका कर पाये।"

वनराज ने चूहे को मुक्त होने की नीति बतायी। सुनकर चूहा खुशी का मारा नाच उठा। 'वाह रे वनराज! वाह! कैसी अनोखी बात बतायी!'

लेकिन थोडी देर के बाद उसने पूछा—"वनराज! लेकिन मैं चूहे में से शेर बन कैसे पाऊँ?"

www.yogpradhan.com

आगबबूला होकर वनराज बोला—"मूर्ख! यह बताने का काम मेरा है क्या? मैं तो केवल नीति बताऊँ! उसका अमल करने का काम तुम लोगों का है; मेरी जिम्मेवारी का नहीं।"

(२८२) भावना ही सही है!

पर्वत की किसी गुफा में देवाधिष्ठित शिवमूर्ति थी। उसकी विधिवत् पूजा पूजारी हमेशा किया करता था। लेकिन एक शिवभक्त भील देरी से आकर इस पूजा को तितरबितर कर देता और बाद में स्वयं भावविभोर होकर शिवपूजा करता।

वह मुँह में पानी भर लाता। उसी का शिवमूर्ति पर प्रक्षाल करता। बाद में भक्ति में लीन हो, नाच उठता। उसकी इस भक्ति को देख अधिष्ठायक देव प्रत्यक्ष होकर उसके साथ कभी कभी बात-चीत किया करते।

अपनी भव्य पूजा–शोभा हररोज कौन तितरबितर कर देता है इसका भेद एक दिन पूजारी ने छिपकर पा लिया। शाम की आरती के समय उसने शिवजी को उलाहना देते हुए कहा–" ऐसे नाचीज भक्तों पर तुम प्रसन्न क्यों होते हो ? "

देव ने उससे कहा–" तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तुम्हें कल मिल जायेगा। "

दूसरे दिन देव ने शिव की आँखें निकाल दी। पूजारीने उस हालत को देख मात्र दिलगीरी व्यक्त की। जब कि भीलने तुरंत अपनी आँखें निकाल शिवजी के लिंग पर चिटका दीं।

देव ने पूजारी को इस दृश्य का परिचय करा कर कहा कि–" अब तुम समझ पाये होगे कि मैं ऐसे पगले भक्त भील पर प्रसन्न क्यों हूँ ! "

www.yugpradhan.com

(२८३) क्या अब बच्चे बड़ों को सुधारेंगे ?

" अरे रमणचाचा ! नहीं, मैं तुम्हें सीनेमा देखने जाने नहीं दूँगा। सीनेमा देखनी ही नहीं चाहिए। उपरान्त आप तो बच्चों को भी अपने साथ ले जा रहे हों। अरेरेरे ! इससे उन के जीवन में खराब संस्कार दृढीभूत होंगे। "

गुजरात के कच्छ जिले के एक गाँव का दस साल का बच्चा, चलचित्र देखने जानेवाले प्रत्येक बडे आदमी से ऊपर के शब्द कह रहा था और वापस लौट जाने के लिये नम्र प्रार्थना कर रहा था। सीनेमा न देखने की गुरु की दी हुई शिक्षा का प्रचार वह इस प्रकार कर रहा था।

एक दिन उसके मामा–मामी उसे सीनेमा देखने ले गये। उनका कहना था कि सीनेमा में कई अच्छी बातें भी आती रहती हैं।

लेकिन पाँच मिनट हुए न हुए थे कि बच्चा उठ खड़ा हो गया। बोला—"मामा—मामी ! इसमें क्या देखना है ? ऐसा तो हमारे घर में और आसपास में कहाँ दीख नहीं पड़ता ?"

"लो....मैं तो चला घर की ओर।" उसका मानना है कि जो माँ—बाप अपनी संतानों को चलचित्र दिखलाते हैं, वे माँ—बाप कहलाने योग्य नहीं हैं।

(२८४) प्रतिज्ञापालन का प्रभाव

थोडे मास पहले ही बम्बई में सी० पी० टैंक रोड पर आयी हबीब बिल्डींग का पिछला भाग गिर पड़ा।

जिस समय यह दुर्घटना घटी, उस समय एक जैन धर्मात्मा, इमारत के अगले भाग में आए खंड में सामायिक की ४८ मिनिट की धर्मक्रिया कर रहे थे।

क्रिया के ४५ मिनट पूरे होने पर उन्हें यकायक शौचक्रिया की जरूरत महसूस हुई। क्रिया अधूरी छोडनी पड़े ऐसा उन्हें मालूम हुआ। लेकिन उससे प्रतिज्ञाभंग होने का भारी डर था। अतः मनोबल दृढ़ कर अन्तिम तीन मिनटों की क्रिया पूरी करने के लिये वे सामायिक में ही बैठे रहे।

और आश्चर्य की बात यह रही, उन तीन मिनटों के समय में ही उस इमारत का पीछला भाग भारी आवाज के साथ गिर पड़ा। जिस में वह पाखाना भी सामिल था।

ये सज्जन, सामायिक छोड पाखाने गये होते तो ?

प्रतिज्ञापालन का कैसा प्रत्यक्ष परिणाम !

www.yugbrandhan.com

(२८५) खुशामत कैसी ?

एक बार ग्रीक तत्त्ववेत्ता डेमास्थनीस को 'राजगुरु' बनने के लिये शाही न्यौता मिला। भारी नम्रता के साथ डेमास्थनीसने उस आमन्त्रण का अस्वीकार किया।

अतः उसके बाद अन्य किसी तत्त्वचिंतक को 'राजगुरु' का पद प्राप्त हुआ।

एक बार डेमास्थनीस के पास वे राजगुरु आये। उस समय डेमास्थनीस मिट्टी के बर्तन माँज रहे थे।

डेमास्थनीस जैसे महान तत्त्ववेत्ता को भी बर्तन माँजने पड़ते हैं यह देख राजगुरु मन ही मन हंस पड़ा। उसकी नजर में डेमास्थनीस की मूर्खता भरी पूरी थी।

www.yugpradhan.com

धीरे से मन की बात को वाणी द्वारा व्यक्त करते हुए डेमास्थनीस से कहा—"यदि आप ने राजसभा में थोडी खुशामतखोरी की होती हो बर्तन माँजने के ये दिन आप को देखने न पडते।"

यह वाक्य सुन डेमास्थनीस ने मन में सोचा कि—"नये राजगुरु को थोडा पाठ पढ़ाना होगा। अतः गंभीर मुँह रख डेमास्थनीसने कहा—"राजगुरु ! यदि आप इस प्रकार मिट्टी के बर्तन माँज पाते तो, नालायक मनुष्यों की खुशामत कर, मुँह गंदा करने के ये दिन आपको देखने न पड़ते।"

बेचारा राजगुरु ! यह सुन स्तब्ध रह गया।

(२८६) "नग्न कौन है ?"

राजनैतिक स्वार्थों से अंध बने औरंगजेबने अपने भाई दारा का खून किया। उसके मार्ग में बाधारूप होनेवाले मित्रों को भी खत्म

करने में वह जरा भी हिचकिचाता न था। उसने कई मित्रों को भी तड़पा–तड़पा कर खत्म कर दिये थे।

उसके मित्रों में सरमदशाह नामक संत था। वह दिगंबर रहता था। किसी भी कारणवश वह औरंगजेब को खटकने लगा। उसका सत्यानाश करने की बुरी वृत्ति के साथ उसे सरमदशाह को राजसभा में बुला मँगवाया।

बिलकुल नग्नावस्था में सरमदशाह दरबार में आ पहुँचा। उससे तो औरंगजेब आगबबूला हो उठा। उसमें भी सरमदशाह बिना सर झुकाये अदब के साथ बादशाह के सामने आ खडा हो गया। क्रोध में झुंझलाकर औरंगजेबने कहा–" अरे नीच भिखारी। तू यहाँ नग्नावस्था में क्यों आ पहुँचा? तुझे शर्म नहीं आती?"

www.yugpradhan.com

सरमदशाहने हँसते हँसते उत्तर दिया–" बादशाह, औरंगजेब! कपडों की जरूरत तुम्हें हैं कि जिनके हाथ अपने भाईयों और मित्रों के खून से रंगे हुए हैं। तुम अपने ही अंगों को ढाँक लो, जो खून से लथपथ हैं। मुझे सलाह देने की कोई जरूरत नहीं है।"

(२८७) दीक्षा की योग्यता उम्र नहीं, बल्कि विवेकज्ञान

एक दिन एक छोटा–सा बच्चा दौडता दौडता गुरु नानक की गोदमें आ बैठा। उसके मुँह पर की तेजस्विता देख, नानक प्रभावित हो गये। उसके सर पर प्यार से हाथ फेरते नानक बोले–" बेटे, यहाँ कैसे आये? क्या काम पड़ा मेरा?"

बच्चा बोला–" गुरुजी मुझे आज ही दीक्षा दें। मुझे इस संसार में पल मात्र के लिये रहना नहीं है।"

"बेटे, इतनी जल्द दीक्षा लेने की जरूरत नहीं है। ऐसी भावना पैदा क्यों हुई?" नानकने वात्सल्य से पूछा।

बच्चा बोला—"गुरुजी! आज मेरी माँ चूल्हे पर रसोई पका रही थी। तब मैं वहाँ बैठा था। यकायक मेरी नजर जलती लकडियाँ की ओर गयी। मैंने उस में देखा कि जो छोटी छोटी लकडियाँ थी वे जल्द जली जा रही थी लेकिन जो बडी थी, उन्हें जलने में देर होती थी। यह देख मुझे महसूस हुआ कि मैं छोटा हूँ तो क्या महाकाल की अग्निमें मैं जल्द जल जाऊँगा? अगर ऐसा ही हो तो, तुरंत दीक्षा ले कर, मेरा आत्मकल्याण क्यों न कर लूँ? इसीलिये मैं दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।"

छोटे-से बच्चे की इतनी गहन बात को सुन कर गुरु नानक मन में भारी प्रसन्न हो गये।

www.yugpradhan.com

(२८८) शायद आगामी कल खतरनाक हो!

राजनर्तकी वासवदत्ता अपने रूप सौन्दर्य पर अत्यन्त गर्विष्ठ थी। युवक लोग उसके तसतसते यौवन-सौन्दर्य पर लट्टू हो कर, उसकी चरण-सेवा के लिये तत्पर रहेते, लेकिन वह रूपगर्विता उन्हें उपेक्षित किया करती।

लेकिन एक दिन उसने उपगुप्त नामक बौद्ध भिक्षु को देखा। उसके तेजस्वी यौवन पर मुग्ध हो, रूपगर्विताने अपनी इच्छा व्यक्त की।

लेकिन भिक्षुने उसकी इच्छा को ठुकरा दी। रूपगर्विताने इस मूर्खता पर चेतावनी दी।

तब उपगुप्तने वासवदत्ता से कहा—"अरी विलासमग्न पगली! शायद एक दिन ऐसा भी आये कि जब तुम्हारे अंग-प्रत्यंग में से कीडे

गिरते हों, लोग तुम्हारी उपेक्षा करे....ठीक उस समय मैं तुम्हारे पास आऊँगा और धर्मबोध करूँगा। आज तुम्हारे पास आने का कोई हेतु नहीं है। आकर्षण भी नही है।"

और सचमुच ऐसा दिन आ पाया। जब कि सारे शरीर में फैले चमडी के चेपी रोग की भयानक बदबू के कारण वासवदत्ता को गाँव के लोगोंने बाहरी एक छोटी-सी कुटिया में जा कर छोड दी। उस समय उपगुप्त आ पहुँचा और उसने वादे के अनुसार अपना कर्तव्य निभाया।

(२८९) कैसी राजाशाही !

www.yugpradhan.com

गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह के राज्य में एक नियम ऐसा था कि जिस धनिक के पास जितने लाख की संपत्ति हो, उतने दीपक अपनी हवेली पर रात को सुलगाये। यदि करोड रूपये हो तो उसे अपने घर ध्वज फरकाना चाहिये।

उसका कारण यह था कि उससे गरीबों और धार्मिक कार्य करानेवालों को पता चले कि उनकी धनाढ्यता कैसी है। वे उनके पास जा सके। उपरान्त धनाढ्य लोग भी ऐसा लाभ पाने के लिये सदा तत्पर रहते।

एक दिन नगरचर्या के लिये निकले गुर्जरेश्वरने एक हवेली के झरोखे पर कई संख्या में जलते दीपकों को देख, उसके मालिक सेठ को बुलाकर पूछा—उनकी कुल संपत्ति कितनी है? सेठने कहा—"महाराजा, छियासी लाख की संपत्ति है। अतः प्रतिदिन छियासी दीपक जलाता हूँ।"

गुर्जरेश्वरने मन ही मन सोचा। "इतने सारे दीपक जलाने में सेठजी को कितनी परेशानी होती होगी? इसकी अपेक्षा एक ध्वज ही फहरा दिया जाय तो?"

दूसरे दिन भंडार में से चौद लाख रूपये सेठ को राज्य की ओर से भेंट के रूपमें दिये गये।

सेठ की हवेली पर ध्वज फहराने लगा!

(२९०) दुःख को मामूली तोर से महसूस करें

विदेश से कई मास के बाद आया पुत्र, एक मास रह कर, विदेश जाने के लिये रवाना हुआ। सभी की स्नेहपूर्ण विदा ले कर, विमान में बैठा। विमान छूटा। और चन्द मिनटों में सुलग गया। विमानचालक के साथ सभी जल मरे।

मित्रों–स्वजनों की शोकसभा हुई। सभी शोकत्रस्त थे। सभी की आँखों में आँसु थे। लेकिन परिवार के बडे पुत्र के पिता बड़े सयाने और गंभीर थे।

सभा के मौन को तोडते हुए स्वस्थ आवाज से उन्होंने सभी से कहा–"आप लोग क्यों रोते हैं? ऐसी शोकसभा की आवश्यकता ही क्या है? मेरा बेटा यूरप के प्रवास के लिये गया था। यहाँ आ सभी से मिला। अब वह परलोक की यात्रा पर निकल पड़ा है। छोटे देशों की यात्रा से वापस लौट अब बड़े देश की यात्रा पर गया है। प्रवास पर गये लोगों के पीछे कभी शोकसभा होती है क्या?

हमें तो इस सभा को, पुत्र को परलोक की सफल यात्रा की शुभेच्छा व्यक्त करनेवाली स्नेहसभा में ही परिवर्तित कर देनी होगी!"

www.yugpradhan.com

" मेरे बेटेने और कुछ नहीं किया है। उसने केवल जाडे के समय के गरम कोट को उतार कर, गर्मी के दिनों का मात्र कमीज पहन लिया है। "

(२९१) अच्छे काम में, दूसरे को लाभ कैसे दें ?

गुर्जरेश्वर सिद्धराज के शासन के एक गाँव में प्रजा के लिये एक तालाब की जरूरत थी। गाँव के सुखी धनिक आदमी को इस बात का पता चला। उसने राजा से कहलवाया—" यह मौका मुझे दिया जाय। "

राजा ने उनकी बात का अस्वीकार कर खजाने में से खर्च करा कर तालाब की खुदाई शुरू करवा दी।

www.yudhpradhan.com

एक बार गुर्जरेश्वर को लंबे अरसे तक बाहर जाना हुआ। इस ओर द्रव्य के अभाव में मजदूरों को मजदूरी चुकानी बंद की गयी। परिणाम स्वरूप तालाब की खुदाई रूक गयी।

ये समाचार उन दयालु सेठ के पास पहुँचे। उसने अपने पुत्र द्वारा किसी के घर में चोरी करवाकर पुत्र को गिरफ्तारी करवायी। मुखी के पास जा कर सेठ ने पुत्र के विरुद्ध जोरदार अभिप्राय दिया और कडी सजा करने की प्रार्थना की। मुखी ने सेठ से ही सजा के प्रकार के बारे में पूछताछ करने पर, सेठ ने तीन लाख रूपयों के दंड का सूचन किया। मुखीने इस अभिप्राय को मंजूरी दे दी। उस समय सेठने तीन लाख रूपये दंडरूप में खजाने में जमा करवा दिये।

इस रकम के उपयोग से तालाब की खुदाई फिर से शुरू हो गयी। और सांगोपांग पूरा हो पाया। गुर्जरेश्वर राज्य में वापस लौटे तब सारी बातों का उन्हें पता चला। उन्हें सेठ के साथ घटी घटना

में शंका पैदा हुई। सेठ को बुला कर डाँटे तो सेठने सारी बातें सच सच बता दी।

गुर्जरेश्वरने सेठ की तीन लाख की रकम खजाने में से लौटा दी।

(२९२) आज की पवित्रता हास्यास्पद है।

कलकत्ता के बाबूसाहब बहादुरसिंहजी बडे श्रीमंत और अंग्रेज साहबों के साथ मधुर संबंधवाले थे।

उन्हें शुद्ध घी से बनाई मिठाइयाँ खाने का भारी शौक था। उसमें प्रत्येक पूडी तलते समय नये–ताजे बीस बीस तोले शुद्ध घी का उपयोग करते रहने का रसोईये को आदेश दे रखा था।

www.yogpradhan.com

एक रोज बाबूजी के बड़े लडके को यह बात पसंद न आयी! उसने रसोईये से एकान्त में कह दिया कि–"पिताजी के लिये इस प्रकार घी बदल ने की जरूरत नहीं है। तमाम पूडियाँ एक ही घी में तली जायँ।"

छोटे मालिक के आदेशानुसार रसोईयेने दूसरे ही दिन पहली पूडी जिस बीस तोले घी में तली और बडे सेठ की थाली में धर दी उसी घी में दूसरी पूडीयाँ तल कर थाली में रख दी।

और एक ही घी में तली पूडियाँ की बास पर से ही सेठ को सारी बातों का पता चल गया। भोजन पर से उठकर गरजते हुए कहा–"लाओ मेरे चौदह नंबर के हँटर को। यह काम किस बेवफूकने किया है?"

बेचारा रसोया काँपने लगा। उसने छोटे सेठ का नाम बता दिया।

सेठने पुत्र को खूब झाडा–डाँटा । पुत्र ने पाँव पकड क्षमाप्रार्थना की तब सेठ को शान्ति हुई ।

कहाँ है ऐसी भाग्यशालिता ? आज तो दूध में पानी मिला रहता है । लाइटों के फ्यूज बार बार खत्म हो जाते हैं । केरोसीन के लिये क्यू लगी हैं । सक्कर में से मीठापन चल बसा है । आम में से स्वाद कम हो गया है । जीवन का मजा निकल गया है ।

(२९३) धर्म में आडंबर का ज्यादा प्रभाव

एक बार यकायक लक्ष्मी और सरस्वती दोनों मिल पायीं । वे दोनों गपशप कर रही थीं वहीं चारित्र्यकुमार आ पहुँचा । तीनोंने बाते जारी रखी ।

www.yogadhan.com

एक आश्चर्यजनक बात की । लक्ष्मीने सरस्वती से पूछा–" तुम्हारा स्थान इस दुनिया में कहाँ हैं ? "

सरस्वती ने कहा–" मेरा स्थान, विद्वानों, पंडितों, ज्ञानियों के पास होता है । "

यही प्रश्न अब सरस्वतीने लक्ष्मी से कहा । लक्ष्मी ने उत्तर दिया– " मेरा स्थान तो धनिकों के घर होता हैं । "

उसके बाद दोनों बहनों ने चारित्र्यकुमार से भी यही सवाल किया ।

चारित्र्यकुमार ने कहा–" वैसे तो मेरी कोई निश्चित जगह नहीं है । मैं तो कहीं पर रह सकता हूँ । लेकिन मेरी एक गुप्त बात आप हमेशा ध्यान में लें कि जो लोग धार्मिकता की ओट ले कर इस दुनिया में घुमते रहते हैं, उन लोगों को मेरी परछाँई तक जँचती नहीं है । "

(२९४) बलिदान से क्या सिद्ध नहीं होता

हिटलरने छोटे–से होलेन्ड पर आक्रमण करने की तैयारी की। होलेन्ड की देशभक्त प्रजा को उसका अंदाजा मिल गया।

रात की रात में सब मिले। विराट झंझावात के सामने तिनके की हैसियत क्या ? इस विचार से सभी उलझे हुए थे।

लेकिन अन्त में हृदयों में जलती स्वदेशभक्ति प्रगट हुई। सभीने निर्णय किया कि गुलामी के जीवन की अपेक्षा मौत का स्वीकार बेहतर होगा।

इस मुद्दे पर व्यूह निश्चित किया गया। होलेन्ड गाँव दरिये के पानी से घिरे रहने के कारण, उन्हें रोकने के लिये यान्त्रिक दरवाजे लगाये गये थे।

www.yugpradhan.com

जिस गाँव पर हिटलर का सैन्य हमले के लिये टूट पडे, उस गाँव के दरवाजे खोल कर दरिये के पानी में उस गाँव के साथ हिटलर के सैन्य को भी डूबा दिया जाय।

हिटलरने आक्रमण शुरू किया। तीनों गाँवों को शत्रुसैन्य के साथ डूबा देने पर हिटलर भयभीत हो गया।

उसने आक्रमण स्थगित कर दिया। वह बोला–"शस्त्रों से कौन–सा विजय अप्राप्य है ? ऐसा प्रश्न करनेवाले हम आज बलिदान के सामने परास्त हो गये हैं।"

(२९५) विदेशों में पारिवारिक सुख की छिन्न–विच्छिन्नता

युवान होते ही शादीशुदा हो, माँबाप से अलग होकर रहने की प्रवृत्ति ने यूरप के देशों में बडे–बूढों के जीवन की तो बरबादी ही कर दी है।

शाम होते ही बडे–बूढे बगीचे में जा बैठ रहते हैं। टुड्डी पर हाथ टेक कर कुदरत के दृश्यों को देख कर आनंद मनाने का व्यर्थ प्रयत्न करते हैं।

भारत के किसी चालाक भाईने वहाँ की इस सामाजिक परिस्थिति का लाभ उठाने के लिये एक संस्था की स्थापना की। जिन्हें इकलौता-पन–अकेलापन खटकता हो, उन्हें 'कंपनी' देने के लिये यह संस्था, घंटे की फिस पर व्यक्ति को भेजती है। वह जा कर हिम्स–भजन सुनाती है।

अरे! वृद्ध का हाथ पकड़ कर बैठे रहने की सेवा भी यह संस्था सादर करती है। ऐसी मौन उष्मा की फिस पाँच डॉलर है। दस दिन भजन सुनाने के सौ डॉलर फिस है। जब कि एक मास की फिस दो सौ डॉलर हैं।

www.yugpradhan.com

धन्य है भारत! तुम्हारी परंपरागत पारिवारिक जीवन पद्धति में भी कितने सारे लाभ ठुंस ठुंस कर भरे पडे हैं।

लेकिन हम क्षुद्र–कंगाल भारतवासी! हमारे हाथों अपने पाँव कुल्हाडी पटक रहे हैं। हमारे प्राचीन मूल्यों की निंदा हम अपने ही मुँहो से कर रहे हैं।

आर्यावर्तकी मोक्षप्रधान संस्कृतिकी ज्योत
घरघरमें प्रगटानेवाला मासिक

मुक्तिदूत

त्रिवार्षिक चन्दा रु. २०-००

आजीवन सभ्य रु. १००-००

www.yugpradhan.com

चिंतक
मुनिश्री चन्द्रशेखरविजयजी

संपादक : हसमुख सी. शाह

सहसंपादक : योगेश म. शाह

मूल्य : रु. १५-००